हाड़ौती लोकगीत

(विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन द्वारा स्वीकृत--शोध-प्रबन्ध)

प्राक्कथन

डॉ० सत्येन्द्र

अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

लेखक

डॉ० चन्द्रशेखर भट्ट, एम.ए., बी.टी., पी. एच. डी.

कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर

प्रथम संस्करण, नवम्बर १९६६

अपनी बात

हाड़ौती लोकगीतों का अध्ययन इस प्रबन्ध के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। इस क्षेत्र के लोक-साहित्य रूपी समुद्र में से कुछ ही रस-बिन्दुओं को चुना जा सकता है।

गीत संकलन करते समय भी अनेक बाधाएं उपस्थित होती हैं। ग्रामीण-जन शहरी लोगों के प्रति सन्देह की दृष्टि से देखते हैं और सदैव अर्थ-प्राप्ति के लिए व्यग्र होते हैं। अतः लेखक को ग्रामीणों से सम्पर्क बढ़ाने व बीहड़ भागों में जाने के पश्चात् ही कई वर्षों में लोक-गीत एकत्र करने में सफलता मिल सकी है।

क्षेत्रीय लोक-साहित्य के अध्ययन में भी अनेक कठिनाइयां आती हैं—यथा गीतों के प्रामाणिक पाठ का अभाव, अधूरे भाव, ध्वन्यांकन की कठिनाई। इनमें से अन्तिम कठिनाई के कारण मिले हुए गीतों का भी उचित रूप में अध्ययन कठिन हो जाता है।

उपरोक्त कठिनाइयों के होते हुए भी येन-केन-प्रकारेण शोध-प्रबन्ध पूर्ण हो सका है। इसका श्रेय डा० शिवमंगलसिंह सुमन को ही है, जिनकी प्रेरणा मुझे सदैव मार्ग-दर्शन करती रही और मैं इस कार्य को सम्पन्न कर सका हूं।

प्रथम संस्करण, नवम्बर १९६६

मूल्य : १६-०० रुपये

प्रकाशक—जयकृष्ण अग्रवाल, कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर ।
मुद्रक—एच. सी. कपूर, टाइम्स प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर ।

अपनी बात

हाड़ौती लोकगीतों का अध्ययन इस प्रबन्ध के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। इस क्षेत्र के लोक-साहित्य रूपी समुद्र में से कुछ ही रस-बिन्दुओं को चुना जा सकता है।

गीत संकलन करते समय भी अनेक बाधाएं उपस्थित होती हैं। ग्रामीण-जन शहरी लोगों के प्रति सन्देह की दृष्टि से देखते हैं और सदैव अर्थ-प्राप्ति के लिए व्यग्र होते हैं। अतः लेखक को ग्रामीणों से सम्पर्क बढ़ाने व बीहड़ भागों में जाने के पश्चात् ही कई वर्षों में लोक-गीत एकत्र करने में सफलता मिल सकी है।

क्षेत्रीय लोक-साहित्य के अध्ययन में भी अनेक कठिनाइयां आती हैं—यथा गीतों के प्रामाणिक पाठ का अभाव, अधूरे भाव, ध्वन्यांकन की कठिनाई। इनमें से अन्तिम कठिनाई के कारण मिले हुए गीतों का भी उचित रूप में अध्ययन कठिन हो जाता है।

उपरोक्त कठिनाइयों के होते हुए भी येन-केन-प्रकारेण शोध-प्रबन्ध पूर्ण हो सका है। इसका श्रेय डा० शिवमंगलसिंह सुमन को ही है, जिनकी प्रेरणा मुझे सदैव मार्ग-दर्शन करती रही और मैं इस कार्य को सम्पन्न कर सका हूँ।

प्रथम संस्करण, नवम्बर १९६६

मूल्य : १६-०० रुपये

प्रकाशक—जयकृष्ण अग्रवाल, कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर।
मुद्रक—एच. सी. कपूर, टाइम्स प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर।

अपनी बात

हाड़ौती लोकगीतों का अध्ययन इस प्रबन्ध के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। इस क्षेत्र के लोक-साहित्य रूपी समुद्र में से कुछ ही रस-बिन्दुओं को चुना जा सकता है।

गीत संकलन करते समय भी अनेक बाधाएं उपस्थित होती हैं। ग्रामीण-जन शहरी लोगों के प्रति सन्देह की दृष्टि से देखते हैं और सदैव अर्थ-प्राप्ति के लिए व्यग्र होते हैं। अतः लेखक को ग्रामीणों से सम्पर्क बढ़ाने व बीहड़ मार्गों में जाने के पश्चात् ही कई वर्षों में लोक-गीत एकत्र करने में सफलता मिल सकी है।

क्षेत्रीय लोक-साहित्य के अध्ययन में भी अनेक कठिनाइयां आती हैं— यथा गीतों के प्रामाणिक पाठ का अभाव, अधूरे भाव, ध्वन्यांकन की कठिनाई। इनमें से अन्तिम कठिनाई के कारण मिले हुए गीतों का भी उचित रूप में अध्ययन कठिन हो जाता है।

उपरोक्त कठिनाइयों के होते हुए भी येन-केन-प्रकारेण शोध-प्रबन्ध पूर्ण हो सका है। इसका श्रेय डा० शिवमंगलसिंह सुमन को ही है, जिनकी प्रेरणा मुझे सदैव मार्ग-दर्शन करती रही और मैं इस कार्य को सम्पन्न कर सका हूँ।

अन्त में श्री हरिभाऊजी उपाध्याय का मैं विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने अस्वस्थ होते हुए भी अपने 'दो शब्द' लिखकर मेरा उत्साह वढ़ाया है तथा डॉ० सत्येन्द्रजी के प्रति भी कृतज्ञता प्रकट किये बिना मैं नहीं रह सकता, जिन्होंने 'प्राक्कथन' लिखकर ग्रंथ का महत्त्व वढ़ाया है।

दीपमालिका १९६६ ई०

—चन्द्रशेखर भट्ट

दो शब्द

डॉ० चन्द्रशेखर भट्ट का शोध-ग्रंथ-"हाड़ौती लोक-गीत" मेरे सामने है "दो शब्द" लिखने के लिए।

भारत में राजस्थान का स्थान कई दृष्टियों से विशिष्ट है। हाड़ौती क्षेत्र इसी प्रदेश का एक हराभरा अंग है। हाड़ावंश के राजाओं के नाम के साथ जुड़े होने के कारण यह अपनी वीरता के लिए भी प्रसिद्ध है। अतः यहाँ के लोक-गीतों का सशक्त होना स्वाभाविक है।

इसमें सम्भवतः दो राय नहीं हो सकती कि लोक-जीवन किसी की संस्कृति का प्रतिनिधि जीवन माना जाता है। लोक-गीतों में इसी लोक-जीवन की झलक मिलती है। लोक-गीत सीधे हृदय से स्फुरित होते हैं और वे लोक जीवन तथा लोक-संस्कृति के दर्पण बन जाते हैं। संसार में कोई देश ऐसा नहीं है जहाँ लोक गीतों का प्रचार न हो भारत में लोक-गीतों की भरमार ही है। यह देखा जाता है कि प्रायः हर प्रदेश के लोक-गीतों का भावपक्ष समानता लिए होता है। स्थान भिन्नता के कारण भाषा भिन्नता और जातीय भिन्नता अवश्य हो जाती है। फिर भी धार्मिक गीत, वीरता सम्बन्धी गीत, प्रेम गीत, विवाहादि उत्सवों के गीत इत्यादि भाव में न्यूनाधिक वही होते हैं। अन्य क्षेत्रों की भांति हाड़ौती क्षेत्र में भी ऐसे गीतों का अभाव नहीं है।

हाड़ौती क्षेत्र लोक-साहित्य की दृष्टि से काफी समृद्ध है। वह अपने बहुवर्णीय अंचल में लोक-गीतों की अक्षय निधि छिपाये हुए है। शृंगार, वीर, करुण, हास्य, शान्त आदि सभी रसों में हाड़ौती लोक-गीतों का प्रचलन पाया जाता है। अनुभूतिशीलता, वाग्विदग्धता, प्रेषणीयता, सरसता, कोमलता आदि गुणों से अलंकृत हाड़ौती लोक-गीत किसी भी क्षेत्र के लोक-गीतों से टक्कर लेने में समर्थ हैं। उनकी संवेदन-शीलता, भाव-वैभव, कलात्मकता तथा मार्मिकता सभी कुछ प्रभावकारी है। लोक-गीतों में हाड़ौती संस्कृति सहज रूप से मुखरित हो उठी है।

डॉ० भट्ट ने इस शोध कार्य में काफी परिश्रम किया है, यह तो देखते ही स्पष्ट हो जाता है। विश्लेषण में वे काफी गहरे बैठे हैं, समझाने की शैली अच्छी है। भाषा शुद्ध और संस्कृत-गर्भित है। लोक गीतों का चयन कर उन्होंने उनका जो वर्गीकरण किया है, वह मुझे अच्छा लगा है। परिचयात्मक रूप में लोक-साहित्य पर आधारित प्रारम्भ में दो प्रकरण दे देने से ग्रन्थ का सौष्ठव और उसकी उपादेयता और भी बढ़ गयी है। शैली और भाषा दोनों ही दृष्टियों से ग्रन्थ अच्छा बन पड़ा है। आशा है कि केवल हिन्दी के ही नहीं अन्य भाषा के हिन्दी जानने वाले साहित्य व संस्कृति प्रेमियों के लिए भी यह ग्रन्थ उपयोगी सिद्ध होगा।

अध्यक्ष
राजस्थान साहित्य अकादमी
उदयपुर

—हरिभाऊ उपाध्याय

— —

प्राक्कथन

डॉ० चन्द्रशेखर भट्ट की यह कृति "हाड़ौती लोकगीत" पर एक अधिकारिक रचना है, यह वह शोध प्रबन्ध है जो विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, द्वारा पी० एच० डी० के लिए स्वीकृत हो चुका है, इस ग्रन्थ की वस्तुत: इतनी ही भूमिका आवश्यकता से अधिक थी, किन्तु डॉ० भट्ट का आग्रह है कि इस पर मेरी भी एक भूमिका रहे, विवश मुझे यह भूमिका लिखनी पड़ रही है। विवशता तो केवल वाह्य है, अन्तरत: तो मुझे प्रसन्नता है कि मुझे मेरे प्रिय विषय पर कुछ लिखने का इस वहाने अवसर मिल रहा है।

लोकगीत मानवीय कृतित्व की वह सामान्य धरोहर है जो विश्व मानव की भूमि पर प्राप्त हुई है। इस भूमि पर मनुष्य के भौगोलिक और ऐतिहासिक वन्धन, वन्धन नहीं, वरन सामान्य सर्वकालीन मानव की अभि-व्यक्ति के माध्यम ही रहते हैं। इन माध्यमों से जो अभिव्यक्ति होती है, वह उन आवेगों-आवेशों की होती है जो ऐतिहासिक होते हुए भी प्राग ऐतिहासिक होते हैं और भौगोलिक होते हुए भी सार्वदैशिक कहे जा सकते हैं, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार मानव सहज रूप में स्वयं देश-काल में से होकर भी उनमें से ऊपर सहज और शाश्वत मानव है।

गीत मानव की प्रथम अभिव्यक्ति रही होगी। प्रथम मानव अपने अखंड विकास की सर्जक अंगों के वीच के रूप में सबसे पहले गीत में ही कूका होगा, वह मूल कूक आज किसी भी लोकगीत में लोकभूमि पर गाये जाने वाले उन्मुक्त और उन्मद लोकगीत में सुनी जा सकती है, और आज जब हम इसके प्रवुद्ध हो गये हैं कि हम हर वात को वुद्धि की कसौटी पर ही तौलते हैं तो प्रश्न यह उठता है कि वह प्रथम कूक या उसकी परम्परा में उद्भुदित गीत-लोकगीत ग्रन्थमाला की नूनत्व का विषय है या साहित्य यानी लोक साहित्य का।

विस्तृत क्षेत्र की चर्चा करते हुए तथा उसका वर्गीकरण प्रस्तुत करते हुए "लोकगीत" का स्थान उसमें निर्धारित करने का प्रयत्न किया है। आपकी ये पंक्तियां द्रष्टव्य हैं:—

"मानव जाति की अनवरत साधना से संजात यह अपौरुषेय-साहित्य अपने आपको प्राचीनतम श्रुति साहित्य के समक्ष ही गुरुता का अधिकारी बनाये हुए है अथवा दूसरे शब्दों में श्रुति-साहित्य की भाषा परम्परा में यह सबसे प्रामाणिक भाष्य है।"

ऐसी पंक्तियों से स्पष्ठ है कि लेखक वैज्ञानिक भूमि को चाहे स्वीकार न करता हो पर भाव-भूमि की शाश्वतता का हामी है—और लोक गीत में श्रुति की झंकार से उद्वलित भी है। पर यह, श्रुति भी उसके लिए प्रतीक ही है क्योंकि श्रुति-वाणी भी तो "अपौरुषेय" है। जिस समय से हमारे प्रथम पूर्वज को वह सुनने को मिली होगी उससे भी पूर्व वह श्रुत रही होगी—और आदि मानव भी कूक से टकराकर उसी के श्रवण में उसे श्रुति कहा गया था। लेखक लोकगीतों के उद्भव और विकास का भी संक्षेप में प्रकाश डालना नहीं भूला, भूला है तो सिद्धान्त चर्चा में केवल डॉ० सत्येन्द्र को, क्योंकि उसने अन्य सभी के मतों से लाभ उठाया है या भूल से भी डॉ० सत्येन्द्र की चर्चा नहीं की, और यह ठीक ही किया, क्योंकि फिर इस भूमिका में वह स्वाद नहीं रहता। यथार्थतः तो लोकगीत की इतनी सैद्धान्तिक तथा ऐतिहासिक चर्चा तो मात्र ज्ञान वर्धन के लिए तथा यह सिद्ध करने के लिए कि लेखक किसी महान् क्षेत्र को अनुसन्धानार्थ ले रहा है और इस स्थिति से सभी की सहमति होगी, ऐसा मेरा विश्वास है यह तो एक पहलू हुआ जिसमें लेखक की बहुमतता भी प्रकट होती है।

दूसरा पहलू हाड़ौती भाषा विषयक है, हाड़ौती भाषा की संक्षेप में विशेषताएँ बताकर लेखक ने हाड़ौती बोली के क्षेत्र तथा इतिहास पर भी संक्षेप में प्रकाश डाला है। वस्तुतः यह परिचय संक्षिप्त होते हुए भी बहुत सारगर्भित है, इस पहलू का निष्कर्ष सम्भवतः इस वाक्य में आ जाता है।

इस मत के अनुसार हाड़ौती राजस्थानी भाषा-मण्डल की पुन्तत्व प्रधान विशिष्ट सदस्या है, इसकी समानता न जयपुर की सुकुमार बोली से है न मारवाड़ की टकसाली भाषा से और न दक्षिण की मावली से। वस्तुतः पहाड़ों और जंगलों से घिरे हुए हाड़ौती के मैदानों में प्राचीन प्राकृत का कोई विशिष्ट रूप सुरक्षित रह गया है, इसीलिए शताब्दियों से तिरस्कृत इस क्षेत्र की भाषा का महत्व बढ़ गया है।

बड़े कौशल से पंचोली जी का मत उद्धृत करते हुए लेखक ने भावी भाषा वैज्ञानिक अनुसंधान की दिशा की ओर भी संकेत किया है तथा भाषा के महत्त्व की प्रतिष्ठा करते हुए आपने अध्ययन के महत्त्व की भी प्रतिष्ठा की है।

अनुक्रमणिका

——

प्रथम प्रकरण

लोक साहित्य और लोकगीत

——

प्रथम प्रकरण

लोक साहित्य और लोकगीत

प्रथम प्रकरण

लोक साहित्य और लोकगीत

लोक साहित्य सुदीर्घकाल से चली आई लोक मानस की उस भावधारा का प्राप्य रूप है जो व्यक्तिगत चेतना का आश्रय लेकर समाज में लिखित रूप में उपस्थित न हो सकी और सामाजिक चेतना का आश्रय लेकर श्रुति परम्परा से काल के असंख्य थपेड़े खाती हुई लोक-विश्वास का अंग बन कर २० वीं शती तक अक्षुण्ण रूप से सुरक्षित रही। इस भावधारा को सुरक्षित रखने का श्रेय ग्रामीण समाज को है जो पिछली कुछ शतियों में औद्योगीकरण द्वारा प्रचारित यान्त्रिक जड़ता से मुक्त रह कर अपनी सामाजिक परम्पराओं को सुरक्षित बनाए रखने में सफल हुआ है। लोक साहित्य उपर्युक्त परम्पराओं का अविच्छेद्य अंग है। अतः यह कहा जा सकता है कि लोक साहित्य के विकास के केन्द्र नगर न होकर भारत के बहुसंख्यक गांव हैं।

सहज व स्वाभाविक अनुभूतियों के कारण लोक-साहित्य प्रत्येक शिक्षित-अशिक्षित भावुक जन-साधारण की अपनी वस्तु बन कर विकास को प्राप्त होती रही। लोक साहित्य से भिन्न लिखित सामग्री को प्रातिभ-साहित्य कहा जा सकता है। लोक-साहित्य ने प्रातिभ-साहित्य को सदा प्रभावित किया है।

लोक साहित्य का स्वरूप

प्रथम प्रकरण

लोक साहित्य और लोकगीत

लोक साहित्य सुदीर्घकाल से चली आई लोक मानस की उस भावधारा का प्राप्य रूप है जो व्यक्तिगत चेतना का आश्रय लेकर समाज में लिखित रूप में उपस्थित न हो सकी और सामाजिक चेतना का आश्रय लेकर श्रुति परम्परा से काल के असंख्य थपेड़े खाती हुई लोक-विश्वास का अंग बन कर २० वीं शती तक अक्षुण्ण रूप से सुरक्षित रही। इस भावधारा को सुरक्षित रखने का श्रेय ग्रामीण समाज को है जो पिछली कुछ शतियों में औद्योगीकरण द्वारा प्रचारित यान्त्रिक जड़ता से मुक्त रह कर अपनी सामाजिक परम्पराओं को सुरक्षित बनाए रखने में सफल हुआ है। लोक साहित्य उपर्युक्त परम्पराओं का अविच्छेद्य अंग है। अतः यह कहा जा सकता है कि लोक साहित्य के विकास के केन्द्र नगर न होकर भारत के बहुसंख्यक गांव हैं।

सहज व स्वाभाविक अनुभूतियों के कारण लोक-साहित्य प्रत्येक शिक्षित-अशिक्षित भावुक जन-साधारण की अपनी वस्तु बन कर विकास को प्राप्त होती रही। लोक साहित्य से भिन्न लिखित सामग्री को प्रातिभ-साहित्य कहा जा सकता है। लोक-साहित्य ने प्रातिभ-साहित्य को सदा प्रभावित किया है।

लोक साहित्य का स्वरूप

है। गांव की चौपाल पर कथाकार का लयात्मक आरोह अवरोह युक्त स्वर सुना जा सकता है।

लोक साहित्य की लयात्मकता को देखकर यह कहना उचित ही प्रतीत होता है कि भाषा का उद्गम ही संगीतात्मक था। बाद को धीरे धीरे गद्य, भाषा और संगीत ये तत्व दो पृथक् महत्वपूर्ण सामाजिक संस्थाओं के रूप में विकसित हुए (१)। लिखित साहित्य में ये भेद स्पष्टतः परिलक्षित हुए, परन्तु जनता के कण्ठ मात्र का अवलम्बन लेकर चली जाने वाली लोक साहित्य की परम्परा में इस प्रकार का भेद स्वल्पतम है।

लोक साहित्य की पद्य बद्धता पर विचार करते हुए सामान्यतः कहा जा सकता है कि मनुष्य ने अपने विचारों के व्यक्तिकरण के लिए शब्दों की भाषा स्वीकार की और उसके पश्चात् अपने मनोरंजन के लिए उसे पद्य का लययुक्त रूप दिया। इस प्रकार गद्यमय भाषा का जन्म पहले हुआ और उसके पश्चात् पद्य का आविर्भाव हुआ, किन्तु उसकी भाषा का गद्य स्वरूप सुरक्षित नहीं रह सका, पर संगीत के माधुर्य के कारण उसका पद्य एक कण्ठ से दूसरे कण्ठ में आता हुआ आज भी जीवित है (२)।

उपर्युक्त दोनों कथनों में विरोध ज्ञात होता है। परन्तु ऐसा है नहीं। लोक भाषा के अध्ययन से पता चलता है कि उसमें समान ध्वनियों से निर्मित शब्द भिन्न भिन्न अर्थों में प्रयुक्त होते हैं। वेदों में भी एक शब्द के अनेक अर्थ देखे जा सकते हैं। वैदिक मँत्रों में विशेष अर्थ ध्वनित करने के लिए स्वर चिह्नों का आश्रय लिया गया है। ठीक इसी तरह लोक भाषाओं में एक ही शब्द से भिन्न भिन्न अर्थ प्रकट करने के लिए लय का आश्रय लिया जाता है। अतः भाषा के आदि रूप में जब थोड़े ही शब्दों से काम चलाने की प्रवृति रही होगी, शब्दों से लय का विशेष लगाव रहा होगा और इस प्रकार संगीत की ओर झुकाव अधिक रहा होगा। यहाँ संगीत और पद्य को एक समझने की भूल न होनी चाहिए। लोक साहित्य भाषाओं में संगीतात्मक गद्य प्रयुक्त होता हुआ देखा जा सकता है। पद्य सप्रयत्न रचना है। अतएव भाषा का उद्गम संगीतात्मक होते हुए भी उसका रूप स्वाभाविक गद्यात्मक ही रहा होगा। जब संगीत एक स्वतन्त्र संस्था के रूप में विकसित हो गया तब गद्य को पद्य में परिवर्तित करके उसके साथ संगीत को संयुक्त करने की चेष्टा की गई। इसीलिए डा० धीरेन्द्र वर्मा ने आदि भाषा से गद्य भाषा और संगीत के पृथक्करण की बात कही है। पद्य में संगीत होता है, परन्तु संगीत केवल पद्य ही

---

(१) लोक साहित्य की भूमिका—डा० कृष्णदेव उपाध्याय—पृष्ठ ७ पर डा० धीरेन्द्र वर्मा द्वारा भूमिका के रूप में प्रस्तुत विचार

(२) निमाड़ी और उसका साहित्य—डा० कृष्णलाल हँस—पृष्ठ ३०२

नहीं है। वह गद्य में भी हो सकता है। गद्य की आदिकालीन संगीतात्मक प्रवृत्ति आज भी हाड़ोती भाषा में मिलती है (१)।

पद्य की सप्रयास रचना प्रातिभ साहित्य में होती है। लोक साहित्य में उसमें प्रयास का अभाव देखा जाता है। हम देखते हैं कि अबोध शिशु संगीत की स्वर लहरी से प्रभावित हो रोना भूल जाता है, यद्यपि वह उस संगीत को समझने में असमर्थ है। वह संगीत के भाव से नहीं, पर लय अथवा राग से प्रभावित होता है। मानव स्वभावतः राग प्रिय है। उसकी इसी स्वाभाविकता ने उसकी गद्यमयी भाषा को गीतों का स्वरूप दिया (२)।

अतः लोक साहित्य को गीतिप्रधान कहा जा सकता है। गीतमय लोक साहित्य जनता के हृदय का उद्गार है जिसके सुनने से मन के तार बज उठते हैं (३)। सरलता, स्वाभाविकता और सरसता उसकी विशेषताएं हैं (४)।

लोक साहित्य का वर्गीकरण

लोक साहित्य में जनता की अनुभूतियों का सहज प्रकाशन होता है। यह प्रकाशन अनेक शैलियों द्वारा संभव है। उन शैलियों के आधार पर लोक साहित्य को प्रधानतया पांच वर्गों में (५) वर्गीकृत किया गया है।

(१) लोक गीत (Folk songs या Lyrics)

(२) लोक गाथा (Folk Ballads)

(३) लोक कथा (Folk Tales)

(४) लोक नाट्य (Folk Drama)

(५) प्रकीर्ण साहित्य (Miscellaneous Folk Literature)

है। गांव की चौपाल पर कथाकार का लयात्मक आरोह अवरोह युक्त स्वर सुना जा सकता है।

लोक साहित्य की लयात्मकता को देखकर यह कहना उचित ही प्रतीत होता है कि भाषा का उद्गम ही संगीतात्मक था। बाद को धीरे धीरे गद्य, भाषा और संगीत ये तत्व दो पृथक् महत्वपूर्ण सामाजिक संस्थाओं के रूप में विकसित हुए (१)। लिखित साहित्य में ये भेद स्पष्टतः परिलक्षित हुए, परन्तु जनता के कण्ठ मात्र का अवलम्बन लेकर चली जाने वाली लोक साहित्य की परम्परा में इस प्रकार का भेद स्वल्पतम है।

लोक साहित्य की पद्य बद्धता पर विचार करते हुए सामान्यतः कहा जा सकता है कि मनुष्य ने अपने विचारों के व्यक्तिकरण के लिए शब्दों की भाषा स्वीकार की और उसके पश्चात् अपने मनोरंजन के लिए उसे पद्य का लययुक्त रूप दिया। इस प्रकार गद्यमय भाषा का जन्म पहले हुआ और उसके पश्चात् पद्य का आविर्भाव हुआ, किन्तु उसकी भाषा का गद्य स्वरूप सुरक्षित नहीं रह सका, पर संगीत के माधुर्य के कारण उसका पद्य एक कण्ठ से दूसरे कण्ठ में आता हुआ आज भी जीवित है (२)।

उपर्युक्त दोनों कथनों में विरोध ज्ञात होता है। परन्तु ऐसा है नहीं। लोक भाषा के अध्ययन से पता चलता है कि उसमें समान ध्वनियों से निर्मित शब्द भिन्न भिन्न अर्थों में प्रयुक्त होते हैं। वेदों में भी एक शब्द के अनेक अर्थ देखे जा सकते हैं। वैदिक मँत्रों में विशेष अर्थ ध्वनित करने के लिए स्वर चिह्नों का आश्रय लिया गया है। ठीक इसी तरह लोक भाषाओं में एक ही शब्द से भिन्न भिन्न अर्थ प्रकट करने के लिए लय का आश्रय लिया जाता है। अतः भाषा के आदि रूप में जब थोड़े ही शब्दों से काम चलाने की प्रवृति रही होगी, शब्दों से लय का विशेष लगाव रहा होगा और इस प्रकार संगीत की ओर झुकाव अधिक रहा होगा। यहाँ संगीत और पद्य को एक समझने की भूल न होनी चाहिए। लोक साहित्य भाषाओं में संगीतात्मक गद्य प्रयुक्त होता हुआ देखा जा सकता है। पद्य सप्रयत्न रचना है। अतएव भाषा का उद्गम संगीतात्मक होते हुए भी उसका रूप स्वाभाविक गद्यात्मक ही रहा होगा। जब संगीत एक स्वतन्त्र संस्था के रूप में विकसित हो गया तब गद्य को पद्य में परिवर्तित करके उसके साथ संगीत को संयुक्त करने की चेष्टा की गई। इसीलिए डा० धीरेन्द्र वर्मा ने आदि भाषा से गद्य भाषा और संगीत के पृथक्करण की बात कही है। पद्य में संगीत होता है, परन्तु संगीत केवल पद्य ही

---

(१) लोक साहित्य की भूमिका—डा० कृष्णदेव उपाध्याय—पृष्ठ ७ पर डा० धीरेन्द्र वर्मा द्वारा भूमिका के रूप में प्रस्तुत विचार

(२) निमाड़ी और उनका साहित्य—डा० कृष्णलाल हँस—पृष्ठ ३०२

नहीं है। वह गद्य में भी हो सकता है। गद्य की आदिकालीन संगीतात्मक प्रवृत्ति आज भी हाड़ोती भाषा में मिलती है (१)।

पद्य की सप्रयास रचना प्रातिभ साहित्य में होती है। लोक साहित्य में उसमें प्रयास का अभाव देखा जाता है। हम देखते हैं कि अबोध शिशु संगीत की स्वर लहरी से प्रभावित हो रोना भूल जाता है, यद्यपि वह उस संगीत को समझने में असमर्थ है। वह संगीत के भाव से नहीं, पर लय अथवा राग से प्रभावित होता है। मानव स्वभावतः राग प्रिय है। उसकी इसी स्वाभाविकता ने उसकी गद्यमयी भाषा को गीतों का स्वरूप दिया (२)।

अतः लोक साहित्य को गीतिप्रधान कहा जा सकता है। गीतमय लोक साहित्य जनता के हृदय का उद्‌गार है जिसके सुनने से मन के तार बज उठते हैं (३)। सरलता, स्वाभाविकता और सरसता उसकी विशेषताएँ हैं (४)।

लोक साहित्य का वर्गीकरण

लोक साहित्य में जनता की अनुभूतियों का सहज प्रकाशन होता है। यह प्रकाशन अनेक शैलियों द्वारा संभव है। उन शैलियों के आधार पर लोक साहित्य को प्रधानतया पाँच वर्गों में (५) वर्गीकृत किया गया है।

(१) लोक गीत (Folk songs या Lyrics)

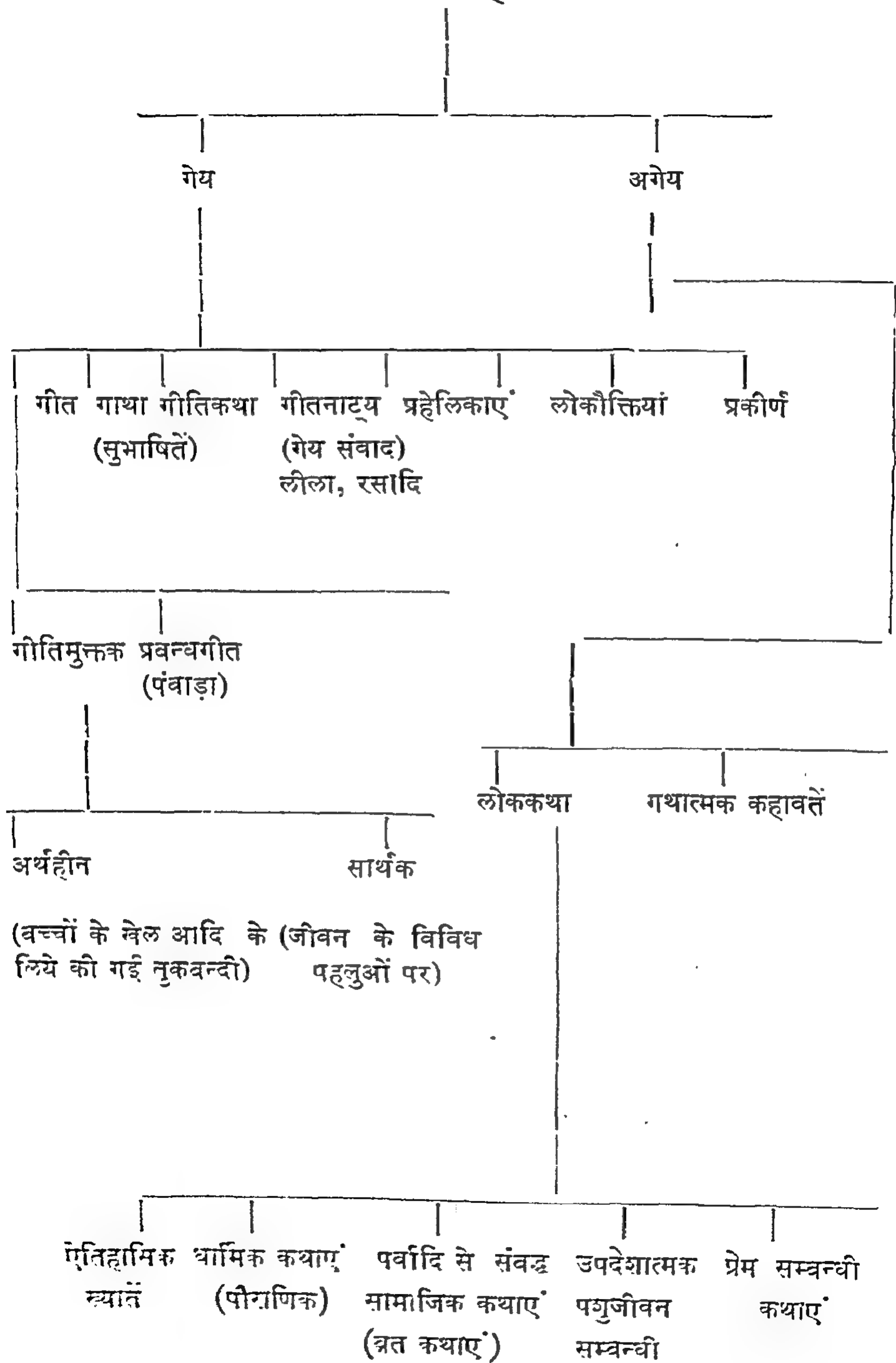
(२) लोक गाथा (Folk Ballads)

(३) लोक कथा (Folk Tales)

(४) लोक नाट्य (Folk Drama)

(५) प्रकीर्ण साहित्य (Miscellaneous Folk Literature)

ऊपर कहा जा चुका है कि लोक साहित्य लयात्मक होता है अतः गेयतत्व की प्रधानता मान कर गेय और अगेय दो वर्ग कर दिये जायें तो अधिक उचित होगा। अगेय वर्ग में केवल कहानियां, धार्मिक उपाख्यान व कहावतें (हाड़ौती शब्द कहगावत) ही आते हैं। शेष सब गेय वर्ग में गिने जा सकते हैं। इस प्रकार इनके नाम निम्न क्रम से गिनाए जा सकेंगे—गीत, गाथा, गीतिकथा, गीत नाट्य, गेय लोकोक्तियां, प्रहेलिकाएं आदि। यह चक्र इस वर्गीकरण को स्पष्ट करेगा—


लोक साहित्य
गेय
अगेय
गीत
गाथा
गीतिकथा
(सुभाषितें)
गीतनाट्य
(गेय संवाद)
लीला, रसादि
प्रहेलिकाएं
लोकौक्तियां
प्रकीर्ण
गीतिमुक्तक
प्रबन्धगीत
(पंवाड़ा)
अर्थहीन
(बच्चों के खेल आदि के लिये की गई तुकबन्दी)
सार्थक
(जीवन के विविध पहलुओं पर)
लोककथा
गद्यात्मक कहावतें
ऐतिहासिक ख्यातें
धार्मिक कथाएं (पौराणिक)
पर्वादि से संबद्ध सामाजिक कथाएं (व्रत कथाएं)
उपदेशात्मक पशुजीवन सम्बन्धी
प्रेम सम्बन्धी कथाएं

भी गाथा (तृतीया में) गाथया (१) तथा गाथाभिः (२) और गाथम् (३) शब्द का प्रयोग स्तुति, स्तोत्र, स्तव आदि अर्थों में हुआ है। यहां कहीं भी गाथा का अर्थ वीरगीत या प्रबन्ध गीत नहीं है। इन शब्दों का यदि कुछ भी अर्थ माना जाय तो वह गेय सुभाषित या सूक्ति ही होगा। देवताओं की वीरत्व व्यंजक स्तुतियों का नाम भी गाथा नहीं हो सकता। उनके लिए रैभी (४) शब्द प्रयुक्त हुआ है। मनुष्यों के लिये प्रशस्तिपाठ का नाम ऋग्वेद में नाराशंसी (५) है। इन्हीं नाराशंसियों का विकास पौराणिक ऐतिह्यवृत्तों में हुआ होगा। आगे चल कर गाथा और नाराशंसी में भेद करना कठिन हो गया होगा तभी पुराणों, ब्राह्मणों व महाभारत आदि में मरुत पृथु, भरत, हरिश्चन्द्रादि के सम्बन्ध में लोक प्रचलित ख्यातों को गाथा नाम दे दिया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में ऐसी ही एक गाथा दौष्यन्ति भरत के विषय में है—

अष्टा सप्तति भरतो दौष्यन्तिर्यमुनामनु।
गंगायां वृत्रघ्ने बन्धात्पंच पंचाशतं हयान् ॥(६)

मत्स्यपुराण में इसी प्रकार की एक गाथा को स्मरण किया गया है—

तदथमेषा चरति लोके गाथा पुरातनी।
एष्टव्या बहवः पुत्रा यथेकोऽपि गयां व्रजेत्।
गौरीन्वाप्युद्वहेत्कन्यां नील वा वृषमुत्सृजेत् ॥ (७)

विष्णु पुराण में मृत्यु के सम्बन्ध में एक गाथा इस प्रकार दी हुई है—

पित्रापरंजितास्तस्य प्रजास्तेनानुरंजिताः।
अनुरागात्ततस्तस्य नाम राजेत्यजायत ॥ (८)

उक्त तीनों गाथाओं पर विचार करने से स्पष्ट है कि प्रथम दौष्यन्ति भरत के अश्वमेधों के सम्बन्ध में ख्यात है, दूसरी लोक व्यवहार की रीति का व्याख्यान करती है और तीसरी राजा शब्द की निरुक्ति प्रस्तुत करती है। प्रथम व तृतीय नाराशंसी मानी जा सकती है। महाभारतादि ग्रन्थों में ऐसी अनेक गाथाएं मिलेंगी, परन्तु उन्हें 'बैलड' नहीं कहा जा सकता।

---

(१) ऋग्वेद ८।३२।१ ८।६८।६, १०।८५।६।

(२) ऋग्वेद ८।७१।१४।

(३) ऋग्वेद १।१६७।६, ६।११।४

(४) ऋग्वेद १०।८५।६

(५) ऋग्वेद १०।८५।६

(६) ऐतरेय ब्राह्मण ३६।६

(७) मत्स्य पुराण २०६।४१

(८) विष्णु पुराण १।१३।४८

भी गाथा (तृतीया में) गाथया (१) तथा गाथाभिः (२) और गाथम् (३) शब्द का प्रयोग स्तुति, स्तोत्र, स्तव आदि अर्थों में हुआ है। यहां कहीं भी गाथा का अर्थ वीरगीत या प्रबन्ध गीत नहीं है। इन शब्दों का यदि कुछ भी अर्थ माना जाय तो वह गेय सुभाषित या सुक्ति ही होगा। देवताओं की वीरत्व व्यंजक स्तुतियों का नाम भी गाथा नहीं हो सकता। उनके लिए रैमी (४) शब्द प्रयुक्त हुआ है। मनुष्यों के लिये प्रशस्तिपाठ का नाम ऋग्वेद में नाराशंसी (५) है। इन्हीं नाराशंसियों का विकास पौराणिक ऐतिह्यवृत्तों में हुआ होगा। आगे चल कर गाथा और नाराशंसी में भेद करना कठिन हो गया होगा तभी पुराणों, ब्राह्मणों व महाभारत आदि में मरुत पृथु, भरत, हरिश्चन्द्रादि के सम्बन्ध में लोक प्रचलित ख्यातों को गाथा नाम दे दिया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में ऐसी ही एक गाथा दौष्यन्ति भरत के विषय में है—

अष्टा सप्तति भरतो दौष्णन्तिर्यमुनामनु।
गंगायां वृत्रघ्ने बन्धात्पंच पंचाशतं हयान् ॥(६)

मत्स्यपुराण में इसी प्रकार की एक गाथा को स्मरण किया गया है—

तदथमपा चरति लोके गाथा पुरातनी।
एष्टव्या बहवः पुत्रा यथेकोऽपि गयां व्रजेत्।
गोरीन्वाप्युद्वहेत्कन्यां नील वा वृषमुत्सृजेत् ॥ (७)

विष्णु पुराण में मृत्यु के सम्बन्ध में एक गाथा इस प्रकार दी हुई है—

पित्रापरंजितास्तस्य प्रजास्तेनानुरंजिताः।
अनुरागात्ततस्तस्य नाम राजेत्यजायत ॥ (८)

उक्त तीनों गाथाओं पर विचार करने से स्पष्ट है कि प्रथम दौष्यन्ति भरत के अश्वमेधों के सम्बन्ध में ख्यात है, दूसरी लोक व्यवहार की रीति का व्याख्यान करती है और तीसरी राजा शब्द की निरुक्ति प्रस्तुत करती है। प्रथम व तृतीय नाराशंसी मानी जा सकती है। महाभारतादि ग्रन्थों में ऐसी अनेक गाथाएं मिलेंगी, परन्तु उन्हें 'बैलड' नहीं कहा जा सकता।

---

(१) ऋग्वेद ८।३२।१ ८।९८।९, १०।८५।६।
(२) ऋग्वेद ८।७१।१४।
(३) ऋग्वेद १।१६७।६, ९।११।४
(४) ऋग्वेद १०।८५।६
(५) ऋग्वेद १०।८५।६
(६) ऐतरेय ब्राह्मण ३९।९
(७) मत्स्य पुराण २०६।४१
(८) विष्णु पुराण ११३।४८

गाथा शब्द अपने मूल अर्थ में पाली व प्राकृतों में बड़ा ही लोकप्रिय हुआ। गाथा शब्द कहते ही अध्येता का ध्यान प्राकृत की ओर आकृष्ट हो जाता है। बौद्ध पिटक ग्रन्थों व जातकों में अनेक गाथाएं उल्लिखित हैं। विनयपिटक में एक गाथा (१) है—

अग्निहुत्त मुखा यंजा सावित्री छन्दसो मुखम्।
राजामुखं मनुस्मानं नदीनं सागरो मुखम्।
नक्खतानं मुखं चन्दो आदिच्चो तपतं मुखं।
पुंज आकांखमानानं घोवो वे यजतो मुखम्॥

(यज्ञों में मुख है अग्निहोत्र, छन्दों में मुख सावित्री, मनुष्यों में राजा, नदियों में सागर। नक्षत्रों में मुख चन्द्रमा, तपन करने वाले में सूर्य, पुण्य चाहने वाले यज्ञकर्ताओं के लिए संघमुख है।)

(पं० राहुल सांकृत्यायन कृत अनुवाद)

बौद्ध धर्म की गीता धम्मपद में ऐसी ही गाथाओं का संकलन है। धम्मपद की दो गाथाएं द्रष्टव्य हैं—

अभिवादन शीलस्स निच्चं वद्धापचायिनो।
चतारो धम्मा वड्ढन्ति आयु वण्णो सुखम् बलम्॥
न जटाहि न गोतेन न जच्चा होति ब्राह्मणो।
यम्हि सच्चं च धम्मो च सो सुखो सो च ब्राह्मणो॥ (२)

प्रथम गाथा मनुस्मृति में इस प्रकार पठित है—

अभिवादन शीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारितस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥ (३)

स्मृतियों का संकलन लोक प्रचलित विचारों को व्यक्त करने वाली गाथाओं के आधार पर किया जाता रहा होगा जिनमें वेदों का वास्तविक अर्थ सुरक्षित माना जाता था। इसीलिए कहा गया है—

मनुरव्याह वेदार्थ स्मृत्वा यन्मुनिसतम। (४)

राजोवाद जातक में दो गाथाएं इस प्रकार दी हुई हैं—

दहं दढ़स्स खिपति मल्लिको मुदुना मुदु।
साधुम्पि साधुना जेति असाधुम्पि असाधुना।
अक्कोधेन जिने कोधं असाधुं साधुना जिने।
जिने कदरियं दानेन सच्चेनालीक वादिनम्॥

जैन ग्रन्थों की दो गाथाएं भी द्रष्टव्य हैं—

जो सहस्सं सहस्साणं संगामे दुज्जये जिणे ।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ ।। (१)
सरसीए चंदिगाए कालो वेस्सो पिओ जहा जोण्हा ।
सरिसे वि तहाचारे कोई वेस्सो पिओ कोई ।। (२)

उपर्युक्त उदाहरणों से सिद्ध है कि गाथाएं किसी भी विषय पर हो सकती हैं । गेयात्मक होने के साथ ही लघुतम होने से वे लोक में प्रचलित होने के साथ ही स्थायित्व ग्रहण कर लिया करती हैं । लोक व्यवहार व नीति की शिक्षा के लिए गाथाओं से भारतीय धर्म, इतिहास व संस्कृति का सार शताब्दियों से सुरक्षित रहा है ।

गाथा केवल नीति व धर्म तक ही सीमित नहीं रही, शृंगार व करुण रस भी गाथा के विषय बन गए । "गाथा सप्तशती" में लगभग ७०० गाथाएं संकलित हैं जिनका विषय शृंगारिक चेष्टाओं से सम्बद्ध है । "गाथासप्तशती" रसिकों का कण्ठहार बन गई और उसके अनुकरण पर "आर्यासप्तशती" आदि की संस्कृत में और बिहारी सतसई, मतिराम सतसई, वीर सतसई आदि की हिन्दी में, रचना हुई । वीर सतसई (सूर्यमल मिश्रण) को छोड़कर अन्य सतसई ग्रन्थ शृंगार प्रधान है ।

कोशग्रन्थों में भी गाथा का परम्परा प्राप्त अर्थ सुरक्षित है । श्री वी० एस० आप्टे ने अपने कोश में गाथः व गाथा का अर्थ स्पष्ट किया है—

गाथः—A song, singing.

गाथाः—Verse, Religious verse but not belonging to any one of the Vedas. (३)

इसी तरह "संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ" (४) में गाथा का अर्थ छन्द, गीत, प्राकृत भाषा का छन्द दिया हुआ है । प्राकृत के गाथा छन्द का विवेचन" प्राकृत पैंगलम्" नामक ग्रन्थ में हुआ है जिसके अनुसार गाथा के प्रथम चरण में १२, दूसरे में १८, तीसरे में १२ तथा चतुर्थचरण में १५ मात्राएं होती हैं:—

पठमं बारहमत्ता बीये अट्ठारेहिं संजुत्ता ।
जह पठमं तह तीज दहपंच विहूसिआ गाहा ।। (५)
संस्कृत में गाथा छन्द को ही आर्या कहा गया है ।

आधुनिक काल में "गाथा" शब्द का प्रयोग कविप्रवर जयशंकर प्रसाद के काव्य में अवलोकनीय है—

---

(१) उत्तराध्ययन सूत्र ९।३४
(२) भगवती आराधना—शिवकोटी आचार्य १८१०
(३) V. S. Apte, Sanskrit English Dictionary—Page 185
(४) चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा—संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ ।
(५) प्राकृत पैंगलम्—१।५४ (डा० भोलाशंकर व्यास सम्पादित) ।

करुणा गाथा गाती है
यह वायु वही जाती है। (१)

तथा—

उज्ज्वल गाथा कैसे गाऊँ मधुर चाँदनी रातों की।
अरे खिल खिला कर हँसते होने वाली उन बातों की (२)

अतः परम्परागत व आधुनिक प्रयोगों को देखते हुए गाथा को "बैलड" का पर्याय शब्द न मानना ही उचित होगा। इसके स्थान पर "गीतकथा" (३) शब्द "बैलड" के लिए उपयुक्त शब्द जान पड़ता है। प्रबन्ध गीत भी इस अर्थ में अच्छा शब्द है। गाथा में गेयता के साथ कथानक हो सकता है, परन्तु यह अनिवार्य नहीं है। ऊपर कुछ गाथाएं ऐसी भी दी गई हैं जिनमें कथानक का अभाव है।

अपभ्रंश काल में आर्या "या गाथा छन्द का स्थान दूहा या दोहा ने ले लिया। आर्या", गाथा या दूहा जैसे लघुतम प्रगीत सहजस्मरणीय थे अतः कालचक्र में घिस कर भी अपने मूल भावों के साथ सुरक्षित चले आये। प्राचीन सुभाषितों के ग्रन्थों में इन्हें देखा जा सकता है। अतः इन्हें लोक गीतों में ही गिना जाना चाहिए।

विभिन्न भाषाओं के लोक गीतों में गाथाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। गाथाओं की पंक्तियों को यथावत् रखकर विविध धुनों की पंक्तियों की टेक के साथ कई गीत चल पड़ते हैं जैसे हाड़ौती की एक गाथा है—

चन्दा ताणे चाँदणी रे, सुनी सेज बिछाय।
कांटो लाग्यो प्रेम को रे, ऊभी झोला खाय॥

जा सकता है। इनसे भिन्न चम्पू शैली के अनुकरण पर लोक भाषाओं में गीति कथाएं मिलती हैं जिनमें कथा प्रवाह गद्य के माध्यम से चलता है, परन्तु रसात्मक अंशों को सुन्दर गीतियों में बाँध दिया जाता है। प्रबन्धगीत कथावस्तु प्रधान होती है, गेयतत्व उसका सहायक मात्र होता है जबकि गीतिकथा में गेयतत्व ही प्रधान है प्रबन्धात्मकता गौण। संस्कृत महाकाव्यों में बुद्धचरित, सौन्दरनन्द आदि प्रबन्ध-गीत के समकक्ष और "गीतगोविन्द" गीतिकथा के समकक्ष माने जा सकते हैं। गीतिकथाओं का गद्यरूप लुप्त हो जाने पर भी गीतियां शेष रह जाती है। प्रबन्ध गीत में कथानक ही बच रहता है जिस पर पुनः गीत रचे जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जहाँ कथानक प्रबन्ध के प्रकृष्ट बन्ध में नहीं बन्ध पाता वहाँ वह गीतिकथा मात्र रह जाता है। "गोपीचन्द भृतृंहरि" की गीतिकथा भारत के कई प्रान्तों में प्रचलित है। राम का चरित जो प्रबन्ध के लिए सुन्दरमतम कथानक है गांवों में प्रबन्ध व गीतिकथा दोनों के रूप में मिलता है। रामनवमी व दशहरे पर रात्रिभर गांव के निवासी उसके प्रबन्ध रूप का गान नृत्य करते हुए करते हैं। गीतिकथा के रूप में उसके अनेक गीत ग्रामीण स्त्रियाँ व्रतोत्सवादि में गाया करती हैं।

गीतनाट्य—

गीतनाट्य या गीतिनाट्य लोक साहित्य का अन्य महत्व पूर्ण अंग है। सिनेमा के युग में भी गीतिनाट्यों का महत्व कम नहीं हुआ है। भारत के करोड़ों ग्रामीणों के मनोरंजन का यह एक मात्र दृश्य साधन है। प्रातिभ नाटकों के विकास में लोकनाट्यों का महत्वपूर्ण योग रहा है। नाटक को महाकवि कालिदास ने भिन्न भिन्न रुचि वाले लोगों का एकान्त समाराधन करने वाला चक्षुर्यज्ञ कहा है—

देवनामिदमामनन्ति मुनयः कान्तं क्रतुं चाक्षुषं।
रुद्रेणेदमुमाकृतव्यतिकरे स्वांगे विभक्तं द्विधा॥
त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते।
नाट्यं भिन्न रुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्॥ (१)

ऐसी महत्वपूर्ण कला की विधा के विषय में नाट्याचार्य भरतमुनि का कहना है कि यह दुःखार्त व श्रमार्त लोगों के लिए विश्रान्ति देने वाली है—

दुःखार्त्तानां श्रमर्त्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।
विश्रान्ति जननं काले नाट्यमेतन्मयाकृतम्॥ (२)

अवमूल्यन करना है। बात को गोपनीय बनाने के लिए कूट पद्धति अपनाई जाती है। महाभारत में विदुर ने लाक्षागृह की सूचना पाण्डवों को ऐसी ही शैली में दी थी। सूर के दृष्टिकूट साहित्य में प्रसिद्ध ही हैं। पहेलियां वस्तुतः किसी बात को चातुर्यपूर्ण ढंग से उपस्थित करने के प्रयास से विकसित हुई। सभी कलाओं का जन्म इसी भावना से हुआ है। "पहेली बुझाना" मुहावरे का अर्थ भाषा में भ्रम डालना होता है। वक्ता पहेली प्रस्तुत करके श्रोताओं को भ्रम में तो डालता ही है, साथ ही इस रीति से वह उनकी बुद्धि परीक्षा भी लेता है। साहित्य में रूपक, रूपकातिशयोक्ति, समासोक्ति, अन्योक्ति आदि अलंकारों का विकास मनुष्य के ऐसे ही बौद्धिक परीक्षण के प्रयत्न के फलस्वरूप हुआ है। संस्कृत में इसीलिए पहेलियों को वाग्विलास नाम दिया गया। क्षणिक मनोरंजन व बौद्धिक गहराई नापने के लिए पहेलियों से अधिक उत्तम कोई साधन नहीं हो सकता। ग्रामीणों का थका हुआ मस्तिष्क इन पहेलियां को बुझा कर अपने दिल और दिमाग को ताजा करता है। (१)

पहेलियों की परम्परा बड़ी प्राचीन है। अश्वमेधादि दीर्घकालीनसत्रों में "ब्रह्मोदय" (रहस्यवादी प्रहेलिकाएं) अनुष्ठान का ही एक अंग मानी जाती था। ऐसी ही प्रहेलिकाओं में से एक यह है—

चत्वारि शृंगा त्रयो अस्य पादा
द्वे शीर्षे सप्ताहस्तासो अस्य
त्रिधा बद्धो वृषभो रोर वीति
महादेवो मर्त्यो आविवेश ॥ (२)

यह ठीक ही कहा गया है कि लोकोक्ति भाषा की जान है। किसी ग्रन्थ अथवा प्रसिद्ध पुरुष की कोई रस—पेशल उक्ति इतनी प्रचार में जाती है कि वह अप्रस्तुत के रूप में लोक में वाग्व्यवहार का साधन बन जाती है। ऐसी उक्तियों को ही लोकोक्ति नाम दिया गया है। ये उक्तियां कभी अपने मूलभाव को फिर भी बनाए रखती हैं। लोकोक्तियों ने प्रातिभ साहित्य को कदाचित् सबसे अधिक प्रभावित किया है। महाकवि कालिदास, माघ, श्रीहर्ष आदि संस्कृत कवियों तथा घनानन्द, पद्माकर, तुलसीदास आदि हिन्दी कवियों के काव्य में लोकोक्तियों का यथावत् प्रयोग देखा जा सकता है।

संस्कृत में लोकोक्तियों का भण्डार भरा पड़ा है। संस्कृत सुभाषितों का संक्षिप्त रूप ही लोक मानस में लोकोक्ति के रूप में ढल गया। संस्कृत में ऐसा रूप न्यायों (घुणाक्षर न्यायआदि) के रूप में प्रचलित रहा। लोकभाषाओं की लोकोक्तियां गद्य में भी मिलती हैं पद्य में भी। समास शैली में बात कहने का सर्वप्रचलित साधन लोकोक्ति ही है। लोकोक्तियों के प्रयोग से साहित्यकार की लोक सम्पर्क क्षमता का पता चलता है। समाज में नैतिकता आदि के भाव लोकक्तियों के माध्यम से युग युग से सुरक्षित चले आये हैं। लोकोक्तियों में बड़ी ही प्रभावपूर्ण शैली में बात कह दी जाती है। कहीं व्यंग्य बड़ा ही तीखा होता है। हाड़ौती में लोकोक्ति को "कहणावत" कहते हैं। लोकोक्तियों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से (१) किया गया है—

च्यवन-सुकन्या, [1]नचिकेता, [2]आदि अनेकों उपाख्यान वैदिक साहित्य में मिलते हैं जिनका पुराणादि में विस्तार हुआ यह नहीं कहा जा सकता कि इनमें से कितने उपाख्यान लोक-साहित्य से वैदिक रूपकों के विश्लेपण के लिए ऋपियों ने ले लिए थे, परन्तु पुराणों के कल्पना प्रधान वर्णनों से इस बात की संभावनाए ँ बढ़ जाती हैं कि उनमें इतिहास और रूपक के सम्मिश्रण का विचार पुराणकारों को लोक-साहित्य से ही मिला होगा जिसमें सामयिक ऐतिहासिक पात्र या घटना को सार्वकालीन बनाने के लिए कल्पना की एक विशेप प्रक्रिया अपनाई जाती है।[3] ईसवी शती के प्रारम्भ में विशुद्ध लोक-जीवन सम्बन्धी कथाओं का संकलन गुणाढ्य ने बृहत्कथा में किया। पैशाची भापा में लिखित इस विशालकाय ग्रन्थ में कहते हैं एक लाख के लगभग कथाए ँ थीं जिनमें से अधिकांश नष्ट करदी गई। अवशिष्ट कथाओं के आधार पर बृहत्कथामंजरी, कथासरित्सागर व बृहत्कथा श्लोक संग्रह ग्रन्थों की संस्कृत में रचना हुई। मूल ग्रन्थ अप्राप्य हैं। यह कथासंग्रह रामायण और महाभारत की तरह ही अनेक कवियों का उपजीव्य रहा है। इससे लोक-साहित्य की महत्ता जानी जा सकती है। भारत की सभी बोलियों में बिखरी हुई लोक-कथाओं का संकलन भी किया जाय तो ग्रन्थ बृहत्कथा के समान ही बृहत्काय व बहुमूल्य हो सकता है।

हाड़ौती में भी कथाओं का व्यापक भण्डार भरा पड़ा है। कई कथाए ँ तीन-तीन दिनों में पूरी होती हैं। कहानी कहने वाला 'कथकड़ों' कहलाता है। वह झूम झूमकर आरोहावरोह पूर्वक कथा सुनाता है। सामान्यतया कथाए ँ कल्पना मिश्रित ऐतिहासिक होती हैं। प्रेम, वीरत्व, करुणा और रहस्यरोमांच की अभिव्यंजना इन कथाओं में चरमरूप में देखी जा सकती हैं। मानव की मूलभूत प्रवृत्तियों का यथार्थ-रूप में उद्घाटन करने में समर्थ होने के कारण ये कथाए ँ किसी अजनबी को भी अपनी ओर आकृष्ट किए बिना नहीं रह सकतीं। पौराणिक व धार्मिक कथाए ँ व्रतमहोत्सवादि से सम्बन्ध रखती हैं। ये कथाए ँ सामान्यतया सुखान्त ही होती हैं।

लोक-साहित्य में लोक-गीतों का महत्व—

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि लोक-साहित्य की लोकगीत ही प्रमुख विधा है। गद्यात्मक लोक-कथा के अतिरिक्त सारा लोक-साहित्य गेय है और इसीलिए उसे लोक-गीतों का सहयोगी मात्र माना जा सकता है। लोक-साहित्य की इस विधा ने प्रातिभसाहित्य की प्रबन्ध और मुक्तक काव्य शैलियों को तो प्रभावित किया ही है, मधुरगीतियों व तदनुरूप संगीत की लयों के विकास में भी योग दिया है।

---

(१) शतपथ ब्राह्मण ११।५।१

(२) तांड्य महाब्राह्मण १४।६।११

(३) बद्रीप्रसाद पंचोली-श्रुतिसाहित्यः एक विवेचन नवभारती वर्ष १९६०-६१

द्वितीय प्रकरण

लोकगीत : स्वरूप व परम्परा

द्वितीय प्रकरण

लोक-गीत : स्वरूप व परम्परा

लोक-मानस की भावभूमि—

मानव जीवन की गहनता व व्यापकता का पता साहित्य से विशेषतया लोक-साहित्य से चलता है।

व्यक्ति का जीवन "विराट् जन-समुदाय"[1]—लोक का एक अंश है। लोक-चेतना का विस्तार लोक-साहित्य में देखा जाता है। अतः लोक-साहित्य व्यक्ति-निर्माण का, जिनसे समाज बनता है, प्रेरणाप्रद स्रोत है। लोक की अनुशीलन परम्परा विविध दर्शनों का, धारणा विविध धर्मों का, लोक के संस्कार विविध संस्कृतियों का तथा लोक की सौन्दर्य चेतना-साहित्य और कलाओं का उद्गम स्रोत है। अतः लोक-साहित्य में धर्म, संस्कृति, दर्शन व कलाओं का समन्वित व मूल रूप खोजा जा सकता है।

लोक-साहित्य की प्रमुख विधा लोक-गीत है। लोक-गीतों की स्रोतस्विनी का उद्गम-स्थल लोक-मानस है। अतएव उसकी भावभूमि का विवेचन लोक-गीतों की विविध प्रवृत्तियों के समझने में सहायक होगा।

भारतीय भाषाओं के शब्द पारिभाषिक होते हैं। मनुष्य को जन, लोक (लोग), मनुष्य, नर आदि नाम दिये गए हैं। इनके विशिष्ट पारिभाषिक अर्थ है—

१: जन—प्रजनन करने वाला[2] अथवा प्रकृष्ट रूप से जन्म लेने वाला।
२: लोक—(लोक दर्शन) देखने वाला[3]।
३: मनुष्य—(मननान्मनुष्यः) मनन करने वाला[4]।
४: नर — (न रमते, नरति इतिनच)—"न कर्म लिप्यते नरे"[5]

---

(१) डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय—लोकायन—पृष्ठ १
(२) पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर—मानवता का उद्भव व विकास
कल्याण—मानवता अंक वर्ष : ३३
सं० १ पृष्ठ १६३
(३) पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर—मानवता का उद्भव व विकास
कल्याण—मानवता अंक : वर्ष ३३ सं० १ पृष्ठ १६३
(४) उपर्युक्त
(५) शुक्ल-यजुर्वेद—४०।२

बहु व्याहितो वा अयं बहुतो लोकः।
क उतत्स्य पुनरीहतो अयात् ॥[1]

लोक की परम्परा का अनुशीलन मनुष्य को सर्वदर्शी बनाने की सामर्थ्य रखता है —

प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः[2]

युगचिन्तन के अग्रगन्ताओं ने यह निश्चितरूप से समझा है कि ज्ञान-विज्ञान का कोई भी ग्रन्थ हो अपने मूल रूप में उसका मानव-जाति के लिए हितकारी होना आवश्यक है। मानवतावादी दृष्टिकोण के अभाव में साहित्य निष्प्राण हो जाता है। सम्पूर्ण भौतिक पदार्थों का मानव के लिए उपयोग सांख्य-दर्शन के आचार्य ईश्वर कृष्ण ने "संघात परार्थत्वात्[3], कह कर स्वीकार किया है। लोक-मानस में भी इसी दृष्टिकोण की प्रतिष्ठा होती है। लोक-मानस की इसी भावभूमि पर लोक-गीतों की स्वरसरिता का उद्गम होता है।

लोक-गीतों की परिभाषा व उनका स्वरूप —

लोक का तात्पर्य उन लोगों के समूह से लिया जा सकता है जो सामान्य संस्कार, सामान्य शास्त्र-ज्ञान, सामान्य पांडित्य, सामान्य चिन्तन और सामान्य गौरव से अधिष्ठित हैं तथा जिनसे आभिजात्य संस्कारों, शास्त्रीयता, पांडित्य, विशेषज्ञता, विशिष्ट चिन्तन और गुरुता का उदय होता है। सामान्य से उद्भव

(१) जै० उ० ब्राह्मण ३०।२८
(२) महाभारत आदिपर्व १।१०१
(३) सांख्यकारिका।

होने के कारण विशेष सदा सामान्य के समक्ष झुका है और जब कभी सामान्य तथा विशेष में विरोध उत्पन्न हुआ तो सामान्य ही विजयी हुआ है। साथ ही यह भी मानना होगा कि सामान्य की ऊँचाई विशेष से ही स्थिति होती है। आज का युग सामान्य के प्रति विशेष के विद्रोह का है। सामाजिक सीमाओं में सोया हुआ व्यक्ति का 'अहं' विद्रोह कर रहा है और उसकी कुण्ठाओं का दर्शन व्यवहार, चिन्तन और साहित्य-सृजन में स्पष्ट हो रहा है। यह स्थिति सदा रहने वाली नहीं है। समाज में व्यक्ति की समुचित प्रतिष्ठा होगी ही, साथ ही व्यक्ति के 'अहं' के विकृत संस्कार भी निःशेष हो जायेंगे। तो लोकगीतों का उदय लोक मानस में होता है।

लोक-गीतों के अर्थ में ग्रामगीत या ग्राम्यगीत शब्द भी प्रचलित हैं। अंग्रेजी में Folk Song, Folk Music, Folk Dance, आदि में आये हुए Folk का अर्थ आदिम जातियाँ किया जाता है। आदिम जातियों के भद्दे गीतों, कर्कश संगीत और तारतम्य-हीन नाच को इन शब्दों द्वारा व्यंजित किया जाता है। वस्तुतः इस अर्थ में ये शब्द अत्यन्त अप्रिय संकीर्णता ध्वनित करते हैं। लोक-गीत सामूहिक चेतना के सहज उद्गार हैं इसलिए उन्हें आदिम या परवर्ती जातियों के साथ सम्बद्ध देखना अध्ययन की अवैज्ञानिक परम्परा है। यह ठीक ही कहा गया है कि आदिम जाति के लिये ही "फोक सांग्स" की अर्थसत्ता को सीमित रखना संकीर्णता एवं आभिजात्यवर्ग के अभिमान का परिचायक हो सकता है।[1] साथ ही लोक-गीतों के अध्ययन के साथ आर्य-अनार्य संस्कृतियों का सम्बन्ध जोड़ देना भी असंगत है।

यूरोपीय लोक-गीतों के अध्येताओं ने लोकगीतों की परिभाषाएँ इस प्रकार की हैं —

१. लोक-गीतों का स्वतः उद्भव होता है।[2]
२. लोक-गीत आदिम मानव का स्वतोद्गीर्ण संगीत है।[3]
३. इन्हीं के आधार पर भारतीय अध्येताओं का भी निष्कर्ष है—'लोक-गीत आदिम अवस्था में जीवन बिताने वाले लोगों के जीवन का स्वतोद्गीर्ण प्रवाह है।"[4]

---

(१) डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय—लोकायन—पृष्ठ १०
(२) A folk song composes itself–Grimm Encyclopaedia Britanica Vol. IX. Page 448
(३) Primitive Spontaneous music has been called folk song—above page 447.
(४) K. B. Dass—A study in Orrison Folklore-Introduction P. 1

कुछ अन्य अध्येताओं के विचार लोकगीतों के विषय में इस प्रकार हैं—

१. आदिम मनुष्य हृदय के गानों का नाम लोक-गीत है।[1]

२. ग्रामगीत आर्येतर सभ्यता के वेद हैं।[2]

३. ग्रामगीत प्रकृति के उद्गार हैं।[3]

४. सामान्य लोकजीवन की पार्श्वभूमि में अचिन्त्यरूप से अनायास ही फूट पड़ने वाले मनोभावों की लयात्मक अभिव्यक्ति लोकगीत कहलाती है।[4]

५. लोकगीत किसी संस्कृति के मुँह बोले चित्र हैं।[5]

६. लोकगीतों में संगीत एवं काव्य का सम्मिश्रण होता है।[6]

७. लोकगीतों के (अव्यक्त) निर्माता लोक-भावना में अपने भाव मिला देते हैं।[7]

८. लोकगीत हमारे जीवन-विकास के इतिहास हैं।[8]

९. लोकगीत रस में सने हुए हैं।[9]

१०. लोकगीत स्वतः स्फुरणा की देन हैं।[10]

इन विचारों के आधार पर, यदि संकीर्णताद्योतक आदिम, आर्येतर आदि शब्दों को छोड़ दिया जाय तो निम्न बातों पर हमारा ध्यान केन्द्रित हो जाता है—

१. लोकगीत स्वतः स्फुरणा से उद्भूत रससिक्त उद्गार हैं।

२. लोकगीत मानव-सभ्यता व संस्कृति के विकास पर प्रकाश डालते हैं।

३ लोकगीतों में मानव-हृदय की रागात्मक प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति लयात्मक शैली में होती है।

---

(१) राजस्थान के लोकगीत (पूर्वार्द्ध) प्रस्तावना—पृ० १—२
(सूर्यकरण पारिख व नरोत्तमदास स्वामी)

(२) आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी—छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का परिचय भूमिका-पृष्ठ ५

(३) स्व० रामनरेश त्रिपाठी—कविता-कौमुदी : भाग ५—पृष्ठ १-२

(४) डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय—लोकायन—पृ० १६

(५) देवेन्द्र सत्यार्थी—आजकल (दिल्ली) सं० ७, नवम्बर, १९५१

(६) कोमल कोठारी—लोकगीत और संगीत—परम्परा (जोधपुर) चैत्र, संवत् २०१३

(७) स्व० गुलाबराय—काव्य के रूप—पृष्ठ १२३

(८) डॉ० तेजनारायणलाल शास्त्री—मैथिली लोक-साहित्य का अध्ययन पृष्ठ १६

(९) मोहनकृष्ण दर—कश्मीर का लोक-साहित्य—पृष्ठ ४७

(१०) बद्रीप्रसाद पंचोली—'श्रुतिगरिमा' शीर्षक निबन्ध : नवभारती (श्री गंगा नगर) वर्ष—६ अंक १—पृष्ठ ५६

४. लोकगीत अनादिकाल से सामूहिक भावनाओं को आधार बनाकर सहज रूप में प्रवाहित होते आये हैं।

५. लोकानुरंजन के साथ ही ये मानवीय कर्मों के प्रेरणास्रोत भी रहे हैं।

लोकगीतों के रचयिता अज्ञात हैं। वेदों के समान इन्हें भी अपौरुषेय कहा जा सकता है। वेदों का अपौरुषेय ज्ञान लोकगीतों में अब भी जीवित है।[१] लोकमानस की जिस भावभूमि में सहज रूप में लोकगीतों का उदय होता है, यह आर्षपरम्पराओं की अनुगामिनी होने से लोकगीतों के लिए 'श्रुति'[२] नाम सार्थक बना देती है। संगीत में शब्द के प्रारम्भ की लयात्मक धुन को भी 'श्रुति' कहा जाता है। लोकगीतों का सहज रूप में ही संगीत से सम्बन्ध होने के कारण 'श्रुति' नाम की सार्थकता और भी प्रमाणित हो जाती हैं।

ग्राम शब्द का अर्थ समूह होता है। अतः ग्रामगीत नाम भी यथार्थ है। लोकगीतों का प्राचीन नाम ग्राम्यगीत ही मिलता है —

ग्राम्यगीतं न शृणुयाद् यतिर्वनचरः क्वचित्।[३]

परन्तु लोकगीत शब्द अधिक पारिभाषिक ज्ञात होता है। यही शब्द लोकगीतों को आर्षपरम्परा के सन्निकट ला देता है।

इसीलिए शास्त्रीय नियमों के उल्लंघन की अनिवार्यता भी लोकगीत का एक लक्षण मानी गई है। [१]

इन मान्यताओं को देखते हुए यह कहना पड़ता है कि लोकगीत सर्व-सामान्य की बहुश्रुत परम्परा के स्वतःस्फूर्जित उद्गार हैं। इनके कर्ता अज्ञात हैं, परन्तु यह ही लोकगीत होने के लिए आवश्यक नहीं है। उनमें सामूहिक चेतना के दर्शन होते हैं। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से मानव ने सभ्यता के क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति की है, परन्तु तात्विक दृष्टिकोण से उसमें वही रागात्मक प्रवृत्तियां घर किए हुए हैं जो आदिम मानव में होगी। इस विषय में महाकवि रामधारीसिंह 'दिनकर' के ये शब्द माननीय हैं —

जीत वही जो मनु के चरणों में लोटी थी,
हार वही जिसके नीचे वह कांप उठा था।
× × ×
जिज्ञासा का धुवां उठा जो मनु के सिर से,
सब के माथे से वह उठता ही जाता है। [२]

आदिम मानव के मानस की भावभूमि जिस पर गीतिकाव्य का उदय हुआ था, नितनूतन परिवर्तित रूप में अब भी मनुष्य को प्राप्त है। अतः गीतियों का अनुरंजनात्मक प्रवाह अब भी प्रवाहमान है। गीति के उदय के लिए तीव्र मनोवेग आवश्यक है। क्योंकि भाव की तीव्रता ही गीति की आत्मा है। वाणी के परिवेश में भाव का अयत्नज उद्गार गीति है। [३] मनोवेग की तीव्रता यदि व्यक्ति का आश्रय लेकर प्रकट हो तो प्रातिभ साहित्य में गिने जाने योग सुन्दर गीत बन जायगा, परन्तु वह यदि समूह का आश्रय लेकर प्रकट हो तो उसे लोकगीत कहना युक्तिसंगत होगा। इस कथन का तात्पर्य यह हुआ कि लोकगीत का रचयिता चाहे वह ज्ञात न हो, आत्मानुभूति के स्थान पर परोक्षानुभूति से पीड़ित होकर अपने उद्गार अभिव्यक्त करने को विवश हो उठा होगा। सुखानुभूति की अपेक्षा दुःखानुभूति में यह अधिक सम्भव है क्योंकि दुःख मनुष्य के संवेदनशील हृदय को सारे संसार से एक अविच्छिन्न बन्धन में बांध देता है। [४] दुःख पार्थिव न होकर अपार्थिव भी हो सकता है—काल और सीमा के बन्धन में पड़े हुए असीम चेतन के क्रन्दन के रूप में। [५] अतएव 'एको रसः करुण एव निमित्तभेदात्' [६] कथन की सत्यता समझ में आती है और पन्तजी की कविता की यह परिभाषा भी —

---

(१) तामिल कान्फ्रेंस के विवरण का अंश डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय द्वारा 'लोकायन' के पृष्ठ १५ पर उल्लिखित।
(२) रामधारीसिंह 'दिनकर' —'भावी पीढ़ी से' शीर्षक कविता।
(३) लालधर त्रिपाठी-प्रवासी गीतिकाव्य का विकास : वक्तव्य पृ० ?
(४) महादेवी वर्मा—रश्मि की भूमिका।
(५) उपर्युक्त।
(६) भवभूति—उत्तररामचरितम्—३।४७

वियोगी होगा पहला कवि
आह से उपजा होगा गान
उमड़ कर आँखों से चुपचाप
वही होगी कविता अनजान।[1]

इसीलिए कदाचित् आदि-कवि को 'परम कारुणिक' विशेषण से बारबार याद किया गया है। महादेवी वर्मा दुःख की प्रवृत्ति पर अपने विचार प्रकट करती हुई कहती हैं—दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँधने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख चाहे हमें मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी नहीं पहुँचा सकें, परन्तु हमारा एक बून्द आँसू भी जीवन को अधिक मधुर बनाए बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है परन्तु दुःख सबको बाँट कर। विश्व-जीवन में अपने जीवन को, विश्व-वेदना में अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देना, जिस प्रकार एक जल-बिन्दु में समुद्र ही मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।[2]

स्थूल जगत् की अपूर्णता से विक्षुब्ध होकर अव्यक्त पूर्णता के अन्वेषण में लीन आत्मा सदैव विरहित रहती है।[3] अतः बाह्य जगत् में मानव को भौतिक अभावों, रोगों आदि से पीड़ित देख कर और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से आत्मा का परमात्मा से शाश्वत रूप से वियुक्त पाकर परोक्षानुभूति से ग्रस्त कवि ने सामूहिक भावना को अभिव्यक्ति का विषय बनाया, गीति फूट निकली। लोकगीत का सहज उदय इसी क्रम से हुआ है।

लसन्ति कलहुंकृतिः प्रसभकम्पितोरः स्थल
त्रुटद्गमक संकुलाः कल मंडनी गीतयः ।। [१]

भोज-प्रबन्ध का यह दूहा लोक-गाथा से लिया गया जान पड़ता है—

वाह विछोड़वि जहि तुहं, हऊं तवई का दोसु।
हिअयट्ठिय जई नीसरहि, जाणउं मुञ्ज सरोसु ।।

जयदेव व विद्यापति पर लोक-गीतों का कम प्रभाव नहीं है। तुलसी ने तो लोक-गीतों की शैली में पार्वती मङ्गल, रामलल्लानहछू आदि काव्यग्रन्थों की रचना तक की है। इससे लोक-गीतों की सशक्त परम्परा का अनुमान किया जा सकता है। तुलसी ने सयानी सखियों के गीत गाने का उल्लेख किया है —

चली संग लई सखी सयानी
गावत गीत मनोहर बाणी

कबीर के नाम से भी आदि मङ्गल, अनादि मङ्गल एवं अगाध मङ्गल आदि काव्य मिलते हैं। [२] कबीर के गीत में तो लोक-गीतों के सभी तत्त्व स्पष्ट दृष्टि-गोचर होते हैं —

ननदी गे तें विषम सोहागिन
तें निन्दले संसारा गे।
आवत देखि एक संग सूती
तें औ खसम हमारा गे [३]

तृतीय प्रकरण

ड़ौती भाषा और उसकी विशेषताएँ

तृतीय प्रकरण

हाड़ौती भाषा और उसकी विशेषताएँ

भाषा और बोली—

जिसका भाषण किया जाय उसे भाषा कहते हैं। साधारणतया बोली का भी वही अर्थ है, परन्तु भाषा शास्त्रियों ने क्षेत्र विशेष में शिष्टजनों द्वारा बोली जाने वाली भाषण शैली को ही भाषा कहा है। बोली पर व्यक्तिगत व वर्गगत प्रभाव पड़ता रहता है। इसलिए उसका रूप स्थाई नहीं होता। वह थोड़ी थोड़ी दूरी पर बदलती रही है। कहावत है—"कोस कोस पर पाणी बदले, तीन कोस पर वाणी"। साधारणतया इतनी सी दूरी पर भाषा में आये हुए परिवर्तन को जानना कठिन कार्य है परन्तु एक तटस्थ व्यक्ति को दस बीस कोस के अन्तर पर यह भाषा-भेद स्पष्टतः प्रतीत हो जाता है।

मध्यकाल में संस्कृत से भिन्न व्यवहार की भाषा को ही "भाषा" या "भाखा" कहा जाता था। "भाखा" में साहित्य रचना करना प्रतिष्ठा के विरुद्ध समझा जाता था। केशव जैसे महाकवि को "हिन्दी भाखा" में साहित्य रचना करने के लिए आत्मग्लानि थी परन्तु महाकवि तुलसीदास कहते थे—"का भाषा का संस्कृत प्रेम चाहिये सांच।" संस्कृत-भाषा-विवाद से इतना ही निष्कर्ष निकलता है कि संस्कृत बोली अर्थात् बोलचाल की भाषा नहीं रह गई थी। स्वतन्त्र भारत की राष्ट्रभाषा बनने का गौरव मेरठ के आस पास कुछ प्रदेश में बोली जाने वाली "बोली" को ही है जिसने परिनिष्ठित भाषा का रूप ग्रहण कर लिया है।

बदलते हुए भाषा के रूपों में कुछ समानता (रूपतत्व व प्रयोग शैली की) खोजकर उसे बड़ी भाषा कह दिया जाता है जो कई बोलियों में बंटी होती है। वास्तव में ये बोलियाँ उस भाषा की क्षेत्रीय शैलियां हैं। क्षेत्रीय विशेषताओं के आधार पर शैलीभेद की संभावनाएं बोली बदलने का प्रमुख कारण है। वस्तुतः बोली भी भाषा ही है, भाषा का ही रूप।[1] यह न समझ लेना चाहिए कि जिसमें साहित्य न हो वह बोली और जिसमें साहित्य हो वह भाषा है। इन बोलियों में कोई सामान्य सूत्र होना चाहिए, यदि सामान्य सूत्र भिन्न हो गया तो भाषा भिन्न।[2]

---

(१) भारतीय भाषा विज्ञान—किशोरीदास वाजपेयी—पृष्ठ ३०२

(२) उपर्युक्त—पृष्ठ ३०२

हाड़ौती भाषा—

हाड़ौती प्रदेश की भाषा का नाम हाड़ौती है। भाषा का नाम लिये जाने पर हमारा ध्यान अनायास ही देशभाषा या राष्ट्रभाषा, लोकभाषा या जनपदीय भाषा तथा शास्त्रीय भाषा की ओर चला जाता है। पारिभाषिक शब्द भंडार और व्याकरणसम्मत प्रयोगों की दृष्टि से संस्कृत हमारी सांस्कृतिक व शास्त्रीय भाषा बन गई है। हिन्दी को संविधान में राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया गया है। रही जनपदीय भाषाएं, उनमें कुछ साहित्यिक भाषाएं हैं और बोलचाल की भी, तथा कुछ केवल बोलचाल की भाषायें हैं, उनमें उल्लेखनीय साहित्य की रचना नहीं हुई है यद्यपि कभी किसी उत्साही साहित्यकार के द्वारा उसमें भी रचना की जाती है। अवधी साधारण बोलचाल की भाषा थी किन्तु तुलसीदास के कारण वह विश्वसाहित्य में गौरव की अधिकारिणी बन गई। हाड़ौती केवल बोलचाल की भाषा है। कुछ साहित्यिक गीत, दो तीन प्राचीन शैली के नाटक, कुछ गीत-प्रबन्ध यही हाड़ौती की सम्पत्ति हैं परन्तु हाड़ौती में लोकगीतों का समृद्ध भण्डार हैं, गीतप्रबन्ध भी लोकप्रबन्ध काव्य ही हैं। इन लोकगीतों के रूप में हाड़ौती के पास ऐसा मूलधन सुरक्षित है जो उसे भाषाविज्ञान की दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रमाणित करने के लिए तो पर्याप्त है ही, साथ ही साथ अपनी सहज प्रवाहयुक्त शैली व समर्थ परम्परा के कारण अध्ययन का विषय भी बन जाती है। गंगा और यमुना संयुक्त प्रान्त को सिंचित करके उर्वरा बनाती हैं किन्तु चम्बल और कालिसिन्ध ऊँची-ऊँची किनारों में इस तरह संयत होकर बहती है कि न तो कभी बाढ़ के समय भी वह किनारों के बाहर फैल कर अपना रोष प्रकट करती है और न प्रेरणा के अभाव का कारण ही बनती है। गङ्गा यमुना आदि की बाढ़ से जितनी हानि होने की संभावना हो सकती है उतनी हाड़ौती की नदियों से नहीं। वे तो मानिनी कुल वधुओं के समान हैं जो परिवार की परिपाटी पर बन्धकर कुटिल भ्रूभंग करती हुई तीव्र गति से गमन करती रहती हैं। कालिसिन्ध (पाटलावती) का हास्य अट्टहास से कम नहीं है। बड़े बड़े पहाड़ों के मद को चूर करके वह बहती है। उसके दीर्घकालीन जीवन-संघर्ष की सूचना उसके प्रवाहमार्ग में पड़ी हुई बड़ी छोटी शिलाएं देती हैं। चम्बल व पार्वती का भी यही हाल है। यदि हम उत्तरी भारत की साहित्यिक परम्परा को गंगा के प्रवाह से उपमित करें तो हाड़ौती के साहित्य की उपमा कालिसिन्ध व चम्बल के प्रवाह से देनी होगी। चम्बल अपनी समस्त सहायिकाओं के सन्देश लेकर गङ्गा से जा मिलती है। उसी तरह हाड़ौती भी अपनी सम्पत्ति भाव-परम्परा को लेकर उत्तरी भारतीय साहित्यिक परम्परा में मिल जाती है। सामाजिक परम्पराओं के ऊँचे ऊँचे तटों से नियन्त्रित हाड़ौती साहित्य प्रवाह की तीव्रता, विदग्धतापूर्ण शैली, उदात्तभावसरणि और अनुभूति की गहराई के कारण हाड़ौती भाषा का महत्व बढ़ जाता है। हाड़ौती साहित्य श्रुतिपरम्परा का अंग ही अधिक रहा अतएव उसके साथ सामाजिक

चेतना का महत्वपूर्ण अंश जुड़ गया है और वह रूढ़ि मात्र बनने से बच गया है। यद्यपि इससे हानि भी हुई वह यह कि उसे विश्वप्रसिद्ध कर देने वाली कोई कृति रही न कृतिकार।

विद्वानों ने अवतक हाड़ौती को राजस्थानी की एक वोली माना है परन्तु अनेक कारणों से इस मत को असंगत कहना पड़ता है। हाड़ौती राजस्थान की एक शाखा है अवश्य, परन्तु इसे शाखा कहने की अपेक्षा राजस्थान के विस्तृत क्षेत्र में विखरी हुई भाषाओं में से एक राजस्थानी भाषा मण्डल की सदस्या कहना अधिक संगत होगा। आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ने स्पष्ट किया है कि हिन्दी की एक वोली है "अवधी" यह कहने का मतलव इतना ही है कि अवधी उस भाषा मण्डल की एक सदस्या है जिसकी एक सदस्या (खड़ी वोली) इस समय हिन्द भर के व्यवहार की भाषा है और इसीलिए हिन्दी नाम से प्रसिद्ध है।[१] इसी तरह हाड़ौती के लिए भी कहा जा सकता है कि वह उस भाषा मण्डल की एक सदस्या है जिसकी एक परिनिष्ठित वोली दक्षिणी राजस्थानी (मारवाड़ी) है और राजस्थान में वोली जाने वाली भाषाओं की समष्टि होने से राजस्थानी कही जाती हैं और जो स्वयं भारत के विशाल भाषा परिवार की एक सदस्या है।[२]

इस प्रकार हाड़ौती राजस्थान के क्षेत्र विशेष हाड़ौती प्रदेश की भाषा है वह राजस्थानी भाषा मण्डल की सदस्या है। थोड़ी थोड़ी दूर पर वदलने वाले रूप उसकी वोलियां हैं। इन वोलियां में सामान्य सूत्र विद्यमान होने से इन्हें एक भाषा के अन्तर्गत मान लिया गया है। हाड़ौती प्रदेश के सीमावर्त्ती कुछ क्षेत्र जिनमें हाड़ौती भाषा के सूत्र के अतिरिक्त वाह्य प्रभाव भी लक्षित होता है उस को सीमावर्ती तटस्थ भाग मानना चाहिए।

हाड़ौती भाषा की प्रमुख विशेषताएँ

सामान्य प्रवृत्तियाँ—

हाड़ौती में ळ मूर्धन्य ध्वनि का अस्तित्व, णकार वहुलता, अनुनासिकता, ऋ का विशेष (र जैसा, उच्चारण, सार्थक के ड़ व ल तद्धितों व पुं-प्रत्यय "ओड़" का व्यापक प्रयोग जैसी कुछ प्रमुख प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं। उदाहरणार्थ—

ळ (मूर्धन्य ध्वनि)—आळूयो, खवाळ। धोळो, पीळो आदि शब्दों में इस ध्वनि का प्रयोग हुआ है। आधुनिक भाषाओं में यह ध्वनि हाड़ौती को छोड़ कर केवल मराठी में पाई जाती है।

(१) भारतीय भाषा विज्ञान—किशोरीदास वाजपेयी—पृष्ठ ३१०

(२) हाड़ौती भाषा और उसकी विशेषताएँ—वद्रीप्रसाद पंचौली "प्रेरणा" वर्ष १० अंक ११

णकार बहुलता—

पाणी (पानी), दाणा (दाना), रहण (रहन) धणो (धनिया) आदि में "न" को बरबस ण में बदलने की प्रवृत्ति देखने को मिलती है।

अनुनासिकता—

चांवल, कंवल (कमल), थूंणी (स्थूण) रांगस (राक्षस) आदि शब्दों में अनुनासिकता की प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं।

"ऋ" का उच्चारण हाड़ौती में "र" जैसा होता है। ऋषि व ऋतु का हाड़ौती में रषि (या रूषि) "व" रतु (या रुत) जैसा होता है। संभव हैं "ऋ" का मूल उच्चारण ऐसा ही रहा हो।

ड़ व ल प्रत्यय—

हाड़ौती में तावड़ो, सीधड़ो, चोरड़ो आदि में सार्थक के "ड़" व दूंदलो (तुन्दिल), दूथली, रामलो आदि में सार्थक के "ल" का तथा नींदड़ली आदि में ड़ व ल दोनों प्रत्ययों का प्रयोग देखा जा सकता है।

"ओ" पुं—प्रत्यय—रामो, धोलो, लछमणों, कान्हो (कृष्ण) आदि में "ओ" पुं—प्रत्यय का प्रयोग हुआ है। स्त्रीलिंग में ऐसे शब्दों के रूप "इ" प्रत्यय से रामी, धोली, लछमणी, कान्ही जैसे बनते हैं।

हाड़ौती भाषा के उदाहरण

गद्य—

(क) एक राजो छौ, ऊं को राज पाट ऊं का मंतरी न छुड़ा ल्यौ अर ऊंई देस निकालो दे दूयौ। ऊ चालर अ चालर अ बारहा र बारहा चौबीस खण्ड की वन खण्डी में पूग्यो। (वर्णनात्मक गद्य का उदाहरण)

(ख) सैज सूनी ह्र र, गी, बीनणी रात भर सावण भादवा का मेह मं डूबती उतराती र्‌ही, सांस को भूला प" कदी कांपती, कदी आंख्या मीच लेती, कदी साडरी डोल दौवड़ा हो जाती। आंख्या का झरोखा सूं देख तो कांई, काना सूं सुण तो कांई।

(भावात्मक गद्य का उदाहरण)

(ग) सिदे सिरी सरवोपमा विराजमान व्याइ जी सा "सिरी १०८ सिरी कसन गोपाल जी गांव पानाहैड़ा का सूं सेवग राम करण को रामरमोल मालूम होवे अपरंच, यहां सब सिरीजी सहाय छे।"

(एक पत्र का अंश)

पद्य—

(क) ए बनड़ी, थारा काकाजी लगायो हरियो बाग ।
अब थार बिन सींचे कूंण, म्हारी आंबा वरणी कयलड़ी ।
(दुलहिन की विदा के समय का एक कारुणिक गीत)

(ख) उड़ जा रे सुवा तू पचरंग्या ।
जा जारे म्हारे देस, धू की आमलिया ॥
(एक संदेश गीत का अंश)

(ग) आंबा मोरया, लीमूं मोरया, मोरया दाड़म दाख ।
सिरी किसन जी कांस ऽ बैठ्या, चड़ी चुड़गला बास ऽ
बैठ्या, मूनी जी की मून छूटी मूनी बाबा राम राम ।
(संध्या का भावुकता पूर्ण वर्णन)

उपर्युक्त उदाहरणों से जीवन के विविध क्षेत्रों में प्रयुक्त हाड़ौती भाषा का रूप मुखरित हो उठता है ।

हाड़ौती भाषा की कुछ अन्य विशेषताएँ

१. परुषता—

हाड़ौती में अपने निकटवर्ती क्षेत्र ढूंढाड़ व सफाड़ की कोमलता की तुलना में परुषता के दर्शन होते हैं । मां का "मायड़" रूप व्रज में प्रयुक्त माई से परुषता लिये हुए है । "चोर" को चोरड़ो या "चोट्टो" कह कर परुष बनाया गया है । व्रज की "हिलोर" हाड़ौती में "हलोळ" के रूप में मूर्धन्य ध्वनि "ळ" से जुड़ कर अधिक परुष हो गई है । यहां यह उल्लेखनीय है कि इन परुष ध्वनियों से हाड़ौती में "कर्णकटुता नहीं आने पाई है । इसके स्थान पर ऐसे शब्दों में विशेष आत्मीयता के दर्शन होते हैं ।

२. शब्दों के विविध रूप—

जैसा कि प्रायः सभी बोलचाल की भाषाओं में होता है (एक ही सब्द के विविध रूप प्रयोग में आते हैं) हाड़ौती में भी एक शब्द के विविध रूप देखने को मिलते हैं । रूपनिर्माण के लिए कुछ विशेष स्वार्थ के प्रत्ययों का विकास हो गया है उन्हीं की सहायता से ये शब्द बनते हैं यथा—

घोड़ा—घुड़लो, नींद—नींदली, नींदड़ली, नींदोली,
कान—कानड़ो, सकल-सगळ, सागळो, सगळो, सबळो,
सब, सारो आदि ।

३. प्राचीनता का संरक्षण—

हाड़ौती में शब्दों के अतिप्राचीन रूप सुरक्षित हैं।

हाड़ौती	वैदिक	संस्कृत
कांसा	कंसा	कांस्य
परचो	पर्ची	परिचय
जूना	जूर्ण	जीर्ण
डसना	दशन	दंशन
लोग	लोग	लोक
ह्रादो	ह्रादो	ह्रद

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि हाड़ौती शब्द-रूप वैदिक रूपों के निकट हैं और संस्कृत शब्दों से अधिक प्राचीन हैं।

४. स और क ध्वनियों का सह प्रयोग—

हाड़ौती में सुसबो, गोडऽ (क्राडे) व सौड़ऽ, सांट व कांटो, सूंडो व खूड आदि शब्दों का साथ साथ प्रयोग होता है जिनमें स व क का सह प्रयोग देखा जाता है। विद्वानों ने "स" शतम् वर्ग की ध्वनि का कतम् वर्ग की भाषाओं में "क" होना माना है। परन्तु हाड़ौती में द्विविध शब्द रूपों का प्रयोग आश्चर्यप्रद है।

५. हाड़ौती में "छ" क्रिया का प्रयोग होता है जिसका भूतकालिक रूप छौ या छा बनता है।

हाड़ौती के अवान्तर भेद

पहले कहा जा चुका है कि भाषा में थोड़ी थोड़ी दूर पर सूक्ष्म परिवर्त्तन होता है, परन्तु पर्याप्त दूरी पर ही यह अन्तर स्पष्ट हो पाता है। हाड़ौती भाषी-क्षेत्र लगभग १२५ मील उत्तर से दक्षिण में तथा लगभग १५५ मील पूर्व से पश्चिम में विस्तृत हैं। इतने क्षेत्रीय विस्तार में भाषा परिवर्त्तन स्वाभाविक ही माना जा सकता है। इस क्षेत्र में कोटा और बूंदी की टकसाली (Standard) हाड़ौती मान ली गई है यद्यपि कोटा और बूंदी की भाषा में भी सूक्ष्म भेद दिखाई पड़ता है। हाड़ौती क्षेत्र में लगभग ११ बोलियाँ प्रचलित हैं। इनका विवरण इस प्रकार दिया जा सकता है—

१. वनखण्डी—

शाहवाद व किशनगंज तहसीलों में बोली जाती है। बोलने वाले लोग वनवासी शहरिया (शवर) जाति के लोग हैं। गांवों व कस्बों में सामान्य हाड़ौती चलती है, परन्तु जंगलों में झोंपड़े बनाकर रहने वाले वनखण्डी बोलते हैं। ये वनवासी मध्यप्रदेश के समीपवर्ती जंगलों के निवासियों से संपर्क में आते हैं। अतः

इनकी बोली पर उनके माध्यम से ब्रज व बुन्देली बोलियों का प्रभाव गहरा होता गया है। शहरिया लोगों के "भिनुसार भया", "सागपात झेईलो" जैसे वाक्य इस प्रभाव को प्रकट करते हैं, परन्तु ध्यानपूर्वक इनकी भाषा का अध्ययन करने पर यह बात भली प्रकार प्रकट हो जाती है कि वनखण्डी बोली हाड़ौती की, वाह्य प्रभाव ग्रहण किए हुए, विशेष शैली मात्र है।

२. मुसलमानी —

हाड़ौती क्षेत्र में छबड़ा, छीपाबड़ौद, साँगोद, माँगरोल, बाराँ आदि में मुसलमानों की सघन बस्तियाँ बसी हुई हैं। छबड़ा तो मुसलमानी रियासत टौंक का अंग था। अन्य स्थानों के मुसलमान जुलाहे, नीलगर आदि हैं। क्षेत्रीय बोली हाड़ौती का व्यवहार ये सभी करते हैं इनके रीतिरिवाज भी पूर्णतया हिन्दुओं जैसे हैं, परन्तु पृथक् धर्म के कारण फारसी या उससे उत्पन्न भारतीय उर्दू के प्रति अनुराग हो जाना स्वाभाविक ही है। अतः पढ़े-लिखे मुसलमान उर्दू का प्रयोग करते हैं, परन्तु अनपढ़ साधारण व्यवसायी मुसलमान उर्दू शब्दों से मिश्रित हाड़ौती का प्रयोग करते हैं। हाड़ौती में प्रचलित फारसी शब्दों को इस प्रकार बोलचाल में नैसर्गिकता का बाना पहनाने का श्रेय इन्हीं लोगों को है। मुसलमानी को भी वनखण्डी की तरह मुसलमानों द्वारा प्रयुक्त फ़ारसी शब्द बहुल, हाड़ौती की विशेष शैली ही कहा जा सकता है।

३. पट्टनी —

झालरापाटन में हाड़ौती का पट्टनीरूप प्रचलित है। यहाँ हाड़ौती व मालवी का निश्चित रूप देखने को मिलता है। पट्टनी दोनों भाषाओं के तत्त्व लेकर बनी है। झालरापाटन मालवी क्षेत्र में पड़ता है, परन्तु यहाँ की बोली हाड़ौती ही है। मालवी लय (लहजे) में हाड़ौती का उच्चारण—यही पट्टनी बोली का स्वरूप है। इसे भी हाड़ौती की शैली विशेष ही कहा जा सकता है।

४. भीली —

भीली बोली को ग्रियर्सन ने राजस्थानी भाषा की एक शाखा ही गिना है। सच तो यह है कि विन्ध्य से अरावली तक के विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए भील एक ही बोली का प्रयोग नहीं करते। विन्ध्य की उपत्यकाओं में रहने वाले भील मालवी से प्रभावित भाषा बोलते हैं। इसी तरह मेवाड़ के भील मेवाड़ी बोली ही बोलते हैं। कोटा के पास रंगबाड़ी से दरा तक फैले हुए तथा बूँदी के वनों में रहने वाले भील भी इसी तरह हाड़ौती का ही व्यवहार करते हैं। अन्य क्षेत्रों में बसे हुए भीलों से सम्पर्क बने रहने के कारण इनकी बोली कुछ अन्तर्प्रान्तीय तत्त्व ग्रहण कर सकी है। इसीलिए भीली बोली एक स्वतन्त्र बोली मान ली गई है। कुछ भी हो हाड़ौती क्षेत्र के भील जिस बोली को बोलते हैं वह विशिष्ट हाड़ौती ही है। उस पर मेवाड़ी का कुछ प्रभाव भी माना जा सकता है।

५. नागरचाली —

बूँदी के पश्चिम का प्रदेश नगागरचाल कहलाता है। इसके नामकरण के कारणों पर अधिक प्रकाश नहीं पड़ता। नागरचाली हाड़ौती की ही विशेष शैली है, जिस पर मेवाड़ी प्रभाव विशेष है। यों कहना चाहिए कि मेवाड़ी लय में हाड़ौती का उच्चारण ही नागरचाली है। नागरचाल क्षेत्र संकुचित होते-होते अब कुछ गाँवों तक ही सीमित रह गया है। प्राचीन समय में यह विशेष रीति-रिवाजों को लिए हुए स्वतन्त्रगण का क्षेत्र रहा होगा। अब क्षेत्र संकोच के साथ नागरचाली शैली का व्यवहार करने वाले लोगों की संख्या भी कम होती जाती है।

६. शाहपुरी —

शाहपुरा में व्यवहृत हाड़ौती की वह शैली जो मेवाड़ी से सर्वाधिक प्रभावित है, शाहपुरी कही जा सकती है। शाहपुरा रियासत में यह बोली बोली जाती है।

७. किशनगढ़ी —

राजस्थानी भाषा-मण्डल के केन्द्र किशनगढ़ में जयपुरी, मेरवाड़ी और हाड़ौती का मिलन होता है। इसी बाह्य प्रभावग्रस्त हाड़ौती का नाम किशनगढ़ी है। किशनगढ़ी व उसके दक्षिण में हाड़ौती की यह शैली प्रचलित है।

८. कोटरियाती —

इन्द्रगढ़-करवाड़ आदि कोटा जिले के पुराने ठिकानों का नाम कोटरियात है। यहाँ की बोली स्वतन्त्र नहीं है किन्तु उत्तर की ओर अधिक से अधिक करौली की व्रजभाषा से और पूर्व की ओर सफाड़ी से प्रभावित होती जाती है। बाह्य प्रभावग्रस्त कोटरियाती को भी हाड़ौती की विशेष शैली कहना चाहिये।

९. राजवाटी या रजवाड़ी —

राज-परिवारों में स्थानीय बोलियों की विशेष शैली का विकास हुआ जिसे रजवाड़ी कहा जाता है। इन परिवारों के संपर्क में आने वाले जागीरदार भी इसी शैली का व्यवहार करते थे जैसे उर्दू की विशेष गरिमा लखनवी और हैदराबादी तहजीव के साथ बढ़ जाती है उसी तरह रजवाड़ी तहजीव से हाड़ौती की शोभा बढ़ गई। सभी राजा लोग मेवाड़ के संपर्क में किसी न किसी रूप में आते थे। अतः रजवाड़ी का विकास स्थानीय बोलियों के साथ मेवाड़ी के मिश्रण से हुआ। राजपरिवार व राजदरवार से सम्बद्ध विशिष्ट शिष्टाचार की शब्दावली का विकास रजवाड़ी शैली की देन है।

१०. कोटवी —

कोटवी शैली सारे कोटा जिले में प्रचलित है, हाड़ौती का मान्यरूप इसे

ही कहा जा सकता है। इसे बोलने वाले लगभग आठ लाख व्यक्ति हैं। वेद-पाठी ब्राह्मण और अनपढ़ किसान सभी इस शैली को व्यवहार में लाते हैं।

११. बूँदवी —

इसे कुछ लोग नागरचाली नाम देते हैं, परन्तु नागरचाली तो बहुत ही छोटे क्षेत्र में प्रचलित हाड़ौती की शैली है। बूँदी राज्य की विशिष्ट शैली को प्रयोग में लाने वाले कम से कम साढ़े तीन लाख व्यक्ति हैं।

इन विभिन्न बोलियों में, जिन्हें हाड़ौती की विशेष शैलियाँ कहना अधिक युक्तिसंगत है, कोटवी और बूँदवी प्रधान हैं।

कोटा व बूँदी की हाड़ौती

कोटा व बूँदी की जिन शैलियों का ऊपर उल्लेख किया गया है उनमें कुछ भेद दिखाई पड़ता है। कोटवी शैली में भविष्यत् क्रिया "ग" प्रत्यय द्वारा व्यक्त की जाती है, परन्तु विकल्प से बूँदी में "स" प्रत्यय का प्रयोग होता है यथा—जासी, जास्यां, जास्यूं आदि।

कोटा में अठी, उठी आदि स्थानवाची अव्यय प्रयुक्त होते हैं। बूँदी में इनके "अठ ऽ उठ ऽ" आदि रूप प्रचलित हैं। "कोई न ऽ" को "को न ऽ" बोला जाता है। वर्णों का इस प्रकार लोप स्थानीय प्रभाव की सूचना देता है। बूँदी की शैली में लय कोटवी से भिन्न है। इतना होते हुए भी शब्द साम्य, रचना साम्य और समान व्याकृति के आधार पर दोनों शैलियाँ एक ही भाषा समझी जाती हैं। भेद स्थानीय हैं जो दोनों को भिन्न-भिन्न भाषाएं सिद्ध करने के लिए नितान्त अपर्याप्त हैं।

हाड़ौती और उसकी समीपवर्ती भाषाएँ

हाड़ौती जिन भाषाओं से घिरी हुई है, उनमें जयपुरी व मालवी विशेष उल्लेखनीय हैं। जयपुरी (ढूँढाड़ी) राजस्थानी भाषा—मण्डल में हाड़ौती के सर्वाधिक निकट है। यही नहीं हाड़ौती व ढूँढाड़ी एक मूल प्राकृत से विकसित हुई ज्ञात होती है। मालवी हाड़ौती दक्षिण, दक्षिण पूर्व और दक्षिण-पश्चिम से घेर कर उसके सीमावर्ती क्षेत्रों को प्रभावित करती है। सफाड़ी (श्योपुर—बड़ौदा की बोली) ब्रजभाषा व हाड़ौती का मिश्रितरूप ज्ञात होती है। इसने भी समीपवर्ती क्षेत्र को प्रभावित करके हाड़ौती की वनखण्डी (शाहबाद-किशनगंज में प्रयुक्त) शैली के विकास में योग दिया है।

जयपुरी हाड़ौती से ध्वनि व रूप दोनों दृष्टियों से भिन्न है। जयपुरी में सुकुमार लयतत्त्व का समावेश ब्रजभाषा के प्रभाव से हुआ है यह कहा जा चुका है। यही सुकुमारता ध्वनियों के उच्चारण में भेद कर देती हैं। प्रत्येक वर्ण के

उच्चारण में जयपुरी में लय की सुकुमारता देखी जा सकती है। इसके विपरीत हाड़ौती में परुषता स्पष्ट दिखाई देती।[1]

जयपुरी में हाड़ौती से अव्यय भी भिन्न हैं—यथा : जयपुरी के 'किधर' अर्थ में दिशासूचक अव्यय 'कौड अ' प्रयुक्त होता है (कोड अ जावो छो – किधर जा रहे हो ?) हाड़ौती में इसके स्थान पर स्थानवाचक 'कठी' प्रयुक्त होता है। कभी जयपुरी में भी 'कठीनअ' (कहां को) बोला जाता है, परन्तु यह हाड़ौती का प्रभाव ज्ञात होता है। हाड़ौती 'उठी' (उधर या वहाँ) के स्थान पर जयपुरी 'कठीनअ' बोला जाता है। प्रश्नवाचक अव्यय 'कांई' जयपुरी में विकल्प से प्रयुक्त होता है (यथा—कांई करो छो अथवा 'के करो छो')। 'के' बागड़ी के 'की' (की करस्स) का रूपान्तर ज्ञात होता है। हाड़ौती में सर्वत्र कांई चलता है।

जयपुरी में सम्बन्ध प्रत्यय 'र' बहुधा प्रयुक्त होता है—यथा:—रामरो, गाँवरो आदि। हाड़ौती में 'र केवल हिन्दी की तरह पुरुष सर्वनामों के साथ ही प्रयुक्त होता है विभक्ति के रूप में—यथा:—थारो, म्हारो, अन्यत्र 'क' ही चलता है यथा:—रामको, गाँव क (गोइरअ)।

जयपुरी और हाड़ौती क्रियाओं के रूपों में भी भिन्नता देखी जाती है। 'होना' अर्थवाची 'छे' का प्रयोग हाड़ौती व जयपुरी दोनों में वर्तमान व भूतकाल में होता है, परन्तु जयपुरी में भविष्यत् सूचक 'ल' (कहीं बूंदी की हाड़ौती के प्रभाव में 'स') का प्रयोग देखा जाता है यथा—सोमवार न अ जावेलो, कुण जावेलो, सभी जावेला, जानकी जावेली। हाड़ौती में 'ग' तथा कभी विकल्प से 'स' का (केवल बूंदी की ओर) प्रयोग होता है यथा—कआल जावूंगी, वा जावअगी, म्हां जावंगा। बूंदी में—म्हूँ जास्यूं (मैं जाऊँगा), व्ह जासी (वे जावेंगे) जानकी जासी आदि वैकल्पिक प्रयोग प्रचलित हैं। इनमें प्रयुक्त 'स' संस्कृत 'स्यत्' (गमिष्यत् आदि में संयुक्त) का अवशिष्ट ज्ञात होता है। 'स' का प्रयोग राजस्थानी भाषा-मण्डल की अन्य सदस्याओं में भी देखा जाता है।

हाड़ौती की अन्य पड़ौसिन भाषा मालवी है। मालवी व हाड़ौती का अन्तर बड़ा व्यापक है। मालवी में शब्दोच्चारण की विशेष लय देखी जाती है। यह लय भारत की लगभग सभी भाषाओं में प्रयुक्त निषेध सूचक 'न' को भी मालवी में 'नि' या 'नी' बना देती है। नी का उच्चारण महाप्राणता से मिश्रित 'नी' जैसा होने से इसे नहीं का रूपान्तर माना जा सकता है, परन्तु मालवी 'नी' में 'नहीं' जैसी निश्चयात्मकता के दर्शन ही नहीं होते।

मालवी से हाड़ौती का अन्य भेद क्रिया-प्रयोग सम्बन्धी है। मालवी में हाड़ौती 'छ' का प्रयोग नहीं होता, सर्वत्र 'ह' का प्रयोग मिलता है, परन्तु भविष्यत् काल में 'ग' ही प्रयुक्त होता है। उदाहरण के लिए निम्न वाक्य द्रष्टव्य हैं —

(१) हाड़ौती भाषा और उसकी विशेषताएं—प्रेरणा—वर्ष १०—अंश ११

मालवी	हाड़ौती
ऊ जा रयो ह अ	ऊ जा रयो छ अ
म्हूं जा रयो हूं	म्हूं जा रयो छूं
त्हें जा रया हो	थां जा रया छो।
म्हूँ जा रयो हो	म्हूँ जा रहो छो।
वी जा रया हा	व्ह जा रया छो
म्हूँ जाव अ तो	म्हूँ जाव अ छो
वी जाव अ हा	व्ह जाव अ छा
म्हां जावअ ता (था)	म्हां जाव अ छा

मालवी में महाप्राण ध्वनियों को अल्पप्राण तथा अल्पप्राण को महाप्राण बनाने की प्रवृत्ति देखी जाती है (यथा 'था' को ता वा काई को खाँइ, कुण को खुण बोला जाता है)।

मालवी शब्द भंडार भी हाड़ौती से भिन्न है। हाड़ौती से प्रभावित मालवी क्षेत्रों में भी शब्दावली की यह भिन्नता देखी जा सकती है।

हाड़ौती 'अठी' 'उठी' के स्थान पर मालवी में 'अनांग' 'उनांग' 'कनांग' आदि अव्यय प्रयुक्त होते हैं। हाड़ौती में प्रयुक्त स्वरित 'अ' (अ अ) का उच्चारण मालवी में स्पष्ट रूप से 'ए' होता है जो बहुधा 'ऐ' का स्थापन्न होता है—यथा:— हाड़ौती 'व अ ल' मालवी में 'बैल' बोला जाता है। मालवी में 'ह' लुप्त होकर उसके स्थान पर 'ए' ध्वनि भी होती देखी जाती है—यथा:—बहना का बेना—नदूदी बे री ती (नदी वह रही थी)।

सफाड़ी में अठी, उठी के स्थान पे 'इते' उते' आदि का प्रयोग होता है। 'छ' का प्रयोग विकल्प से होता देखा जाता है। हाड़ौती क्षेत्र से ज्यों-ज्यों दूरी बढ़ती जाती है 'छ' का प्रयोग कम होता जाता है।

हाड़ौती क्षेत्र के समीपवर्ती क्षेत्र की भाषाओं के सामान्य परिचय से यह स्पष्ट हो जाता है कि हाड़ौती अपनी विशेषताओं के कारण उनसे भिन्न होने पर भी कहीं उनको प्रभावित करती रही है और कहीं उनसे प्रभाव ग्रहण करती रही है।

चतुर्थ प्रकरण
हाड़ौती भाषी प्रदेश

चतुर्थ प्रकरण
हाड़ौती भाषी प्रदेश

हाड़ौती प्रदेश-परिचय —

राजस्थान के दक्षिणी-पूर्वी भाग पर लगभग पाँच शताब्दियों से हाड़ा राजपूतों का शासन चला आया है। हाड़ावंश चौहानों की एक प्रमुख शाखा है। चौहानों का सम्बन्ध शाकम्भरी (साँभर) से रहा है। भैंसरोडगढ़ में शाकम्भरी से आकर चौहानों का एक परिवार बस गया जिसमें हरराज नामक वीर पुरुष हुआ। यही हरराज हाड़ावंश का प्रवर्त्तक[1] माना जाता है। यद्यपि हरराज शब्द से ही हाड़ा शब्द का विकास हुआ है, परन्तु कालचक्र पर यह रूप इतना घिस गया कि मूल रूप हरराज नितान्त अपरिचित हो गया है। चारण-भाटों ने हाड़ा शब्द को ही मूल मान कर उसके सम्बन्ध में गाथाएँ गढ़ली हैं।[2] उनमें एक यह भी है कि वीर क्षत्रिय चाहमान को मरुभूमि में एकान्त-विचरण करते समय किसी मरे हुए आदमी की हड्डियाँ दिखाई दीं। उसने यह सोच कर कि उसे एक सहयोगी मिल जायगा, उसने अपनी इष्टदेवी शाकम्भरी से उसे जीवित कर देने की प्रार्थना की। शाकम्भरी देवी ने उसे जीवित कर दिया। हड्डियों से जीवन प्राप्त करने के कारण उसे हाड़ा नाम दिया गया। राजपूत इतिहासकार कर्नल टॉड ने भी इस ख्यात का उल्लेख करते हुए मूल शब्द हाड़ा या हड़ माना है। वस्तुतः "हरराज" से अपत्यार्थक तद्धित प्रत्यय "अण्" जुड़ने से "हरराज" शब्द व्युत्पन्न होता है। लोक-गीतों में हारराज के अपभ्रष्ट रूप हाड़ाराव (हराराअ) या हाड़ाराव शब्द मिलते हैं। हरराज या हारराज से ही "हाड़ौती"[3] शब्द बना है।

बाल्मीकीय रामायण व महाभारत में यज्ञभूमि के लिए "यज्ञवाट"[4] व "ऋषिवाट"[5] शब्द प्रयुक्त हुए हैं। कोश ग्रन्थों में "वाट" शब्द का अर्थ मार्ग, घेरा, परिसीमा, अहाता[6] आदि किए गए हैं। "वाट" को स्थानवाची मानकर

---

(१) कोटा राज्य का इतिहास—डॉ० मथुरालाल शर्मा—प्रथम भाग।
(२) गीत—हाड़ौती हाडां का मालव बस जा जे रे भाईला शंकर्या।
(३) द्रष्टव्य—प्राचीन भारत के कुछ प्रादेशिक नाम—बद्रीप्रसाद पंचोली।
(४) मापयामास कौरव्यो यज्ञवाटं यथा विधि:—महाभारत अश्वमेधि पर्वाणि अनुगीता पर्व ८५।१२।३५
(५) ऋषिवाटेगु पुण्येपु—वा० रा०—उत्तरकांड—८३।६
(६) V. S. Apte—Students Sanskrit-English Dictionary Page 500.

मध्यकाल में अनेक प्रादेशिक नाम इससे बनाए गए हैं यथा—मेरुवाट (मेरवाड़ा), निम्नवाट (निमाड़), वैश्यवाट (वैंसवाड़ा), मरुवाट (मारवाड़), सर्पवाट (सफाड़), धुन्धुवाट (ढूँढाड़), मयवाट (मेवात), मेवाड़ (मध्यवाट), मालववाट (मालवा), शेषवाट (शेखावाटी), वारूणवाट (वारुणावत), प्राग्वाट (बाघड़), सिन्धुवाट (सींघवाड़ो या सूंघवाड़ो), झल्लावाट (झालावाड़), भिल्लवाट (भीलवाड़ा), वंशुवाट (वाँसवाड़ा) [1] आदि।

प्राचीन भारत में चक्रवर्ती-राज्य की कल्पना को साकार रूप देने के लिए अश्वमेध-यज्ञ किया जाता था। अश्वमेध यज्ञ का यज्ञाश्व जितनी भूमि पर विचरण करके लौटता था, वह यज्ञकर्ता के राज्य की सीमा मानी जाती थी। संभव है यज्ञाश्व के भ्रमण के मार्ग को "वाट" कहते-कहते उस भ्रमणमार्ग से परिसीमित भूमि को भी "वाट" कहा गया हो। किसी वीर शासक या जाति के यज्ञाश्व को रक्षकों के साथ भ्रमण करने का अधिकार जितनी भूमि पर प्राप्त हो उस भूमि को कालान्तर में उस शासक या जाति के "वाट" के नाम से कहा गया होगा।[2]

हरराज के वंशज "हारराओं की भूमि को भी इसी तरह परिपाटी के अनुसार "हाराराजवाट" या मूल पुरुष के नाम पर "हारराजवाट" कहा गया है। "हारराज" का "हाड़ा" रूपान्तर हो जाने पर हारराजवाट भी हाड़ावाट (हारराऽवाट) हो गया और आगे चल कर हाड़ावाट हाड़ावत हो गया। हाड़ावत मनुपान्त शब्द की तरह आभासित होने से स्त्री प्रत्यय "ई" जुड़ कर "हाड़ावती", हो गया। हाड़ावती ही हाड़ौती के रूप में वह प्रचलित शब्द है।

हाड़ौती शब्द की उत्पत्ति के विषय में कुछ अन्य विचार भी मिलते हैं। हाड़ा में मत्वर्थीय "वतुप्" प्रत्यय जुड़ कर हाड़ावत् और स्त्रीलिंग में हाड़ावती[3] शब्द व्युत्पन्न हुआ। राजस्थानी में समास में पुत्र शब्द का "उत" रूप मिलता है जैसे गुहलौत (गुहिल पुत्र), चूंडावत (चूंडा-पुत्र) आदि शब्द। इसी तरह हरराज-पुत्र का हाड़ाउत आदेश माना जा सकता है और हरराज पुत्रीय से भी हाड़ावती-हाड़ाउती—हाड़ौती रूप का विकास संभव है।[4] कुछ भी हो हाड़ौती हाड़ावती या हाड़ाउती का ही प्रचलित रूप है। कोटा और बूँदी राज्यों पर हाड़ाओं का शासन था इसलिए कोटा-बूँदी को हाड़ौती क्षेत्र कहा जाता है और इस क्षेत्र की बोली भी हाड़ौती ही कही जाती है।

---

(१) विस्तार से देखिए—प्राचीन भारत के कुछ प्रादेशिक नाम—पंचोली।

(२) उपर्युक्त।

(३) हाड़ौती भाषा व उसकी विशेषताएं—निबंध में पंचोली द्वारा उद्धृत डॉ० फतहसिंह का मत।

(४) हाड़ौती भाषा व उसकी विशेषताएं—"प्रेरणा" वर्ष १०—अंक ११।

भौगोलिक स्थिति —

हाड़ौती क्षेत्र के उत्तर में आड़ावला पर्वत की शृंखला से पृथक्कृत ढूंढाड़ (धुन्धुवाट) प्रदेश है जहाँ की भाषा राजस्थानी परिवार की दूसरी प्रमुख भाषा है और हाड़ौती से अत्यन्त निकटता का सम्बन्ध रखती है। पूर्व में ग्वालियर (गोपाद्रि) के जंगल हैं। इस क्षेत्र के दक्षिण में मालवा प्रदेश है जिसे आड़वाल की अन्य शृंखला हाड़ौती से पृथक् करती है जिसका नाम मुकन्दरा है। पश्चिम की ओर मेवाड़ की वीरभूमि है। चारों ओर से पर्वतों और घने जंगलों से घिरी हुई हाड़ौती भूमि को चम्बल, कालीसिन्ध, पार्वती आदि बड़ी व अनेक छोटी-छोटी नदियाँ सींचती हैं। इन नदियों के किनारे गहरे खड्ड और बीहड़ जंगल हैं जिन्होंने इस क्षेत्र के निवासियों को अत्यन्त साहसी व कर्मकुशल बना दिया है। इसीलिए इस क्षेत्र के सभी वर्णों के लोग कृषिजीवी बन गए हैं। यद्यपि हाड़ौती क्षेत्र का तिहाई से अधिक भाग जंगलों से ढका हुआ है। भूमि पर्वतावेष्टित होने से पहाड़ी है, पर्वत शृंखलाएं बीच में मैदानी भागों में भी घुस आई हैं, फिर भी कृषि के लिए मैदानी भागों में पर्याप्त उर्वरा भूमि निकल आई है। उर्वरता की दृष्टि से हाड़ौती मैदानी भाग राजस्थान में प्रथम स्थान रखते हैं और उत्तर प्रदेश की गंगा-यमुना की भूमि से होड़ लेते हैं।

यद्यपि आधुनिक युग में आर्थिक-दौड़ से पिछड़ जाने वाले तथा समाज से अभिशापित कई लोग दस्युजीवन विताते हुए चम्बल-कालीसिन्ध के तटवर्ती खड्डों व जंगलों का आश्रय लेने को विवश हुए हैं किन्तु इतिहास साक्षी है कि यह क्षेत्र आर्थिक दृष्टि से प्राचीनकाल से ही आत्मनिर्भर रहा है। विशाल मन्दिरों के भग्नावशेष, जनश्रुतियाँ, उजड़े हुए नगरों के खण्डहर इस क्षेत्र की समृद्धि की साक्षी देते हैं।

प्राचीन काल से ही भारत का राजनीतिक केन्द्र उत्तरी भारत रहा है। हाड़ौती क्षेत्र उत्तरी भारत के दक्षिण की ओर जाने वाले राजमार्गों पर नहीं पड़ता था और जंगलों व पहाड़ों से घिरा होने से भयावना भी था अतः राजनीतिक दृष्टि से पृथक् वृत्त इकाई के रूप में चिर-विस्मृत रहा। इस उपेक्षा के कारण भारत की शासनिक इकाइयों की तरह इस क्षेत्र का कभी महत्त्व नहीं बढ़ सका, किन्तु फिर भी इस क्षेत्र के निवासियों ने साहस व श्रम का आश्रय लेकर भौगोलिक सुविधाओं से लाभ उठाने का प्रभूत प्रयत्न किया है।

इतिहास —

वैदिक व पौराणिक काल में दक्षिणी राजस्थान शिवि व कुन्तिभोज का देश कहलाता था। मेवाड़ में चित्तौड़ के निकट माध्यमिका नगरी शिवि औशीनर देश की राजधानी थी। शिवि के आत्म-त्याग की कहानी महाभारत में वर्णित है। वह उशीनर का पुत्र था इसीलिए उसको शिवि औशीनर व उसके देश को भी

मध्यकाल में अनेक प्रादेशिक नाम इससे बनाए गए हैं यथा—मेरूवाट (मेरवाड़ा), निम्नवाट (निमाड़), वैश्यवाट (बैंसवाड़ा), मरूवाट (मारवाड़), सर्पवाट (सफाड़), धुन्धुवाट (ढूंढाड़), मयवाट (मेवात), मेवाड़ (मध्यवाट), मालववाट (मालवा), शेषवाट (शेखावाटी), वारूणवाट (वारुणावत), प्राग्वाट (बाघड़), सिन्धुवाट (सींधवाड़ो या सूंघवाड़ो), झल्लावाट (झालावाड़), भिल्लवाट (भीलवाड़ा), वक्षुवाट (वाँसवाड़ा) [1] आदि ।

प्राचीन भारत में चक्रवर्ती-राज्य की कल्पना को साकार रूप देने के लिए अश्वमेध-यज्ञ किया जाता था। अश्वमेध यज्ञ का यज्ञाश्व जितनी भूमि पर विचरण करके लौटता था, वह यज्ञकर्ता के राज्य की सीमा मानी जाती थी। संभव है यज्ञाश्व के भ्रमण के मार्ग को "वाट" कहते-कहते उस भ्रमणमार्ग से परिसीमित भूमि को भी "वाट" कहा गया हो। किसी वीर शासक या जाति के यज्ञाश्व को रक्षकों के साथ भ्रमण करने का अधिकार जितनी भूमि पर प्राप्त हो उस भूमि को कालान्तर में उस शासक या जाति के "वाट" के नाम से कहा गया होगा।[2]

हरराज के वंशज "हारराओं की भूमि को भी इसी तरह परिपाटी के अनुसार "हाराराजवाट" या मूल पुरुष के नाम पर "हारराजवाट" कहा गया है। "हारराज" का "हाड़ा" रूपान्तर हो जाने पर हारराजवाट भी हाड़ावाट (हारराऽवाट) हो गया और आगे चल कर हाड़ावाट हाड़ावत हो गया । हाड़ावत मनुपान्त शब्द की तरह आभासित होने से स्त्री प्रत्यय "ई" जुड़ कर "हाड़ावती", हो गया। हाड़ावती ही हाड़ौती के रूप में बहु प्रचलित शब्द है।

हाड़ौती शब्द की उत्पत्ति के विषय में कुछ अन्य विचार भी मिलते हैं। हाड़ा में मत्वर्थीय "वतुप्" प्रत्यय जुड़ कर हाड़ावत् और स्त्रीलिंग में हाड़ावती[3] शब्द व्युत्पन्न हुआ। राजस्थानी में समास में पुत्र शब्द का "उत" रूप मिलता है जैसे गुहलौत (गुहिल पुत्र), चूंडावत (चूंडा-पुत्र) आदि शब्द। इसी तरह हरराज-पुत्र का हाड़ाउत आदेश माना जा सकता है और हरराज पुत्रीय से भी हाड़ावती-हाड़ाउती—हाड़ौती रूप का विकास संभव है।[4] कुछ भी हो हाड़ौती हाड़ावती या हाड़ाउती का ही प्रचलित रूप है। कोटा और बूंदी राज्यों पर हाड़ाओं का शासन था इसलिए कोटा-बूंदी को हाड़ौती क्षेत्र कहा जाता है और इस क्षेत्र की बोली भी हाड़ौती ही कही जाती है।

---

(१) विस्तार से देखिए—प्राचीन भारत के कुछ प्रादेशिक नाम—पंचोली।

(२) उपर्युक्त।

(३) हाड़ौती भाषा व उसकी विशेषताएं—निबंध में पंचोली द्वारा उद्धृत डॉ० फतहसिंह का मत।

(४) हाड़ौती भाषा व उसकी विशेषताएं—"प्रेरणा" वर्ष १०—अंक ११।

भौगोलिक स्थिति —

हाड़ौती क्षेत्र के उत्तर में आड़ावला पर्वत की शृंखला से पृथक्कृत ढूंढाड़ (धुन्धुवाट) प्रदेश है जहाँ की भाषा राजस्थानी परिवार की दूसरी प्रमुख भाषा है और हाड़ौती से अत्यन्त निकटता का सम्बन्ध रखती है। पूर्व में ग्वालियर (गोपाद्रि) के जंगल हैं। इस क्षेत्र के दक्षिण में मालवा प्रदेश है जिसे आड़वाल की अन्य शृंखला हाड़ौती से पृथक् करती है जिसका नाम मुकन्दरा है। पश्चिम की ओर मेवाड़ की वीरभूमि है। चारों ओर से पर्वतों और घने जंगलों से घिरी हुई हाड़ौती भूमि को चम्बल, कालीसिन्ध, पार्वती आदि बड़ी व अनेक छोटी-छोटी नदियाँ सींचती हैं। इन नदियों के किनारे गहरे खड्ड और बीहड़ जंगल हैं जिन्होंने इस क्षेत्र के निवासियों को अत्यन्त साहसी व कर्मकुशल बना दिया है। इसीलिए इस क्षेत्र के सभी वर्णों के लोग कृषिजीवी बन गए हैं। यद्यपि हाड़ौती क्षेत्र का तिहाई से अधिक भाग जंगलों से ढका हुआ है। भूमि पर्वतावेष्टित होने से पहाड़ी है, पर्वत शृंखलाएं बीच में मैदानी भागों में भी घुस आई हैं, फिर भी कृषि के लिए मैदानी भागों में पर्याप्त उर्वरा भूमि निकल आई है। उर्वरता की दृष्टि से हाड़ौती मैदानी भाग राजस्थान में प्रथम स्थान रखते हैं और उत्तर प्रदेश की गंगा-यमुना की भूमि से होड़ लेते हैं।

यद्यपि आधुनिक युग में आर्थिक-दौड़ से पिछड़ जाने वाले तथा समाज से अभिशापित कई लोग दस्युजीवन बिताते हुए चम्बल-कालीसिन्ध के तटवर्ती खड्डों व जंगलों का आश्रय लेने को विवश हुए हैं किन्तु इतिहास साक्षी है कि यह क्षेत्र आर्थिक दृष्टि से प्राचीनकाल से ही आत्मनिर्भर रहा है। विशाल मन्दिरों के भग्नावशेष, जनश्रुतियाँ, उजड़े हुए नगरों के खण्डहर इस क्षेत्र की समृद्धि की साक्षी देते हैं।

प्राचीन काल से ही भारत का राजनीतिक केन्द्र उत्तरी भारत रहा है। हाड़ौती क्षेत्र उत्तरी भारत के दक्षिण की ओर जाने वाले राजमार्गों पर नहीं पड़ता था और जंगलों व पहाड़ों से घिरा होने से भयावना भी था अतः राजनीतिक दृष्टि से पृथक् वृत इकाई के रूप में चिर-विस्मृत रहा। इस उपेक्षा के कारण भारत की शासनिक इकाइयों की तरह इस क्षेत्र का कभी महत्व नहीं बढ़ सका, किन्तु फिर भी इस क्षेत्र के निवासियों ने साहस व श्रम का आश्रय लेकर भौगोलिक सुविधाओं से लाभ उठाने का प्रभूत प्रयत्न किया है।

इतिहास —

शिवि औशीनर कहा जाता है। सत्यवादी हरिश्चन्द्र की पत्नी शैव्या शिविदेश की राजकुमारी ही थी। शिवि के पूर्व में कुन्तिभोज[१] का शासन था। कभी पुरुवंशी रन्तिदेव चम्बल के प्रान्तर भाग का अधिपति था जिसकी राजधानी दशपुर थी। कालीदास के चर्मण्वती (चम्बल) का परिचय रन्तिदेव की कीर्त्ति के रूप में दिया है —

स्त्रोतोभूत्यां भुविपरिणातां रन्तिदेवस्य कीर्तिम्[२]

इसके उत्तर में मत्स्य देश, दक्षिण में निषध व अवन्ती तथा पूर्व में दशार्ण बतलाये गए हैं। महाभारत काल के पूर्व इस क्षेत्र के विषय में ऐसे ही धुँधले आख्यान मिलते हैं जिनसे ऐतिहासिक तथ्य निकालना संभव नहीं है।

महाभारत के भयंकर नरसंहार में महाभारत के पुराने प्रतिष्ठित क्षत्रिय राजपरिवार समाप्त हो गए परन्तु जनसाधारण में राजनीतिक चेतना का अभाव नहीं था। इसलिए स्थान-स्थान पर सम्य संस्थाओं ने गणराज्यों की स्थापना की[3] सारे भारत में बुद्ध के पहले गणराज्य प्रतिष्ठित थे। पूर्व के वैशाली आदि गणराज्यों का बौद्ध व जैन-साहित्य में वर्णन मिलता है। पश्चिमोत्तर भारत के गणराज्यों का उल्लेख पाणिनि की अष्टाध्यायी में मिलता है। शेष भारत के विषय में भारतीय ग्रन्थ मौन हैं अथवा आक्रमणकारियों द्वारा ऐसे ग्रन्थ नष्ट कर दिये गए हैं जिनसे इस सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश पड़ता। माध्यमिका नगरी का उल्लेख अवश्य प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। शिवि, बसाति, उरसा, अम्बष्ठ, यौधेय, स्त्रीराज्य आदि गणराज्यों का विकास प्राचीन काल में राजस्थान के क्षेत्र में हुआ था।[४]

यूनानी इतिहासकारों के वर्णनों से पता लगता है कि असई गणराज्य के सेनापति की विशालवाहिनी सिकन्दर का सामना करने के लिए यमुना-तट पर एकत्रित हुई थी। सिकन्दर ने इसे मगध की सेना समझा और सेना में घबराहट बढ़ जाने से वह वापस लौटने पर विवश हुआ। यह गणराज्य आरुणिवहा (यमुना) से बुन्देलखण्ड तक फैला हुआ था। मेगस्थनीज द्वारा प्रशंसित सेण्ड्राकोटस (चन्द्रकेतु) इसी गणराज्य का गणपति रहा होगा जिसकी राजधानी पारिभद्र (पालिबोथ्र) थी।[५] कालीसिन्ध से बुन्देलखण्ड तक के भाग में पुलिन्दों का अधिकांश भाग इस गणराज्य में था तथा पश्चिमी भाग शिवि गणराज्य में।

बाहरी आक्रमणों के कारण मालव व यौधेयों को अपना स्थान परिवर्तन करने को विवश होना पड़ा। ये राजस्थान में होकर दक्षिण की ओर बढ़ते रहे। संभव है, छोटे गणराज्यों ने इनका स्वागत किया हो अथवा छोटे-मोटे युद्ध भी हुए

---

(१) महाभारत मीमांसा—चिन्तामणि विनायक वैद्य

(२) मेघदूत पू० मे० श्लोक ४८

(३) प्राचीन भारत में गणतांत्रिक व्यवस्था—शोध पत्रिका—वर्ष १५ : अंक १

(४) उपर्युक्त।

(५) भारतवर्ष का बृहद् इतिहास—पं० भगवत दत्त।

हों। उगियारा में मिले हुए सिक्कों[1] से यह प्रमाणित होता है कि तीसरी शती ई० पू० में मालवगण पर्याप्त प्रभावशाली हो गया था और उसके सिक्के भी प्रचलित हुए थे। अपने प्रभावशाली युग में ही इस गण का स्थानान्तरण हुआ होगा। ये गणराज्य मौर्यों का प्रभाव बढ़ने पर उनके आश्रय में पनप रहे थे। प्राचीन भारत में एक राज्य और गणराज्य में वैसा अन्तर नहीं था जैसा आधुनिक काल में समझ लिया गया है। एक-एक राज्य में अनेक गणराज्य पनपते थे?[2] मौर्य-वंशीय शासकों ने पूर्व में शुङ्ग, आन्ध्र, गुप्त आदि वंशों का प्रभाव बढ़ जाने पर राजस्थान की पर्वतीय भूमि का आश्रय लिया था। चित्तौड़ में ७३८ ई० में मान मौर्य का शासन था। हाड़ौती क्षेत्र में मौर्यों के शासन की सूचना देने वाला शिला-लेख कनसुवा (कण्वाश्रम) के मन्दिर में मिलता है। इस शिलालेख में शिविगण मौर्य का उल्लेख है। संभव है शिविगण के मौर्यों की ओर संकेत हो। एक अन्य शिलालेख में मौर्य धवल का उल्लेख है।[3] बैराठ (जयपुर) के वि० पू० १९३ वर्ष का शिलालेख मौर्य अशोक का शासन राजस्थान पर स्वीकार करता है। इन शिलालेखों से स्पष्ट है कि वि० पू० २ री शती से ८ वीं शती तक दक्षिणी-पूर्वी राजस्थान में मौर्यों का प्रभाव था।

कोटा-मण्डल के बड़वा ग्राम के प.स मौखरिवल के पुत्र बलवर्द्धन, सोमदेव बलसिंह (चतुर्थ अप्राप्त) के यज्ञयूप हैं जिन पर कृत संवत् २९५ के आलेख संस्कृत मिश्रित प्राकृत भाषा में अंकित हैं—

१: सिद्धं कृतेहि २९५ फाल्गुण शुक्लस्य पाचे दी महासेनापतेः मौखरेः बलपुत्रस्य बलवर्द्धस्य यूपः त्रिरात्रिसवनस्य दक्षिणा गावो सहस्रो।

२ सिद्धं कृतेहि २९५ फाल्गुण शुक्लस्य पाचे दी महासेनापतेः मौखरेः बलपुत्रस्यबलवर्द्धनस्य सोमदेवस्य यूपः त्रिरात्रिसवनस्य दक्षिणा गावो सहस्रो।

३. सिद्धं कृतेहि २९५ फाल्गुण शुक्लस्य पाचे दी महासेना पतेः मौखरे बलपुत्रस्य बलसिंहस्य यूपः त्रिरात्रिसवनस्य दक्षिणा गावो सहस्रो।

४. (अप्राप्त)[4]

बल नन्दसा के विजयदामन (२३८ से २५० ई०) का सामन्त था। आगे ये मौखरि वंशीय बड़े प्रबल हुए।

---

(१) 'मालवन्त जय' 'जयमालवगणस्य' आदि सिक्कों पर उद्धृत लेख।

(२) प्राचीन भारत में गणतान्त्रिक व्यवस्था—शोध पत्रिका वर्ष १५—अंक ?

(३) कोटा राज्य का इतिहास—डॉ० मथुरालाल शर्मा—पुरातत्त्व सम्बन्धी सूचनाएँ।

(४) उपर्युक्त।

भैंसरोडगढ़ के पास बाड़ौली के शैव-मन्दिर हैं, इन्हें हूणों द्वारा निर्मित माना जाता है। कर्नल टॉड ने बाड़ौली की कला को अद्वितीय कहा है। हूणों से गुप्त शासकों का युद्ध हाड़ौती क्षेत्र में हुआ था। दरा के पास भीम चोरी के गुप्त कालीन मन्दिर में अंकित लेख[1] से सूचना मिलती है कि "ध्रुवस्वामी" हूण युद्ध में मारा गया। "ध्रुवस्वामी" का व्यक्तित्व अभी तक सन्देह का विषय बना हुआ है। चार चौमा का मन्दिर भी गुप्तकाल का है जैसा कि वहाँ की कलाकृतियों से प्रमाणित होता है।

हाड़ौती क्षेत्र का सबसे प्राचीन नगर पार्वती की सहायक नदी विलासी के तट पर बसा हुआ "कृष्ण-विलास" है। यहाँ किसी प्राचीन राजधानी के खण्डहर मिलते हैं। कृष्ण-विलास में जैन व वैष्णव मन्दिरों के अतिरिक्त बराह की विशाल मूर्ति है जो भारत में अद्वितीय है। कलात्मकता की दृष्टि से कृष्ण-विलास व बाड़ौली हाड़ौती क्षेत्र में विशेष स्मरणीय हैं। कृष्ण-विलास की बराह पूजा भारतीय ऐतिहासिक परम्परा का महत्वपूर्ण तथ्य है। बराह की एक मूर्ति अटर नामक स्थान पर भी प्राप्त हुई है। बाड़ौली ने शिवमन्दिरों का सम्बन्ध माहेश्वर नगर के शिव-भक्त शासकों से रहा होगा। कालीदास ने चम्बल के तटवर्ती देवगिरी पर्वत क्षेत्र में स्कन्दपूजा का उल्लेख किया है जो[2] देवगिरी मुकन्दरा का ही ज्ञात होता है।

एक दूसरा प्राचीन ऐतिहासिक महत्व का स्थान शेरगढ़ है इसका सम्बन्ध परमारों से रहा है। इसका प्राचीन नाम कोषवर्द्धन था। सं० ८७० के माघ सुदी ६ के एक शिलालेख[3] में देवदत्त नामक नागवंशी बौद्ध राजा का उल्लेख है। एक अन्य शिलालेख (लक्ष्मीनारायण के मन्दिर का) में धारा नगरी के परमार-वंशी शासक वाक्पतिराज से उदयादित्य तक की वंशावली का उल्लेख है।[4] ११वीं शती के इस लेख से पता चलता है कि सोमराज परमार ने इसे व्यापारिक महत्व का स्थान जानकर सोमपट्टण नाम दिया था। इस स्थान पर ११वीं शती की खण्डित जैन प्रतिमाएँ कलात्मकता की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

अटरू के पास की गणेशवंज की प्रतिमाएँ भी १०वीं शताब्दी की हैं। अटरू भी प्राचीन नगर था। जयसिंह परमार के लेख के अनुसार भैंसड़ा गाँव को परमारों ने कवि चक्रवर्ती पण्डित[5] अग्रहार के रूप में प्रदान किया था। गड़गच्च का मन्दिर[6] गड़गच नगर के व्यापारियों द्वारा अटरू में बनवाया गया होगा।

(१) कोटा राज्य का इतिहास —डॉ० मथुरालाल शर्मा-पुरातत्व संबंधी सूचनाएँ।
(२) तत्र स्कन्दं नियतवसतिं पुष्पमेघीकृतात्मा। मेघदूत पू० मे० श्लोक ४६
(३) उपर्युक्त।
(४) बरमेड़ी दरवाजे का शिलालेख—कोटा राज्य का इतिहास—डॉ० मथुरालाल शर्मा पुरातत्व सम्बन्धी सूचनाएँ।
(५) उपर्युक्त।
(६) उपर्युक्त।

मण्डदेवरा, विद्यालस, देहलपुर, आमेठा आदि स्थानों के मन्दिर भी १० वीं—११वीं शती के हैं। मण्डदेवरा प्रौढ़ हिन्दूकला का अनुपम उदाहरण है।[१] इस मन्दिर का निर्माणकर्त्ता कोई मलयवर्मा था। संभव है कन्नौज के यशोवर्मा के वंशजों ने राजनीतिक उथल-पुथल में हाड़ौती की पर्वतीय भूमि का आश्रय लेकर कालान्तर में प्रभाव बढ़ा लिया हो। इसका जीर्णोद्धार १३वीं शती में मेदवंशीय क्षत्रियों ने करवाया।

शिलालेख—संवत् १२१६—विश्रामवर्मा—मेडवंशीय—महाराज।
श्रीमतिसिंह स्ड—श्रीमलयदेव वर्मणः—विजयोल्लास विनम्रन्य महत्रावधिपरास्तपरस्य—भक्तिकीर्तिमूर्ति।[२]

भीमगढ़ की विशालकाय गणपति की मूर्ति इस क्षेत्र में गणपति—पूजा के प्रचार को प्रमाणित करती है। भीमगढ़ में शिव का सहस्त्रपिंडी लिंग भी है। काले पत्थर का यह लिंग विशालता के कारण ही नहीं सौन्दर्य के कारण भी अनुपम है।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हाड़ौती क्षेत्र में बड़े-बड़े नगरों की स्थापना हुई थी। भारत के ऐतिहासिक मौर्य, परमार गुप्तादि वंशों का हाड़ौती में प्रभाव रहा था और शासन-च्युत हो जाने पर वे हाड़ौती के पर्वतीय मार्गों में आश्रय लेकर अपना प्रभाव बनाए रखते थे। प्राचीन मन्दिरों के खण्डहरों से पता चलता है कि बौद्ध, जैन और वैष्णव सभी धर्मों का इस क्षेत्र में पर्याप्त प्रचार हुआ था। इन धर्मों के अनुयायिओं ने कीर्त्ति-विस्तार व भक्तिभाव प्रकट करने के लिए अपने-अपने इष्टदेवों के विशालकाय मन्दिर बनाए थे। खंडित बुद्ध व जैन तीर्थकरों की प्रतिमाओं के हाथ-पैर आदि अंगों को आभूषणों से अलंकृत दिखाया गया है।[3] सारे भारत में जैन-तीर्थकरों की अलंकृत प्रतिमाएं नहीं मिलतीं। कौल्वी की ऐतिहासिक गुफाहों में खुदी हुई विशाल मूर्त्तियाँ भी अलंकृत हैं। जनश्रुति के अनुसार वे पाण्डवों की मूर्तियाँ हैं। संभव है ये अलंकृत मूर्त्तियाँ शैव योगियों की हों। गढ़गच नगर के खण्डहरों के पास छनिहारी-पनिहारी के दो मन्दिर भयानक कान्तार में खड़े हुए हैं। इनमें से एक पर अचिन्त्यमययोगी संवत् ७००, का लेख अंकित है, जिससे इस क्षेत्र में योगियों का प्रभाव सूचित होता है। बाड़ोली की अनुपम कलाकृति शेषशायी विष्णु, कृष्ण-विलास की विशाल गणपति प्रतिमा, अटरू की विशाल बुद्ध प्रतिमा, भीमगढ़ व गढ़गच की जैन-प्रतिमाएं इस बात को सूचित करती हैं कि समृद्धिशाली हाड़ौती क्षेत्र में सभी धर्मों का प्रचार हुआ था।

१३वीं शती के उत्तरार्द्ध में हाड़ौती क्षेत्र में दो वंशों का उदय हुआ। १० वीं शती में शाकम्भरी (सांभर) से लक्ष्मणराज चौहान नाडोल में आकर बस

(१) कोटा राज्य का इतिहास—डॉ० शर्मा पुरातत्त्व सम्बन्धी सूचनाएं।
(२) उपर्युक्त।
(३) हाड़ौती क्षेत्र की कला-कृतियाँ—'प्रेरणा' वर्ष १०—अंक १२

गया था। उसका वंशज हरराज हाड़ाओं का पूर्व पुरुष हुआ। हाड़ावंशियों ने बोमोदा का किला बनाया। बोमोदा के प्रथम स्वामी के १२ पुत्रों में रामदेवा बड़ा वीर था। उसने मीणों को परास्त कर दिया और पटहर आकर रावगंगू (रामगढ़ के दस्यु सरदार) से समझौता करके चम्बल को अपने राज्य की सीमा निश्चित करली। चम्बल के तटवर्ती अकेलगढ़ के भील कोटिया ने कोटा बसाया था। बूँदी के राजकुमार जीतसिंह ने कोटा जीता। राजकुमार माधोसिंह ने कोटा में बूँदी से स्वतन्त्र हाड़ा राज्य की स्थापना कर ली। हाड़ाओं का प्रभाव बढ़ता ही रहा। १५वीं शती के हाड़ा-मेवाड़-संघर्ष ने हाड़ाओं को प्रभावशाली बना दिया। राव सुरजन ने रणथम्भोर जीत कर अपने राज्य में मिला लिया था। १५४७ में हाड़ाओं के प्रभाव से चिन्तित होकर मांडू के सुलतान ने बूँदी जीत ली थी परन्तु हाड़ाओं ने उसे पुनः मुक्त कर लिया।

परन्तु सीधे संघर्ष के अवसर आते-आते टल गए। १७७१ ई० में हाड़ा शासकों ने अंग्रेजों से संधि करके उनकी प्रभुता को स्वीकार कर लिया। बूँदी के शासकों में सूरजमल, रामसिंह आदि तथा कोटा में माधोसिंह, भीमसिंह प्रथम आदि बड़े पराक्रमी हुए।

१६४७ ई० में भारत स्वतन्त्र हो गया। इसके वाद सर्वत्र राष्ट्रीय चेतना के दर्शन हुए। कोटा व बूँदी के हाड़ा राजाओं ने अपने राज्यों को जनतांत्रिक प्रशासन के लिए राजस्थान के संघ में मिला दिया। प्रारम्भ में राजस्थान राज्य में कोटा, बूँदी, झालावाड़ और टोंक ही सम्मिलित हुए थे, धीरे-धीरे उदयपुर, जयपुर, जोधपुर, बीकानेर आदि के मिल जाने से भारत संघ के अन्तर्गत संयुक्त राजस्थान का जन्म हुआ।

हाड़ौती भाषी क्षेत्र —

हाड़ौती प्रदेश की भाषा का नाम भी हाड़ौती है। वर्तमान राजस्थान राज्य का कोटा जिला, बूँदी जिला व चित्तौड़ जिला का पूर्वी भाग विशुद्ध हाड़ौती भाषी क्षेत्र है। मेरवाड़ी पर मारवाड़ी. मेवाड़ी व ढूँढाड़ी व व्रजभाषा का मिश्रित रूप प्रचलित है। कोटा जिले की शाहवाद तहसील में भी सफाड़ी से मिश्रित हाड़ौती वोली जाती है जिसे डाँगी (डांग प्रदेश की—जङ्गल की) वोली कहा जाता है। दक्षिण में असनावर, अकलेरा आदि झालावाड़ जिले की तहसीलों में भी हाड़ौती वोली जाती है, यद्यपि असनावर में मालवी का प्रभाव वढ़ता जाता है। खानपुर तहसील हाड़ौती भाषी है। इस प्रकार झालावाड़ जिले में लगभग ६० हजार, कोटा जिले के ६॥ लाख, बूँदी जिले के ३॥ लाख व शाहपुरा के १॥ लाख, इस प्रकार कुल लगभग १२॥ लाख व्यक्ति हाड़ौती भाषी हैं। लगभग ३ लाख व्यक्ति और ऐसे हैं जो मिश्रित हाड़ौती वोलते हैं। अव राष्ट्रभाषा का प्रचार वढ़ता जा रहा है और इसीलिए शिक्षित व्यक्ति आपस में हिन्दी का व परिवार में हाड़ौती का प्रयोग करने लगे हैं। १६६१ ई० की जनगणना में राष्ट्र-प्रेम के वशीभूत होकर अधिकतर लोगों ने अपनी मातृभाषा हिन्दी लिखाई है। इसलिए उक्त जनगणना के आँकड़े विश्वसनीय नहीं हैं। राष्ट्रभाषा के लिए हाड़ौती भाषियों के इस त्याग को अन्यथा नहीं समझना चाहिए।

भाषा सर्वेक्षण और हाड़ौती —

सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने भारत की भाषाओं के सर्वेक्षण का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। यद्यपि इस कार्य में कमियाँ रह जाना संभव ही था, परन्तु भाषाओं के अध्ययन के विषय में नवीन दृष्टि देने के लिए ग्रियर्सन का आभार भारतीय भाषाओं के अनुसंधानकों को मानना होगा।

"लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया", जिसे भारतीय भाषाओं का विश्वकोष कहा जाता है,के ग्रन्थ संख्या ६ भाग २ में जॉर्ज ग्रियर्सन ने राजस्थानी भाषाओं

पर अपने सर्वेक्षण का परिणाम विस्तार से व्यक्त किया है। उन्होंने राजस्थानी के अन्तर्गत पाँच उपभाषाएं (Dialects) बतलाई हैं—पश्चिमी, मध्य-पूर्वी, उत्तरी-पूर्वी तथा दक्षिण पूर्वी।[१] मध्य पूर्वी की दो शाखाएं जयपुरी और हाड़ौती मानी हैं। जार्ज ग्रियर्सन ने यह भी कहा है कि किसी भी परिस्थिति में वे (राजस्थानी भाषाएं) पश्चिमी हिन्दी की उपभाषाएं नहीं मानी जा सकतीं। यदि उन्हें किसी की उपभाषा मानना ही पड़े तो वे गुजराती की उपभाषाएं कही जा सकती हैं।[२] संज्ञा शब्दों के रूप-परिवर्तन, कारक विचार, उपसर्गों के प्रयोग तथा क्रिया के वर्तमान काल के प्रयोग का साम्य गुजराती से होने से वे पश्चिमी हिन्दी से भिन्न हैं।[३]

हाड़ौती पर विचार प्रकट करते हुए उन्होंने कहा है कि कोटा-बूंदी में प्रमुखतया तथा ग्वालियर, टोंक, छबड़ा और झालावाड़ में अंशतः ६,६१,१०१ लोग हाड़ौती भाषा बोलते हैं।[४] कोटा और बूंदी की भाषा को टकसाली (Standard) हाड़ौती माना जा सकता है।[५] जिसे बोलने वालों की संख्या सर्वेक्षण विवरण के अनुसार इस प्रकार है[६]:—

बूंदी	३,३०,०००
कोटा	५,५३,३६५
ग्वालियर	१,७०,००
ग्वालियर (शिवपुर)	४८,०००
टोंक-छबड़ा	१७,०००
झालावाड़	२५,७०६
कुल	६,६१,१०१

हाड़ौती के विषय में अधिक जानकारी राजस्थान की बोलियों के वर्गीकरण की इस रूपरेखा से होगी।[७]

१. पश्चिमी राजस्थानी-मारवाड़ी, थारी, बीकानेरी, बागड़ी, शेखावाटी, मेवाड़ी, खेराड़ी, गोड़वाड़ी, देवड़ावाटी।

२. उत्तरी पूर्वी राजस्थानी-अहीरवाटी, मेवाती।

---

(१) लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया—पृष्ठ २
(२) उपर्युक्त—पृष्ठ १५
(३) उपर्युक्त—पृष्ठ १५
(४) उपर्युक्त—पृष्ठ २०३
(५) उपर्युक्त—पृष्ठ २०३
(६) उपर्युक्त—पृष्ठ २०३
(७) उपर्युक्त—पृष्ठ ३३

प्रमुख भाषाएं[1] कही जा सकती हैं। मारवाड़ी अपनी विविध शैलियों में जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर और शेखावाटी में बोली जाती है। मेवाड़ी उदयपुर, डूंगरपुर, बाँसवाड़ा में बोली जाती है। झालावाड़, कोटा, बूंदी, किशनगढ़, जयपुर, बाँगड़ी आदि क्षेत्रों में प्राचीनकाल में कोई क्षेत्रीय प्राकृत बोली जाती होगी। जयपुरी में ब्रजभाषा के प्रभाव से स्त्रीतत्त्व-प्रधानता—लयात्मक सुकुमारता का प्रवेश हुआ किन्तु बाँगड़ी और हाड़ौती पुंतत्व प्रधान भाषाएं अब भी यथावत् बनी हुई हैं। अतएव आधुनिक जयपुरी, आधुनिक हाड़ौती से भिन्न है। मालवी मालवा की बोली है। राजस्थानी के सामीप्य के कारण उसमें कुछ समानता हो सकती है। वैसे पद विन्यास, ध्वनि प्रयोग और लय की दृष्टि से वह राजस्थानी से भिन्न है।[2] निम्बाड़ी भी राजस्थानी से भिन्न है, यद्यपि हाड़ौती से, उसका साम्य देखा जाता है पर भेद कम नहीं है।

राजस्थान की सब बोलियों का केन्द्र किशनगढ़-अजमेर ज्ञात होता है पश्चिम व उत्तर में जाइये मारवाड़ी "र" सम्बन्ध प्रत्यय वाली भाषा, पूर्व में जयपुरी स्त्रीतत्त्व प्रधान—सुकुमार भाषा। यह सुकुमारता करौली तक घुस आई, ब्रजभाषा के कारण है। दक्षिण में मेवाड़ की "नीला घोड़ा रा सवार" वाली भाषा-मारवाड़ी के समान ही पद-प्रयोग शैली, परन्तु उच्चारण व लय में भिन्न। ब्रजभाषा की सुकुमारता का प्रभाव मेवाड़ी पर भी पड़ा है। दक्षिण पूर्व की ओर—हाड़ौती पुंतत्व प्रधान भाषा।[3] मालवी में भी सुकुमारता आ गई है। बीच का हाड़ौती क्षेत्र चारों ओर सुकुमार भाषाओं के बीच में अपनी स्वतंत्र सत्ता की घोषणा कर रहा है।

पंचम प्रकरण

हाड़ौती लोक-गीतों की भाव-सम्पद

पंचम प्रकरण

हाड़ौती लोकगीतों की भाव-सम्पदा

मानव-हृदय विशाल है, साथ ही उसके मानस-सागर में उद्वेलित होती अनुभूति विधियां तो और अनन्त हैं। "भारतीय आचार्यों ने" मानव-जीवन की विभिन्न अनुभूतियों के आधार पर हृदय की अनन्त भावोर्मियों का मन्थन कर सार रूप में स्थायीभावों की व्यापक एवं चिरन्तन सत्ता को स्वीकार किया है। इन स्थायीभावों से ही विभिन्न रसों की असंख्य भाव-लहरियों में तरंगित होकर मानव-हृदय उद्वेलित होता रहता है, किन्तु वासनारूप में जो भाव हमारे अन्तःकरण में निहित हैं वे ही प्रदीप्त होकर रसमग्न करते हैं। वस्तुतः विभाव, अनुभाव और सञ्चारी (या व्यभिचारी) भाव के संयोग से रस की उत्पत्ति मानी जाती है।[1] जब किसी उक्ति में ये तीनों अवयव रहते हैं, तभी उसमें पूर्ण रस रहता है, जब इनमें से किसी अवयव की कमी रहती है, तब वह भाव ही माना जाता है। अर्थात् उस दशा में वह भाव रसदशा तक पहुँचा हुआ नहीं कहा जाता।[2] "रसोनन्द" के अनुसार रस-आनन्द की अभिव्यक्ति है, और उसका पहला विकार अहंकार है। जिससे कि ममता या अभिमान पैदा होता है, एवं इसी ममता या अभिमान से प्रेम (रति) उत्पन्न होता है। यही रतिभाव पुष्ट होकर शृंगार रस की स्थिति धारण करता है, हास्य इसी का भेद है। रतिभाव सत्वादि गुणों के विस्तार से राग, तीक्ष्णता, गर्व और संकोच इन चार रूपों में परिणित होता है। राग से शृंगार, तीक्ष्णता से रौद्र, गर्व से वीर एवं संकोच से वीभत्स रस की उत्पत्ति होती है।[3] शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, और शान्ति ये आठ रस साहित्य में सर्वमान्य हैं। इनके अतिरिक्त कुछ लोग "वात्सल्य" नामक नवाँ रस भी मानते हैं। इसके अतिरिक्त भी भक्ति-मार्गी लोगों ने "भक्ति" और "संख्यः" ये दो अन्य रस माने हैं परन्तु इन्हें केवल भाव—मानना ही अधिक समीचीन प्रतीत होता है।[4]

---

(१) विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगाद्रसनिष्पत्तिः। (नाट्य शास्त्र)

(२) काव्य प्रदीप—रामबहोरी शुक्ल—पृष्ठ ६४

(३) आनन्दः सहजस्य व्यज्यते सकदावन
आवस्तस्य विकारो योऽहंकार इति स्मृतः
ततोऽभिमानस्तत्रेदं समाप्तं भुवनत्रयम्
अभिमान दरितः साच परिपोषमुपेयुषी
तदभेदा काममितरे हास्याया अप्यनेकशः
रागात्भवति शृंगारो रौद्रस्तैक्ष्ण्ययाप्रजापते ॥

(४) काव्य प्रदीप

वियोग शृंगार में आश्रय की दस दशाएं हुआ करती हैं जिनका पूर्ण वर्णन हमें हाड़ौती लोक-गीतों में उपलब्ध होता है।

१. अभिलाषा, २. चिन्ता, ३. स्मृति, ४. गुण—कथन, ५. उद्वेग ६. प्रलाप, ७. उन्माद, ८. व्याधि, ९. जड़ता और १०. मरण।

निष्कर्षतः शृंगार का विवेचन निम्न है—

स्थायीभाव—रति या प्रेम।

आलम्बन (विभाव) उत्तम प्रकृति अर्थात् श्रेष्ठ गुणों, रूप, चिरसाहचर्य से युक्त नायक या नायिका है।

उद्दीपन—(विभाव) नायक या नायिका की वेशभूषा, विविध चेष्टाएं आदि पात्रगत उद्दीपन हैं, और पात्र से वहिर्गत उद्दीपन है—चन्द्र, चाँदनी, चन्दन, वसन्त, आदि ऋतु, सुरभित पवन, एकान्त स्थल, पक्षियों का कलरव, वाटिका, भ्रमर गुंजार आदि।[१]

अनुभव—आश्रय का अनुराग पूर्ण आलाप, अवलोकन, स्पर्श, आलिंगन, चुम्बन, भृकुटिभंग, कटाक्ष, अश्रु, वैवर्ण्य आदि।

संचारी—तेतीसों संचारी इसके अन्तर्गत उद्भुत एवं लुप्त होते हैं। अन्य किसी रस में सब संचारी नहीं आ सकते। इस रस का शासन सभी संचारियों पर रहता है। इसी से इसे "रसराज" कहते हैं।

काव्य-शास्त्र के आचार्यों ने नव रसों के विभिन्न अंगोपांगों को बाँध कर रूढ़-सा बना दिया है, उनकी सीमा-रेखाओं में वेष्टित भाव काव्य-परम्परागत हो गये हैं, फलस्वरूप स्वाभाविकता का लोप-सा हो गया है। "केवल वाह्य चेष्टाओं को देखकर ही नारी के अन्तस में उद्वेलित होने वाली भावनाओं का अंकन कर लेना पुरुषों की मनोरम कल्पना का परिचायक अवश्य हो जाता है, किन्तु इसमें नारी-मानस के सहज सौन्दर्य की अनुभूतियों का यथार्थ चित्र नहीं मिल सकता। स्त्रियों की अतृप्त वासनाएं एवं कुचली हुई मनोकांक्षाओं का आवेग लोक-गीतों में खुलकर प्रकट हुआ है। इसी तरह यौवन की उमंगों में डूबते-इतराते नारी-हृदय की विरह अन्य व्यंजनाएं भी बड़ी चुभती हुई हैं। जीवन का ऐसा यथार्थ चित्रण काव्य-ग्रंथों में संभव नहीं, वह लोकगीतों की अपनी वस्तु है।[२]

हाड़ौती लोक-गीतों में शृंगार रस के दोनों पक्षों-संयोग और वियोग का वर्णन मिलता है। इन गीतों में शृंगार रस का जो स्वरूप पाया जाता है, वह नितान्त पवित्र, संयत, शुद्ध एवं दिव्य है। हिन्दी के रीतिकालीन कवियों ने संयोग शृंगार का जो भद्दा, अश्लील तथा कुरुचिपूर्ण प्रदर्शन अपनी रचनाओं में किया है, उसका यहाँ अभाव है। संभवतः हिन्दी के कवियों ने अपनी कविताएं अपने अन्न-दाता राजाओं को प्रसन्न करने के लिये रची थीं, परन्तु ये गीत स्वान्तः सुखाय रचे गये हैं।

---

(१) काव्य प्रदीप—रामबहोरी शुक्ल पृ० ६७।

(२) मालवी लोकगीत—डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय—पृ० ३६५

वियोग शृंगार में आश्रय की दस दशाएं हुआ करती हैं जिनका पूर्ण वर्णन हमें हाड़ौती लोक-गीतों में उपलब्ध होता है।

१. अभिलाषा, २. चिन्ता, ३. स्मृति, ४. गुण—कथन, ५. उद्वेग ६. प्रलाप, ७. उन्माद, ८. व्याधि, ९. जड़ता और १०. मरण।

निष्कर्षतः शृंगार का विवेचन निम्न है—

स्थायीभाव—रति या प्रेम।

आलम्बन (विभाव) उत्तम प्रकृति अर्थात् श्रेष्ठ गुणों, रूप, चिरसाहचर्य से युक्त नायक या नायिका है।

उद्दीपन—(विभाव) नायक या नायिका की वेशभूषा, विविध चेष्टाएं आदि पात्रगत उद्दीपन है, और पात्र से बहिर्गत उद्दीपन है—चन्द्र, चाँदनी, चन्दन, वसन्त, आदि ऋतु, सुरभित पवन, एकान्त स्थल, पक्षियों का कलरव, वाटिका, भ्रमर गुंजार आदि।[1]

अनुभव—आश्रय का अनुराग पूर्ण आलाप, अवलोकन, स्पर्श, आलिंगन, चुम्बन, भृकुटिभंग, कटाक्ष, अश्रु, वैवर्ण्य आदि।

संचारी—तेतीसों संचारी इसके अन्तर्गत उद्भुत एवं लुप्त होते हैं। अन्य किसी रस में सब संचारी नहीं आ सकते। इस रस का शासन सभी संचारियों पर रहता है। इसी से इसे "रसराज" कहते हैं।

काव्य-शास्त्र के आचार्यों ने नव रसों के विभिन्न अंगोपांगों को बाँध कर रूढ़-सा बना दिया है, उनकी सीमा-रेखाओं में वेष्टित भाव काव्य-परम्परागत हो गये हैं, फलस्वरूप स्वाभाविकता का लोप-सा हो गया है। "केवल बाह्य चेष्टाओं को देखकर ही नारी के अन्तस में उद्वेलित होने वाली भावनाओं का अंकन कर लेना पुरुषों की मनोरम कल्पना का परिचायक अवश्य हो जाता है, किन्तु इसमें नारी-मानस के सहज सौन्दर्य की अनुभूतियों का यथार्थ चित्र नहीं मिल सकता। स्त्रियों की अतृप्त वासनाएं एवं कुचली हुई मनोकांक्षाओं का आवेग लोक-गीतों में खुलकर प्रकट हुआ है। इसी तरह यौवन की उमंगों में डूबते-इतराते नारी-हृदय की विरह अन्य व्यंजनाएं भी बड़ी चुभती हुई हैं। जीवन का ऐसा यथार्थ चित्रण काव्य-ग्रंथों में संभव नहीं, वह लोकगीतों की अपनी वस्तु है।[2]

हाड़ौती लोक-गीतों में शृंगार रस के दोनों पक्षों-संयोग और वियोग का वर्णन मिलता है। इन गीतों में शृंगार रस का जो स्वरूप पाया जाता है, वह नितान्त पवित्र, संयत, शुद्ध एवं दिव्य है। हिन्दी के रीतिकालीन कवियों ने संयोग शृंगार का जो भद्दा, अश्लील तथा कुरुचिपूर्ण प्रदर्शन अपनी रचनाओं में किया है, उसका यहाँ अभाव है। संभवतः हिन्दी के कवियों ने अपनी कविताएं अपने अन्न-दाता राजाओं को प्रसन्न करने के लिये रची थीं, परन्तु ये गीत स्वान्तः सुखाय रचे गये हैं।

---

(१) काव्य प्रदीप—रामबहोरी शुक्ल पृ० ६७।

(२) मालवी लोकगीत—डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय—पृ० २६५

के साथ जीवन के व्यावहारिक पक्ष की अपेक्षा भी नहीं की गई है। प्रिय-मिलन की आंकाक्षा "पी विन रियो न जाय।" स्थान-स्थान पर प्रकट हुई है। संयोग शृंगार की भावना में रूप सौन्दर्य का आकर्षण प्रमुख है। नायक और नायिका के मिलन की स्थिति में प्रेमभरे अनेक रमणीय भावचित्रों का सृजन करती है।[1]

हाड़ौती का पुरुषवर्ग हमेशा से कर्त्तव्यशील एवं कठोर संघर्षरत रहा है। उसके जीवन में विवाह जितना आवश्यक है, ठीक उतना ही स्वाभाविक विवाह के बाद अपनी सामाजिक जिम्मेदारियों को निभाने के लिये नौकरी के लिये जाना होता है। "विरह" इतना क्रूर एवं कठोर शब्द है। यह छोटे से धड़कते हृदय में कितनी आकुलता एवं व्यथा भर देता है। विरह मनुष्य की एक सार्वजनीन भावना है। हाड़ौती-लोक-गीतों में ऐसे सैंकड़ों गीत हैं, जिसमें पत्नी अपने पति को किसी प्रकार कुछ देर और रखने के लिये मिन्नतें करती रहती है, प्रार्थना करती रहती है, अपने यौवन की सौगन्ध से बाँधकर रखना चाहती है, परन्तु वह कर्त्तव्य से च्युत होना मरण से भी बढ़ कर मानता है। स्त्री रुकने को कहती है, बहाने बनाती है और पति उसका सहज उत्तर देता रहता है। अन्त में दुखी, विरह-कातर कायर मोर की तरह कुरलाती हुई स्त्री को छोड़कर पति चला जाता है।[2] मगर नारी-हृदय ठहरा, वह पति को कई बातें समझाती है —

परदेस जावे हो पिया जल्दी पाछा आवज्यों
परदेसी की मिरगा नैणी सूं,
नैणा मती लगावज्यो।
सन्ध्या पूजा देव भावणा,
यांने भूल मत जावज्यो।
बचता रीज्यो बुरियों सूं,
अपणों धरम निभावज्यो।

एक अन्य नायिका तो कई चीजें मँगाती है —

पर देस्यां जावो छो तो थें,
चीजा लेता आवज्यो जी।
सिर पे रखड़ी, नाक में नथड़ी,
तमगो भारी लाज्यो जी।
बाजूबन्द अर मादलिया,
इकड़ी लूम लगायज्यो जी।
हाथां में हथफूल अंगूठी,
बलता लेता आज्यो जी।

---

(१) मालवी लोक-गीत—डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय—पृष्ठ ३६८
(२) परम्परा—लोक-गीत अंक—पृष्ठ १०२.

हृदय से लगालो, मेरी विरह-ज्वलित छाती को शीतल तो करदो। साजन आज ही तो परदेस से आये हैं।

और वह धीरे से समझा कर मुस्करा देती है—वह कहती है—

दारू मीठो दाख को जी
सूरां भली सिकार।
सेजां मीठी कामणी
और रण मीठी तरवार।

प्रियतम! दारू जिस प्रकार दाख का मीठा होता है और शिकारी को जिस प्रकार "सूर" की शिकार करने में आनन्द आता है और जिस प्रकार वीर पुरुष को युद्ध में तलवार प्रिय लगती है उसी प्रकार पुरुष को कामिनी सेज में मीठी लगती है।

वह हँसता है, आँख से ईषत् इशारा करता है। वह कह उठती है—

वनां थांकी आंख्यां कामणगारी,
मां पर जादू होयग्यो सा।
पेचो सोहे सवा लाख को तुर्रो वना,
तुर्रा में मन म्हारो वना।
गला में सोहे सवालाख को हार,
हार में मन म्हारो।
थांकी म्हां की जोड़ी सोवे,
जोड़ी में दुनिया को मन आयो सा वना।
वना थांकी आंख्यां कामणगारी,
म्हां पर जादू होयग्यो सा।

"एक निष्ठता" में जीवन भर एक स्त्री-पुरुष को परस्पर आकर्षण बनाये रखना है। अतः अपने वैवाहिक प्रारम्भिक जीवन में अवश्य ही स्त्री के सौन्दर्य और पुरुष की पौरुष शक्ति का भी महत्व है।[1] वह अपने आकर्षण को ज्यों की त्यों सुरक्षित रखना चाहती है, इसलिये तो वह पाला भी काटने को तैयार नहीं है। वह मारवाड़ से पाला मँगाने की प्रार्थना कर लेती है, वह कहती है प्रियतम, मैं पाला नहीं काटूँगी, मेरी हथेली में छाले पड़ जायेंगे—

पालो नहीं काटूं सा।
म्हारी गोरी सी हथेली,
म्हारी गुदली सी हथेली में
छाला पड़ग्या जी,
मनवा मारू जी।

---

(१) परम्परा—लोकगीत अंक—पृष्ठ १०२

नारी में तो नार भली भटियाणी सा
पुरुषां में तो पुरुष भला हाड़ा राव सा
बावड़ली में कुडली खुदा दो सा
बावड़ली को खारो मीठो पाणी सा
खारो तो पाणी म्हारी सौकड़ल्यॉ ने पावो सा
मीठो पाणी थां अरोगो, धण ने पावो सा
म्हूं तो राजा का डेरा नरखण आई सा

साजन चाल्या चाकरी जी,
कांधा धरी बन्दूक ।
के तो सागे ले चलो जी,
के करवो दो टूक ॥
नवल बना····।

सावन आ गया । मदमाता, रङ्गीला एवं यौवनोन्मत्त सावन आ गया, मगर अभाग्यवश उसके साजन को नौकरी का बुलावा आ गया । वह उसे जाने नहीं देना चाहती । जाने दे भी तो कैसे ? हाड़ौती-नारी की समझ भरी बात तो देखिये— प्रियतम ! आप जा कहाँ रहे हैं ? इस सावन की ऋतु में । सारी पर्वतमाला हरी हो गई है, मोरों की पुकार से वनस्थली अनुपम हो उठी है । ऐसे समय किसका जी करता है, गोरी को छोड़ कर जाने का । सिर्फ तीन अभागे ऐसे होते हैं जो इस ऋतु में घर से बाहर निकलते हैं—

डूंगरिया हरिया हुआ रे,
झेण्या झींगरया मोर ।
इण रित तीन ई नीसरई,
जाचक चाकर चोर····।

परन्तु उसका पति ठहरा नहीं, वह चला गया, बिना उसके शब्दों पर ध्यान दिये, बिना अनुनय विनय माने—वह क्या करे ? वर्षा होती है पर ऐसी लग रही है, जैसे कटारी के घाव लग रहे हों —

काली कांठल बादली जी ढोला,
बरसज बाजे बाव····।
पिय बिन लागे बून्दड़ी जी ढोला,
जांणे कटारी घाव····।

बात यहीं तक समाप्त हो जाती, तब भी कुछ नहीं था, परन्तु उसकी बैरण आँखें तो निरन्तर बरसती ही रहती हैं । ऐसा लग रहा है, मानो सावन और आँखों में बरसने की होड़ लगी हो —

नैणा बरसे सेज पर जी,
आंगण बरसे मेंह ।
होडा होडी लग रही जी,

घर घर चंगी गौरड़ी जी ढोला,
गावे मङ्गलाचार ।
कंयां मती चुकावज्यो जी,
तीजां तणो तौंहार····।

और वह डबडबाती आँखों से, और भरे हृदय से लिखती है—

गह घूमी लूमी घटा,
पावस उलट्या पूर ।
सावण मींने सायबा,
कदियन राखूं दूर ॥

बात सही भी है, प्रिय के बिना कैसा त्यौहार, और कैसा शृंगार। प्रियतम बिना शृंगार सूना है —

सूनो छै सिणगार ढोला जी
फीको छै सिणगार।
अम्बर में तो चमके दासी बिजली जी,
म्हारे दांतों में चमके छै जी चूंप।
हाथों की बींठी हीरो दमके,
सेजां में जिसूं होरियो परकास ।
पीवजी बिना म्हारो फीको छै सिणगार।

घर में सास है, ससुर है, पर प्रियतम घर नहीं है, खुलकर रो भी तो नहीं सकती, रोने पर यदि नणद या देवर देख ले तो उसकी कैसी दुर्गति हो, फलतः वह रोटी बनाते समय जानबूझकर धुआँ होने देती है और धुएं के मिस रोकर ही अपना जी हल्का कर लेती है—

ओवरा में ओवरी,
अर ओवरा में पोई रोटी।
छैल भंवर की मन में आई,
धुवां के मस रोती ।

वह सच्ची प्रेमिका है, उसका प्रेम सच्चा है। उसका प्रेम तो उसके साजन के प्रेम से इस प्रकार घुल मिल गया है जैसे रङ्ग मिल जाता है—

प्रीतड़ तो अस्यो करूं जी,
रङ्ग में रङ्ग मल जाव।
चूना हल्दी जद मले,
लाल रङ्ग हो जाव ।

अन्दर-ही-अन्दर कोई दबोच रहा हो, सारा शरीर 'घण्गाटी' खा रहा है। उसके दिन राह की प्रतीक्षा करते-करते बीतते हैं तो रातें, तारे गिनगिन कर। वह क्या करे ? फाँसी खा कर मर जाय—फाँसी तो खानी आसान है, परन्तु इस यौवन में प्रिय बिना रहना कठिन है—कितनी गहन व्यथा है—

उड़ उड़ जा रे कागला,
प्रीतम खद आवगा रे।
म्हाने बरस सोलवों लाग्यो।
तन बैरी ज्यूं गराणायो।
म्हारे बाण मदन को लाग्यो,
जोबन रीतो जाव रे।
छोई अंग अंग म भार,
पाक्या सजना आम अनार।
मूं तो रे जाऊँ मन मार,
मरोड़ा खाव उबासी रे।
करे साथण्यां घणी ठठोली,
म्हारे हिवड़े लागी गोली।
कैरियाँ पाकी घणी रसीली,
रसड़ो सूखो जाव रे।
दिन तो बांटां तकता जाव,
रातां तारा गणता जाव।
साजन थे को कठी भरथा,
लगा मर जाऊं फांसी रे।

वह कौए को ही नहीं, कबूतर से भी आत्मीयता स्थापित करती है। 'नारी उर की व्यथा नारी ही जानती है' के अनुसार वह कबूतरी से प्रार्थना करती है, उसके स्वर में हुक्म और आदेश नहीं, प्रार्थना, प्यार और भाई-चारे की स्नेह भरी विनय है। आपसी समता है, मानवीय संवेदना है। वह उसकी चौंच पर उपालम्भ लिख कर भेजना चाहती है, उसकी पाँखों पर सात सलाम देना भी नहीं भूलती, वह कहती है—

कबूतरी री, म्हारा भंवर न मला दीजे री।
कबूतरी री, चूंच प थारे लिख दूं ओलमां।
थारी पाख्यां प सात सलाम......................।
कबूतरी री.......।
कबूतरी री, मूं तो सूती छी रंग महल री,
आयो जाल जंजाल..............................।
कबूतरी री.......।

वह याद में तड़फ-तड़फ कर तो पिंजर हो गई है, क्या पता निर्मोही बालम उसकी याद करता भी है कि नहीं—

म्हारी बाँकड़ली मूंछयां का सिरदार,
थाँकी ओलूड़ी सतावे ओ राज।
घुड़ला चढ़ता चतार जो,
म्हाने गैला में कर लीजो याद।
दारू पीतां चतार जो,
म्हाने प्यालां म कर लीजो याद।
महलां चढ़ता चतार जो,
म्हाने सेजां प कर लीजो याद।
थांकी ओलू ढोला म्हे करां जी,
म्हां की करे न कोई।
ई ओलू के कारणे जी ढोला,
झर झर पंजर होई।
म्हारी बांकड़ली मूंछ्या का सिरदार,
थां की ओलूड़ी सतावे ओ राज।

यहाँ तक ही नहीं, वह तो स्पष्ट शब्दों में कहती है—

जद पग मेल्यो ढोला बारणे जी,
डब डब भरिया छ नेण।
ठहरो तो ओढूं ढोला चूनड़ी जी,
रेवो तो पैरूं ढोला चीर।

किन्तु निर्मोही पति जवाब देता है—

निरख जाऊंगो गौरी चूनड़ी जी,
ए गौरी आय निरखूंगो चीर ....।

और वह चला गया। उसके पास रह गई मीठी, स्वप्निल स्मृतियाँ, और प्रियतम का 'कांगसिया'। कांगसिया है, तो क्या, है तो प्रिय का, उसकी अमिट निशानी, उसे भूले कैसे, वह तो उसे प्राणों से भी प्यारा है, परन्तु दुर्भाग्यवश वह भी गुम हो गया। शायद पड़ौसिन ले गई हो। वह चूकेगी भले ही—थानेदार तक जाने को तैयार है।

म्हारे छैल भंवर को कांगस्यो,
पाड़ौसण लेगी रे।
म्हारी सौक लेगी रे, पिणियारी लेगी रे।
म्हारे अन्नदाता रो कांगस्यो कोई छल सूं लेगी रे।।
आग म देख्यो, बाग म देख्यो,
तो भी न लाध्यो कांगसियो।

अठी भी देख्यो, ऊठी भी देख्यो,
तो भी न पायो कांगसियो।
बूंदी देख्यो, कोटा देख्यो,
तो भी न लाध्यो कांगसियो।
ओ रे सैर का कोतवाल! ओ थाणेदार,
म्हारो न्याव चुकातो जाइजे रे।
म्हारे छैल भंवर को कांगसियो,
कोई छल सूं लेग्यो रे।

वह रातों के सूनेपन में, जब कि उसका हृदय घुटने लग जाता है, बाग में अकेली घूमती है, वैरी पपैया उसे सोने भी तो नहीं देता, न मालूम किस जनम का वैर निकाल रहा है—

पपइयो बोल्यो रे।
ए जी मूं बागों फिरूं अकेली।
पपइयो बोल्यो रे।

और दिन को वह मानिनी उस परदेशी ढोला की, उस मणिहारे की बाट जोहती रहती है, छत पर चढ़ती है और उतरती है। बार-बार चढ़ने और उतरने में उसका हार टूट गया है, साँस धोकनी की भाँति चलने लगती है। अब तो हठीला घर आव। बादीला! बांकी मूछों के सरदार तेरी बाट जोह रही हूँ, अब तो घर आव········।

ए जी मिणियारा जी, साहब जी।
ओ हठीला, ओ बादीला, बांकड़लो मूंछयां को सिरदार।
ए जोहूं रे मिणियारा थारी बाट।
ओ बादीला, जोवूं थारी बाट।
ऊंची रे चढ़ूं रे नीची ऊतरूं।
मूं जोऊं, रे मिणियारा थारी बाट।
नीची रे ललती रे ढ़ोला, म्हारो टूटयो नौसर हार········।
ओ हठीला, ओ बादीला, मूं जोवूं रे थारी बाट········।
ए जो मिणियारा जी, साहब जी········।

आई रे सावणिया री तीज,
राज मूं कस्यां आऊं ?
बूंदन भीजे म्हारी साड़ी,
बिन पांखों आऊं कियां साजन ?
नहीं आऊं तो घटे छै स्नेह,
राज मूं कस्या आऊं ?

वह तो कहती है, प्रियतम ! प्रीत करनी भी हो तो ऐसी करनी चाहिये जैसी लोटे से डोर करती है । हरदम उसके गले से ही लिपटी रहती है, और लाती है, नीर झकोल कर.......।

प्रीत करो असी करो ढोला,
जसी लोटा डोर.......।
गले फंसावे आपणो जी,
लावे नीर झकोल ।

वह बीती बातें याद करती है, उसने प्रियतम से नहीं जाने के लिये कितना अनुनय विनय किया था, परन्तु वह दो रोटी के लिये—सिर्फ दो रोटी सुवह-शाम के लिये—उसे विवशतः परदेश जाना पड़ा—

मत जाओ जी पिया परदेस,
पान क फटकारे उड़ जाऊंगी ।
ओलूड़ी क मारे मर जाऊंगी,
रखड़ी घड़ाओ म्हारा छैल ।
गुठणा के ओले छिप जाऊंगी ।
दो रोटी रे कारण म्हारो ।
पिउ गीयो परदेस..........।
मत जाओ जी पिया परदेस ।

हाड़ौती-लोक-गीतों में संयोग एवं वियोग के ऐसे अनेक मनोरम चित्र भरे पड़े हैं । यौवन की भावना से उद्दीप्त प्रेमी युगल का क्षण-मात्र के लिये बिछुड़ना अवांछनीय हो जाता है । "वियोग के चित्रण में किसी कल्पित प्रसंग विधान की अपेक्षा जीवन की मार्मिक अनुभूतियों के कारण नारी-मानस की विरह व्यथा सजीव हो उठी है ।"[१] हाड़ौती-लोकगीतों की विरह विदग्धा नायिका की यह व्यथा प्रत्येक रसिक, सहृदय प्राणी की विरह व्यथा है, जो लोकगीतों के माध्यम से अणु-अणु को गुंजरित किये जा रही है ।

---

(१) मालवी लोक-गीत—डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय—पृष्ठ ३७६ ।

करुण रस —

लोकगीतों के करुण रस की धारा जिस अबाध गति से बही है वह अनुपम है। जिस व्यक्ति के पीड़ित वा गत होने वा इष्ट वस्तु वैभव आदि के नष्ट होने और अप्रिय व्यक्ति वा अनिष्ट वस्तु के प्राप्त होने से हृदय को जो क्षोभ या क्लेश होता है, उसी की व्यंजना से करुण रस की उत्पत्ति होती है।[१]

शास्त्रीय काव्यकारों[२] ने करुण रस का स्थायी भाव शोक माना है। उनके विवेचन के अनुसार।

करुण रस का स्थायीभाव—शोक है।

आलम्बन—(विभाव) विनष्ट, प्रियतम, एवं बन्धु आदि तथा नष्ट ऐश्वर्य इत्यादि है।

उद्दीपन—(विभाव) उनका दाहकर्म, उनसे सम्बन्ध रखने वाली वस्तुएं (जैसे घर, वस्त्र, भूषण आदि) उनकी कथा आदि हैं।

अनुभाव—देव निन्दा, भाग्य निन्दा, भूमि—पतन, रोना, उच्छ्वास, निःश्वास, स्तम्भ, प्रलाप, विवर्णता आदि हैं।

संचारी—निर्वेद, मोह, अपस्मार, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, श्रम, विषाद, जड़ता, उन्माद, चिन्ता दैन्य आदि हैं।

है—"पुत्र के अभाव को लेकर इन लोक-गीतों में नारी हृदय की मार्मिक व्यथा के शाश्वत चित्र अंकित हुये हैं। अभागिन नारी मातृत्व की चरम साधना के सुफल को प्राप्त करने में असफल रहती है तब समाज के द्वारा बांझ जैसे घृणित शब्दों से लांछित और निन्दित होने की दुर्वह स्थिति को टालना उसके लिये असंभव हो जाता है। परिजनों के व्यंग बाणों से मर्माहत होने के कारण भी लोक-गीतों में करुण का उद्वेलन हुआ है। करुण के उद्वेलित करने की बाध्य स्थिति लोक-निन्दा एवं नारीत्व के अपमान से उत्पन्न होती है। आभ्यंतर स्थिति में उसको स्वयं के जीवन के प्रति ग्लानि हो जाती है।[1]

हाड़ौती लोक-गीतों में ऐसे दयनीय करुणा से आप्लावित चित्र भरे पड़े हैं। गीत की एक-एक पंक्ति, एक-एक शब्द से, व्यथा टपक पड़ती है। ये गीत करुणा की साकार मूर्ति होने के साथ-साथ हाड़ौती जन-मानस की अमूल्य धरोहर है। नारी-जीवन की चरम सार्थकता उसके मातृत्व में है। उसके जीवन की एक ही लालसा, एक ही इच्छा, एक ही विचार होता है, कि उसके घर में भी एक पालना बंध जाय, उसकी गोद में एक नन्हा सा शिशु खेले, उसके मन की मुराद पूरी हो जाय। इसके लिये वह देवी-देवताओं को पूजती है। व्रत, टोने, टोटके आदि करती है। भूखी रहती है। चौराहे पर चार दिए जलाती है। काशी के वासी भैरूंजी से फरियाद करती है। वह कहती है—काशी के निवासी भैरूंजी ! मेरी प्रार्थना सुनिये। मतवाले भैरूंजी मेरी विनती सुनिये। जिस प्रकार खेजड़े के वृक्ष को दुःख होता है उसी प्रकार में दुखी हूँ। मतवाले भैरूजी ! मेरी प्रार्थना सुनिये। काशी के निवासी ! मेरी विनति सुनिये। मेरी गोद में एक शिशु दे दो, ताकि मेरे पतिदेव मेरे वश में हो जायें और सास-नणद की बोली में रस आ जाय। काशी के वासी भैरूंजी ! मेरी प्रार्थना सुनिये। मतवाले भैरूं ! मेरी विनति सुनिये।

कासी का वासी म्हारी अरज सुणों
मतवाला भैरूं म्हारी अरज सुणों
कास खेजरो, ऊन तेजरो
दुख दायी दर दूरा कर दी जो
मतवाला भैरूं म्हारी अरज सुणों
कासी का वासी म्हारी अरज सुणों
सासू नणदां ने म्हारी रस भरदो
म्हारा पिउ पातरिया ने वस कर दो
दोई जिठयाणी म्हारी रस भर दो
छोटो सो जड्लो म्हारी गोधां भरदो
कासी का वासी म्हारी अरज सुणों
मतवाला भैरूं म्हारी अरज सुणों।[2]

---

(१) मालवी लोकगीत—डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय—पृष्ठ ३७७
(२) मैं भरनी राजस्थान की—स्वर्गीय लक्ष्मीसहाय माथुर—पृष्ठ ७०

भैंरू के धोक देने के अलावा वह बजरंगबली से[1], इन्दरगढ़ की माता से[2], दियाड़ी माता से[3], भोला भण्डारी[4] आदि से और न मालूम वह कितने देवी-देवताओं को प्रसन्न करने का प्रयत्न करती है, मनौतियां मनाती है, प्रार्थना करती है, मात्र इसलिये, कि उसकी गोद भर जाय, उसके आंगन में भी नन्हा मुन्ना बालक खेले। क्योंकि वह बन्ध्या रह कर सास और नणद के ताने नहीं सुनना चाहती। वह किसी भी कीमत पर अपने ऊपर शाप की भाँति लगा 'वन्धया' शब्द हटाना चाहती है—हाड़ौती लोक-साहित्य का एक दुर्लभ गीत है—'कालाजी'—जो अपने आप में सर्प-कुण्डली की भाँति गहनतम करुणा छिपाये बैठा है। यह गीत मुझे हाड़ौती के सुदूर अंचल में स्थित एक ग्राम की अस्सी वर्षीय बुढ़िया से बड़ी कठिनता से प्राप्त हुआ है। गीत क्या है, नारी जाति का समस्त अवसाद, सारी विषमता, दुःख, ग्लानि, लांछन एवं तिरस्कार घुल मिल गया है। उसकी अभिव्यक्ति

---

(१) बजरंगी जी मनस्या पूरण करो हनुमान जती
बजरंगी जी काज सिद करो हनुमान जती
म्हां की गोदया में दूद पूत बखसो हनुमान जती
थां के घी को रोट चढ़ाऊं, ओ हनुमान जती
म्हां को चुड़लो चुनर अमर करो हनुमान जती

(२) अवला थां के भंवर इन्दरगढ़ का
अवला थां के झालज इन्दरगढ़ का
म्हारी गोदयां में नेनकियो बखसावो मारी माता
घणी खमा म्हांरी माई जी
ऐ बीजासन इन्दरगढ़ का, ऐ जगतारण इन्दरगढ़ का

(३) बिछिया के झनकार, आन जगाई ए माता घियड़ी
म्हारे पेट न ठण्डो करयो मारी माता ऐ
पूतां ने एक हिचवयो दिखाओ जगत माता ऐ

(४) भोला जी भण्डारी थां के दरसण करवा आई जी
दरसन आई जी, शिव परसन आई जी
अब तो पलक उघाड़ो महादेव जी
म्हारी गोदयां में नेनकड़ो दिरावो भोला भण्डारी
भोला जी भण्डारी थां के दरसन करवा आई जी

में समस्त नारी जाति की अभिव्यक्ति है। वह काला भैरव या कालाजी से बांझ शब्द को हटाने के लिये, पुत्र प्राप्ति के लिए प्रार्थना करती हुई कहती है।[1]

थाडी ऊली नदी बवे छे
जी में पाणी गेरो कालाजी
थांनक थांके आई जी
म्हारो जनम सुधारण कालाजी
म्हूं हाजर थां के आई जी
म्हारा सुसराजो म्हारा जेठ जी
म्हारा देवरिया, म्हारा सायब जी
यूं केवे, बांझड़ को मुखड़ो कुण देखे
मूं सरण थांके आई जी
म्हारी सासूजी, म्हारी जिठयाणी
म्हारी दचोराणी, म्हारा बाई सा
मूं केवे बांझड़ को मुखड़ो कुण देखे
यूं सरण थांके आई जी

ऐसी व्यथा पर तो पत्थर भी पसीज जाता है, वह भी करुणा से आर्द्र हो जाता है, फिर कालाजो तो युग-पुरुष है, मानव हृदय है, वे कैसे नहीं पसीजते। उसे सान्त्वना देते हुए कहते हैं—

थारा सुसरा जी, थारा जेठ जी
थारा देवरिया को, थारा सायब जी को।
गरव नमावूं, थारो गरव चलाऊं
ऐ गूजरी। थांनक म्हारे आज्ये।
थारी सासूजी को, थारी जिठयाणी को
थारी दोराणी को, थारी बाई सा को

गरव नमा दूँ, थारो गरव चलाऊँ
ऐ गूजरी । सरणे म्हारे आज्ये
थारी गोद्यां पुतर खिलाऊं
ऐ गूजरी । थांनक मारे आजे ।

उसे सांत्वना मिली। दग्ध छाती को जरा शीतलता-सी प्राप्त हुई, उसका रोम-रोम हर्षित हुआ। कालाजी के प्रति वह कृतज्ञ हो उठी, उसे दुख के दिन याद आ गये—

जी काला ! बागां जो बागाँ मूँ फिरी
जी काला ! सरवर सरवर मूं फिरी
जी काला ! कहियन पायो फल फूल
कंवर काला ! कहियन पायो हरिया रूंख।
कंवर काला ! कूंखड़ली वैरण होई जी काला ।

और उसका स्वर गहरे विषाद में डूब गया, गला भर आया, वह चिहुक उठी—

जी काला ! सुसरा के आँगण ढोल न बाज्या
बाप न भेज्यो म्हारे जाँमंणो[1]
जी काला ! सास सपूतीन पोतो न झेल्यो
मांय न भेज्यो म्हारे पोमचो जी काला
जी काला ! भरी पूरी गोद्यां मूँ चौक न बैठी
बैण[2] न भेजी म्हारे काँचली जी काला
नणद सपूती ए सात्यां[3] न पूरया
बीरो नीं लायो म्हारे चूंदड़ी जी काला ।

उसका स्वर हिचकियों में खो गया। मनुष्य तो क्या उस दुखिया के दुःख से जड़ भी पसीज उठी। वृक्षों ने हिलना-डुलना छोड़ दिया। हवा स्तंभित-सी खड़ी रही, और उसकी अन्तर्व्यथा हुमक कर बाहर निकल पड़ी।

जी काला ! तातो[4] न जीम्यों, मैं तो रातो न ओढ्यो
पीलो[5] पहर सूरज न पूजियो जी काला
आडो[6] जो ले पल्लो में आंचल न दीन्यों
कदियन[7] भीजो म्हारी कांचली जी काला
जी काला ! रात को रांध्यो[8] मैं बासी न राख्यो ।

---

(१) वस्त्राभूषण । (२) सुहाग वस्त्र ।
(३) वहिन । (४) गरम
(५) पीताम्बर (६) ओढ़कर
(७) कभी भी (८) पकाया

टंणक[१] कलेऊ नहीं मांगियो जी काला
मेड्यां[२] पँ चढ मन्ने हेलो[३] न पाड्यो
दीड्यो न कोई म्हारे आँगल[४] जी काला
जी काला पाड़ पाड़ौस्याँ का ओलमा[५] न आया
कदियन ओलमा झेलिया जी हेलो
सुण जो जी सारंग खेड़ो[६] का काला जी
कूंखड़ली[७] वेरण[८] होई जी हेलो
सुण जो जी म्हारा जनम सुधारण
थांनक[९] थारे आई जी काला ।

और एक सन्नाटे के साथ गीत समाप्त हो जाता है । गीत के प्रत्येक शब्द में मानो करुणा साकार रूप में छलछला रही है । "पुत्र के अभाव के लिये केवल नारी को ही दोष नहीं दिया जा सकता, किन्तु समाज तो सारा लांछन उसी पर थोपता है । उसकी इस दयनीय, असहाय एवं विवश स्थिति में करुणा उमड़ पड़ती है ।"[१०] जो गीत के माध्यम से प्रकट होकर सारे वातावरण को गहरी खामोशी एवं व्यथा में ओत-प्रोत कर देती है ।

जितना सुन्दर और मनोहर चित्रण किया है, वह अक्षरों में पढ़ने के लिये नहीं है, वल्कि सुनकर आत्म विस्मृत हो जाने के लिए है ।[1]

हाड़ौती लोक-गीत ऐसे प्रसंगों में करुण रस से आप्लावित हैं । एक गीत है—

म्हारे हरिया वन की कोयलड़ी ।
घड़ी एक घुड़लो थाम रे
सायर वनड़ा
जोऊँ म्हारी कोयलड़ी न
म्हारे हरिया जी वन की कोयलड़ी ।

एक दूसरे गीत में वह बालिका कुरलाती है—

मायड़ मन्ने दूरी दीनी ये
आडा तो नन्दी नाला ए मायड़
आड़ी पड़ी छै वनास
अब का बिछड़या कद मिलाँ ए
दूर पड़्या छाँ हाड़
मायड़ मन्ने दूरी दीनी ए

इस प्रकार के एक अन्य हाड़ौती गीत में बेटी की विदाई पर बड़ी बुढ़िया की शिक्षा को भली प्रकार से गुंफित किया है—

आज बनी जी आछा जाज्यो
ये तो आछी भलाई लेकर आज्यो
रुक्मण जी यें आछ्या जाज्यो जी
यें तो काम चतुराई कर सारा हाथाँ
बारे मत जाज्यो जी ।
जो बनी जी सासरिये पधारो
घर को भेद मत दीज्यो जी
जो सासू जी थाल परोसे, नणद मेला लीज्यो जी
जे देवरिया हंस डर बोले
आडा घूँघट लीज्यो जी ।
जो सरी किसन महल पधारे,
हाथ जोड़ सामाँ लीज्यो जी
बनी जी थे आछा जाज्यो जी ।

मौत के गीत भी करुणा को जाग्रत करते हैं—मृतकों के लिए, मरनों के

(१) साहित्य, संगीत और कला—कोमल कोठारी—पृष्ठ ३६

लिये, और पति के लिए झगड़े होते हैं, बड़ी का छोटी बहू पर अत्याचार करुणा को उपस्थित कर देता है—

थे मोटा म्हे छोटा, जीजा बाई
थां की होड़ न होय
केसरिया दरबार पधारयाँ
महलां झगड़ो होय
गैंणा सारूं म्हारा जीजा बाई
नित का झगड़ा होय ।
केसरिया जी मैंल पधारया
पलंगा झगड़ो होय ।
पलंगा झगड़ो होय जीजा बाई
सेजां झगड़ो होय
थे मोटा म्हें छोटा जीजा बाई
थांकी होड़ न होय ।[१]

मृत्युगीत भी करुणाप्लावित होता है, एवं हृदय को व्यथा से भर देता है। हाड़ौती के एक गीत में यौवनमयी विधवा अपने भाग्य को कोसती हुई जीवन से त्रस्त अवश्य है—

सायब को डोलो
सायब सूं छेटी पड़ी रे
मरूं कटारी खाय
जोवण में सन्यासियो रे
नलो विधात वाय ।

उपेक्षा ही रही है, क्योंकि हास की भावना और जीवन के गांभीर्य में सहज विरोध है।[१] साहित्य-शास्त्रियों ने भी विकृत आकार, वचन-वेश-विन्यास एवं चेष्टा आदि को हास्य का उत्पादन बतलाया है।[२]

काव्य-शास्त्र के आचार्यों के अनुसार किसी व्यक्ति या वस्तु की साधारण से अनोखी (बिगड़ी हुई, भद्दी या कुरूप) आकृति—(जैसे बौने की सी), किसी की अनोखे ढंग की वेशभूषा तथा बातचीत, विचित्र प्रकार की चेष्टायें, अनोखे अलंकार आदि असंगति-पूर्ण वस्तुओं या क्रियाओं को देख कर हृदय में जो विनोद का भाव उत्पन्न होता है, वही 'हास' कहलाता है। यह 'हास' स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी से पुष्ट होकर 'हास्य रस' कहा जाता है।

इसमें केवल आलम्बन का वर्णन मात्र यथेष्ट होता है, अनुभाव आदि की योजना की आवश्यकता नहीं होती।[३]

हास्य रस का स्थायी भाव हास होता है।

आलम्बन (विभाव)—विकृत आकृति वाला व्यक्ति या पदार्थ।

उद्दीपन (विभाव)—आलम्बन की अनोखी आकृति, बातें, चेष्टाएं आदि। हास्य मण्डली, अनोखी वेशभूषा का प्रदर्शन आदि पात्र के बहिर्गत इस रस के उद्दीपन विभाव हैं।

अनुभाव (आश्रय की)—मुसकराहट, हँसी, उसके नेत्रों का मिच जाना आदि हैं।

संचारी—हर्ष, आलस्य, चपलता, उत्सुकता, अवहित्था आदि हैं।

भेद—स्मित, हसित, विहसित, अवहसित, अपहसित, अतिहसित।

हाड़ौती लोक-गीतों में जगह-जगह हास्य के छींटे देखने को मिलते हैं। इन गीतों का हास्य ग्रामीण होते हुए भी ग्राम्य नहीं है। विवाह के अवसर पर सालियों की मजाक बहनोई की कैसी दुर्गत बना देती है, यह किसी से छिपा नहीं है।

डॉ० चिन्तामणि ने हास्य के उद्रेक की तीन परिस्थितियाँ बतलाई हैं—

(१) असंगति

(२) विषमता

(३) विपरीतता[४]

असंगत आचरण करने अथवा सामान्य जीवन से विरुद्ध किसी अप्रत्याशित घटना से हास की भावना उत्पन्न होती है। हाड़ौती के एक गीत में एक ऐसी बहू का बड़ा ही स्वाभाविक चित्रण हुआ है, जो सास ससुर के व्यवहारों से परेशान भी है, और मरना भी नहीं चाहती। वह कहती है—रोऊँ कैसे ? आँख दुखती हैं। लड़ूं कैसे ? सिर दर्द कर रहा है, मैं क्या करूँ ?

म्हारा सुसराजी लड़ँ दिन रात
हिरदो म्हारो चटके
रोऊं तो दूखे आँख
लड़ूं तो माथो भड़के
कुवा में जाय पड़ूं तो जियो म्हारो घबड़ावे
म्हारा बालम कन्ने जावूं तो पाँव भड़के
म्हारा सुसरा जी लड़ँ दिन रात
हिरदो म्हारो चटके

आदर्शमयी स्त्रियों के चित्रण से यह साहित्य भरा पड़ा है, परन्तु कुल्टा स्त्रियों का कलापूर्ण चित्रण भी हाड़ौती के गीत में उपलब्ध है, इस दृष्टि से कर्कशा स्त्री का यह चित्रण कितना हास्य रसानुकूल है—

धन धन रे पुरस थारा भाग
करकसा नार भली ।
पाव आटा रा तेरा पोया सवा सेर की एक
थूं डाकी तेरे ई खायग्यो। मूं सतवंती एक

एक हाड़ौती युवक फैशनदार लड़की से शादी करके आता है। वह उससे परेशान हो गया है। खर्च इतना बढ़ गया है कि उससे संभाले भी नहीं सम्भाल पाता—

दो दो स्यालूड़ा भुलाओ भरतार
क्यूं परण्या छो फैसनदार लड़की।
छूट गई नौकरी, बिगड़ गया काम
कठा सूं लाऊं मोटर कार
वेचो वेचो जी थांका मांय र बाप
क्यूं परण्या छो फैसनदार लड़की।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यदि विचार किया जाय, तो हास की पृष्ठभूमि में प्रच्छन्न घृणा का भाव परिलक्षित होता है। "लोक प्रचलित व्यवहार के विपरीत आचरण करने वाला व्यक्ति भी विशेषतः हास्य, घृणा एवं व्यंग्य का शिकार बन जाता है। आधुनिक शृंगार प्रिय एवं सुशिक्षित नारी को रूढ़िग्रस्त महिलायें अच्छी निगाह से नहीं देखती, लोक-व्यवहार एवं मान्यता के विपरीत जाने के कारण फैशन परस्त नारी के प्रति सामान्य स्त्रियां घृणा का भाव रखती हैं", जो कि उपर्युक्त गीत में ध्वनित है।

मालवी के एक लोक-गीत में चूहा-चुहिया के आपसी झगड़े का भी सुन्दर हास्यमय दृश्य अंकित हुआ है। अनाड़ी एवं मूर्ख दम्पत्ति जिस प्रकार झगड़ कर अपने परिवार की शान्ति का हनन करते हैं, और मारपीट की नौबत तक आ जाती है, उसी तरह चूहा-दम्पत्ति भी झगड़ते हैं। पति-पत्नी में झगड़ा होने पर चूहा अपनी श्रीमती जी का दिमाग ठीक करने के लिये लकड़ी का आश्रय ग्रहण करता है, और चुहिया देवी अपने बचाव के लिये झाड़ू ग्रहण करती है।[1]

ऊंदरा ऊंदरी रे झगड़ो लागो
भारत मचियो भारी
ऊंदरे उठाई लाकड़ी अर
ऊंदरी उठाई बुवारी।

ऐसे शिष्ट, संयत, एवं सांकेतिकता से ओत-प्रोत हास्य परिष्कृत एवं स्वस्थ मस्तिष्क की ही उपज हो सकती है।

और उत्तर में गोरी निवेदन करती है—

आंबाय न भावे, म्हांने नींबूय न भावे
म्हांने सुआ पंख्या बोर मंगा दो जी
आड़ेजो विके छै म्हांके पाड़ेजी विके छै
पिया रूपिया का सेर मंगा दो जी
सासूजो के छाने, भोली वाई सा के छाने
पिया छाने छाने साद पुरा दो जी।

पुत्र होने का समय आया। गौरी के पेट में दर्द उठने लगा, वह किसे उठाये। फिर उसे पति का ख्याल आया। ओवरे में जाकर अंगूठा मरोड़ कर उन्हें जगाया। बात समझ में आने पर तो वह फूर्ती से उठ खड़ा हुआ, झटक कर पगड़ी का पेच बाँधा, और गौरी के लिये तुरन्त कमरा खाली कर दिया।

ओवरिया में ओवरो जी
जठे सूता छै सासूजी का पूत
जठे सूता छै भोली वाई सा का वीर
चिन्ता म्हारी वेई करै जी
अंगूठो मोड़ जगाविया जी
जागो जागो नींदा डुलां नाव
खाली करदो ओवरो जी
जागो जागो वाई सा का वीर
खाली करदो ओवरो जी
हँस हँस बांधी पागड़ी जी
कोई झटक संभाल्यो पेच
या लो सुन्दर, ओवरो जी
जो घर जन्मो जी डावड़ो जी
दादाजी को वंस वड़ाय
वधाई सुन्दर म्हें करां जी
थांने सूंठ का लाडू बंधाय
वधाई सुन्दर म्हें करां जी

हाड़ौती लोक-गीतों का अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि वे प्रत्येक धार्मिक अवसर पर भक्ति के प्रतीक देवताओं का पूजन करते हैं, उनमें प्रार्थनाएं की जाती हैं, तथा सुख एवं शान्ति की याचना की जाती है।

गणेश—

नाचो म्हारा गनपत नाचोगा
पगां घूँघरा वाजेगा
गनपतिया तो म्हारा नाचेगा
पगां घूँघरां वाजेगा
ऊबा ऊबा सायब लाल जी अरज करें
पांच लाडू पगां धरे।

सती माता—

अपणी सती के चंवर सौवे
अपणी सती के झावर सोवे
रखड़ी झूठणां वेग घड़ाओ वीरा जी
सायब को डोलो चंदण नीचे ऊवो
अपणी सती के हांसज सौवे
अपणी सती के वेसर सोवे
मोतीड़ा डुलरी पाट पुवाओ वीरा जी।

इन्दरगढ़ की माता—

अवला थां के भंवर इन्दरगढ़ का
अवला थां के झालज इन्दरगढ़ का
ए बीजासन इन्दरगढ़ का
ए जातारण इन्दरगढ़ का
अब तुम रमाझमा तुम्हारी माई जी
अब तुम घणी खमां म्हारी माई जी
ए बीजासन इन्दरगढ़ का
ए जातारण इन्दरगढ़ का।

वालाजी—

चांदणी सी रात छिटक रया तारा
वाला जी खड़ा मोहन जी की ड्योढ्यां
कांई कांई अरज करो री बजरंग से
सोट लंगोट वाला लागे छै प्यारा
रोट को भोग लागे छै प्यारा।

भैरूंजी—

राय चन्दन को भैरूंजी रूंख कटाटूं
कोई बैठर घड़ा दूं, कंवर जी को पालनो
खाती को बेटो जी भैरूंजी घणो जी अयोनो
कोई परतन घड़ियो कंवर जी को पालनो
कासी का वासी म्हारी अरज सुणो
मतवाला भैरूं म्हारी अरज सुणो
कास खंजरो, ऊन तेजरो, दुखदायी दर दूरा कर दीजो
मतवाला भैरूं म्हारी अरज सुणो
कासी का वासी म्हारी अरज सुणो।

हनुमानजी—

बजरंगी जी मनस्या पूरण करो हनुमान जती
सास बहुओं का, और छोटी लाड्यां का
चुड़ला अमर करो हनुमान जती
वांके चुड़ले चुन्दर, वाके दूद पूत
वांके राज पाट रक्षा करो हनुमान जती।

गणेशजी—

थे भरी सभा में आओ श्याम गणपत देवा
ताती जलेबी दूधन का लाडू
तुम जीमो रे म्हारा गणपत देवा
सोना की झारी, गंगाजल पांणी
तुम पीओ रे म्हारा गणपत देवा।

रामचन्द्र—

चाल सख्याओ आपन राम जी के चालां
वा घर लेखो लेगा ओ राम
भोजन तो सीता घी का धरियो
हाथ पलाये भोजन जीमण को
चाल सख्याओ आपन राम जी के चालां
वा घर लेखो लेगा ओ राम।

श्री कृष्ण—

गेंद खेल कन्हैया जी जमना के तीर
कांई का तो हरि गेंद बणाया
कांई का डंडा बणाया रघुवीर
सोना का हरि गेंद बणाया
रूपा का डंडा बणाया रघुवीर।

रुक्मणी हरण—

मन मोहन के देस ब्राह्मण लेजा र पाती
सवा क्रोड़ को दूंगी र मूंदड़ो
घूंमकड़ा हाथी द्वारका में लेजा रे पाती
वा व्रजवासी सूँ यूँ जार कीजे
थांकी दासी दुख पाती
द्वारका लेजा रे पाती

गंगा—

माता जी का वागा काना कहाँ मेली
मूं तो गंगा जी में धरम कर आयो
यसोदा माता छोटी सी उमर में गंग नहायो
मूँ पुण लाभ कमायो म्हारी माता
गंगाजी में धरम कर आयो

देव जी—

धणी म्हारा भंवर फेरी सीता वाड़ी में आज्यो
झालज फेरो तो सीता वाड़ी में आज्यो
स्यालू ओढ़ो तो सीता वाड़ी में आज्यो
सीता वाड़ी में आज्यो, लींबू नारंगी खाज्यो
लीमू नारंगी लाज्यो तो हरिया डुपटा में जाज्यो
धणी म्हारा भंवर फेरी सीता वाड़ी में आज्यो

समग्र हाड़ौती सस्कृति धार्मिकता से परिप्लावित है। "ज्ञान, विद्या और युग की वैभवमयी संस्कृति से वंचित एवं तिरस्कृत जनता के लिये लोकगीतों के भाव भजन ही आत्मतोष प्रदान करने के लिये पर्याप्त हैं।"[१]

गीतों में रंग वैचित्र्य—

लाल, हरित, श्वेत, पीत, श्याम आदि रंग इसी प्रकार के हैं, और जो लोक-गीतों की चुन्दड़ी में जगह-जगह पर मुक्तावत् जड़कर अपना अनोखी छटा से मानव-मात्र को आकर्षित कर रहे हैं।

सौन्दर्य एवं रंग—

हाड़ौती लोक-गीतों में रंगों का उल्लेख प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में हुआ है। कंसूवल चूंदड़, लाल एवं हरियो पोमचो आदि का प्रत्यक्ष वर्णन है तो इन्द्रधनुष के रंग, वृक्षों की हरितिमा, सरिताओं का फेनिल जल, पक्षियों के विविध रूप रंग आदि अव्यक्त प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

"सौन्दर्य हमारे सजग मानस में निर्माण होने वाले विभिन्न वस्तु तत्वों का एकीकरण है।"[1] इस दृष्टि से देखने पर अप्रत्यक्ष शब्द योजना भी उक्त एकीकरण में योग प्रदान करती है। चित्रकार की रेखायें जहाँ किसी वस्तु को आकार प्रदान करती हैं, वहां रंग उस वस्तु के आन्तरिक सौन्दर्य को उभार देते हैं। इसी प्रकार लोक-गीत भी किसी के वर्णन के अंतस्तल में घुस कर उसकी थाह पा लेते हैं। लोकगीतों में भी हरे पेड़, नीले आसमान, लाल सूरज आदि का प्रचुर उल्लेख है। लोकगीतों के रंग स्थिर हैं, गत्यात्मकता का उनमें अभाव है, जिसके फलस्वरूप वे अपनी सौन्दर्यानुभूति की अमिट छाप सदैव के लिए छोड़ देते हैं।

हाड़ौती लोक-गीतों के स्थायी रंगों में लाल रंग का सर्वाधिक वर्णन है। यों लाल के अन्य भेदों में गुलाबी, नाखूनी, मजीठी, महावरी, मेंहदिया, सिन्दूरी, राता, हिंगलू आदि वस्तु परक रंग भी हैं, मगर भोले-भाले सरल लोक-काव्यकारों ने इन सबका प्रयोग लाल रंग के अन्तर्गत ही समाहित कर लिया है। श्री श्याम परमार इस रंग के बारे में विवेचन करते हुए कहते हैं—

"लाल रंग अन्य सभी रंगों की अपेक्षा सभ्य, किंवा असभ्य सभी जातियों में विशेष प्रिय है, सभी युगों में यह पसन्द किया जाता रहा है क्योंकि यह चटकीला, प्रेरणादायी एवं उत्तेजक है, और वृद्ध, बालक, युवक, वनचर, नागरिक आदि सभी प्रकार के, सभी आयु के व्यक्तियों के लिये स्वाभावानुकूल है। लाल वस्त्रों से पशुओं को उत्तेजित किया जाता है, लाल रंग बली का द्योतक है, किन्हीं अंशों में रक्त से सादृश्य होने के कारण यह मानव की मूल वृत्तियों को तत्काल प्रभावित करता है।"[2]

हाड़ौती-नारी सुन्दर पुत्र-जन्म के अवसर पर लाल पलंग पर सोती

---

(१) भारतीय लोक-साहित्य—श्याम परमार—पृष्ठ ८४

(२) भारतीय लोक-साहित्य—श्याम परमार—पृष्ठ ८७

है।[1] वह गोरी है, सुन्दर है, उसके हिंगलू वर्ण के ओठ हैं।[2] लाल जीभ है[3] उसके सायब के पचरंगी पाग है,[4] वह सेहरे में चार रंगों के फूल मंगाती है।[5]

ससुराल में जाने पर बड़ी साली जंवाई से कहती है— आप और किसी भी रंग का साफा बाँध लीजिये किन्तु बंधेज के पीले[6] लहरिये का साफा मत बाँधिये, क्योंकि इसके बाँधने से आपका सिर दुखने लगेगा।

लाडला नणदोई भी तो ससुराल जाते समय केसरिया रंग के कपड़े सिलवाता है,[7] केसरिया पटोली सिलवा कर ले जाता है।[8]

विदेश प्रवास के समय दुखी गोरी मेंहदी रचावे भी तो कैसे? उसका लाल रंग उसे बिच्छू के डंक सा लगता है,[9] उसके सिन्दूरी मांग भरते समय आँसू आ जाते हैं।[10]

हरा—

"हरा प्रकृति का अपना रंग है, जो पीत और नील के सम्मिश्रण से बनता है। पीताम्बर कृष्ण के उत्तरीय के रूप में भारतीय गीतों का प्रिय वस्त्र है। पीत रंग सूर्य प्रकाश की तासीर वाला है, और नील ठंडक की आभा रखता है। अतः हरे रंग में दोनों का समावेश है।[11]

---

(१) लाल पलंग पर गैरी पीड़ा आवे,
गैरी पीड़ा आवे, गुलाबी पीड़ा आवे

(२) सुसरा जी, सासूजी दाजे, म्हारा हिंगळू वरणा होट

(३) कमान्या म्हारा दांत, म्हारा लाल वदन की जीभ

(४) म्हारे सायब जी रे पचरंगी पाग, चिन्ता म्हारी वेई करेजी

(५) सेहरा में चार रंग लावजो ए मालणी
चम्पा, चमेली, मरवो, मोगरो ए मालणी
और गुल डार री रा फूल फूला मालणी
सेहरा में चार रंग लावजो ए मालणी

(६) जंवाई जी थे तो सब रंग बाँधो जी
बंदेज लहरिया तो मत बांध जो जी
पीलो लहेरियो बाँधोगा, तो दूखे रज रो सीस
बाई रो पीतो आकरो जी

(७) पटोली सिवाय री म्हारा प्यारा नणदोई सा
केसरियां रंगावे री म्हारा लाडला नणदोई सा

(८) पटोली सिवावे जी बाई सा थां का वीर, बन्जे छै प्यारा नणदोई
केसरिया रंगावे जी बाई सा का वीर, बन्जे छै प्यारा नणदोई

(९) मेंदल्ड़ी तो म्हानूं देखी ना जाय, वीछू रो काटयोड़ो जा न लागे जी

(१०) मांग सिन्दूरी झलके आँख्यां जी

(११) भारतीय लोक-साहित्य—श्याम परमार—पृ० ८६

श्री कृष्णजी का हरा पीताम्बर है, वे शोभित हो रहे हैं।[१] हाड़ौती नायिका के साज का भी हरा पोमचा है[२], सुआ पंखी वस्तुतः हरा रंग ही है, जो सुआ (तोता) के पंखों की रंगत का द्योतक है। उसके स्वयं के सुआ पंखी साल्रू है।[३] उसकी शादी के समय भी तो हरे-हरे बांसों का स्तम्भ बनवाया था।

स्थानीय रंग—

हाड़ौती लोक-गीतों में स्थानीय रंगों का भी प्रयोग हुआ है। 'रंगील्या' और 'सुरंगा' शब्द हाड़ौती लोकगीतों में कई जगह प्रयुक्त हुआ है, जो श्रेष्ठता का द्योतक है। 'सुरंग रित' में ऋतु की समस्त छटाओं का समग्र समावेश है तो 'रङ्गीला सायब' वह प्रियतम है, जो शौकीन, मीठे स्वभाव का, हँसमुख और बातचीत में चतुर हो। कस्तूरी रंग की बानर माल्, पचरंगी पाग, उजल्री चूड़ल्री, चंदावरणी तथा चम्पावरणी गौरड़ी का सर्वत्र उल्लेख हुआ है, जो कि स्थानीय विशेषताओं को प्रदर्शित करते हैं।

रंगाभास—

हाड़ौती-गीतों में कई जगह रंगाभास भी हो गया है, 'सोले सिणगार' (सोलह शृंगार) सहज ही अनेक रंगों का आभास दे देता है। स्वर्ण या कंचन सोने तथा रजत खेत की आभा देते हैं।[४]

हाड़ौती के एक गीत में दशरथ सोने के खड़ाऊ पहिन कर बेल के नीचे खड़े हैं, जिसके पत्ते भी कञ्चन के हैं।[५]

इस प्रकार पीपल के पत्ते से नायिका के पांव की चिकनाहट, नींबू की फांक से आँखें, सुए के रंग से गोरी का रंग, तोते की चोंच जैसी गोरी की नासिका, वासुकि नाग सी वेणी, चाँदणी सा चेहरा, तथा दूध के उफान सा उसके यौवन का अंकन हुआ है तथा उसके सुगठित एवं स्वास्थ्य युक्त शरीर का आभास जमे हुए दही से किया है।[६]

---

(१) श्री किसनजी हरिया पेरया पीताम्बर-राधा रुक्मण हरख रई
(२) "सायब जी रो हरियो पोमचो"
(३) सुआ पंखी सालूड़ो थें लाज्यो म्हारा सायब जी
(४) सोना वरणो वाटको जी
(५) राजा दशरथजी रे सोने रा खड़ाऊ, ऊँचा कँचण पात डाल हेटे म्हारा राम।
(६) पगल्यां पीपल सा, आंख्यां नींबूड़े री फांक
वैणी तो जांणे बास नाग सी ओ
नाक तो बाई रो सुए री चूंच
जोबन तो दूध उफाण सो ओ
दंई तो बाई जाणे जम्मो जम्मो दई
चेरो तो जांणे छिटकी चांदणी जी राज

रूढ़ रंग—

कई रूढ़ रंगों का भी प्रयोग हुआ है, जैसे पंचरंगी चुनरी, पंचरंगी पाग, सोना की थाली, पोलियों का चौक, दखणीरां चीर, लीलोवोड़ो रेसम डोर, काली कोयल, हरया मूंगा की वाल, दाड़मंदात आदि प्रयोग सादृश्य रंगतों को व्यक्त करते हैं, हाड़ौती गीतों में ऐसी कई रूढ़ रंगतों के द्योतक उपकरणों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है।

रंगवैचित्र्यता की दृष्टि से हाड़ौती गीत निस्सन्देह धनी हैं, समर्थ हैं, समृद्ध हैं।

हाड़ौती लोकगीतों में वाग्विदग्धता एवं प्रतीकात्मकता

मनुष्य समझ आने के बाद चतुरता के क्षेत्र में कदम रखने लगता है। वह जैसे-जैसे सभ्य होता जाता है, उसकी बातचीत में चातुर्यता, भावनाओं में प्रतीकात्मकता एवं दृष्टि में भंगिमा स्वतः ही आने लगती है। स्पष्टतः किसी की भावना को चोट न पहुंचे, और स्वयं की अर्थ-सिद्धि भी हो जाय, यह वाग्विदग्धता की प्रथम निशानी है। वह स्वयं खुलकर बात नहीं कहता, वह यह भी नहीं चाहता, कि स्पष्ट शब्दों में उसकी भावनाओं को ठेस पहुँचे, प्रत्युत वह प्रतीकों के माध्यम से, सांकेतिकता से, एवं अन्य क्रिया-कलापों से वह ऐसा उत्तर देता है कि सामने वाला तिलमिलाकर रह जाता है, उसके मुँह से उफ तक नहीं निकल पाती।

हाड़ौती लोक-नारी चतुर है, वह बात करने में प्रवीण है, ऐसा अचूक एवं सार्थक उत्तर देती है कि सामने वाला मुँह ताकता ही रह जाता है।

पति विदेश गमन को प्रस्तुत हैं, उसकी आंखें अश्रुक रही हैं, हृदय तड़फ रहा है, वह चातुर्यता का सहारा लेती है, कहती है—

अबकी तो ढोला मारू जेठ जी ने मेल
अबकी तो ऊनाले घर में रेवो म्हारा राज

मगर वह कैसे कहे अपने बड़े भाई से ? सिर्फ शब्दों की ओट लेती है, दोषारोपण बड़ी भौजाई पर डाल कर चुप रह जाना चाहती है—

जेठ जी री कलागारी नार
नित ऊठे ने झगड़ो मोलसी ···

मगर वह चूकने वाली कब थी, वह कहती है—

सीलड़ली ढोला दीदी नहीं जाय
छाती तो मरी जे हिवड़ो ऊब के जी राज।

सुझाती है जिससे पैसे भी मिल जायेंगे और परदेस भी नहीं जाना पड़ेगा। वह कहती है—

चरख्यो ले लूं एक भंवर जी
पीढ़ो लाल गुलाल
म्हारे म्हारे री कातूं ढ़ोला कूकड़ो जी
हांजी ढ़ोला रोक रुपैये रो तार
मैं कातूंला थे विणजत्यो जी....

मगर हाड़ौती पुरुष कायर नहीं है, वह नहीं चाहता कि घर बैठे स्त्री का कमाया खाय, पर गौरी फिर उसे फुसलाती है—

जोबन सका न भंवर जी थिर रहे जी
रसिया फिरकी घिरती छाँव
ऊजड़ खेड़ा फिर वसे जी ढ़ोला
निरधनियाँ धन होय
जोबन गयो न आवड़े जी, म्हारा राज

आखिर पति के न मानने पर वह साथ चलने की हठ पकड़ती है, पति उसे परदेस की तकलीफों एवं जगह की तंगाई के बारे में समझाता है, वह फिर वाक् चातुर्य का आश्रय लेती है—कहती है—

पानां रे सरीसी थारे मुखड़े रे मांय
लूंगा ने सरीसी थांरी धण चरचरी जी
राज ढ़ोला राखनोनी थांरे मुखड़े रे मांय।

प्रियतम ! मुझे साथ ही ले चलो तो क्या बुरा है ? मेरे साथ रहने से तुम्हें कोई तकलीफ तो होगी नहीं। अरे मैं तो पान जैसा रंग देने वाली हूँ, मुझे तो तुम बीड़े में डालकर ले जा सकते हो। अरे ! मैं तो लौंग जैसी चरपरी हूँ, चाहो तो तुम मुझे मुंह में डाल कर साथ ले जा सकते हो।

स्वयं की लौंग और इलायची से उपमा देना गौरी की वाग्विदग्धता का श्रेष्ठ उदाहरण है।

हाड़ौती लोक-गीतों में प्रतीकों का प्रयोग भी काफी हुआ है। एक नायिका बावड़ी के शान्त जल की हिलोर देख तरंगों से रति-क्रीड़ा का संकेत देती है—

रतन कूवो मुख सांकड़ो जी ढोला
लाम्बी लागै डोर
एक झकोरो दे रे बटाऊ
जोबन लूटे चोर

यौन क्रिया के लिये भूमि, बीज एवं कृषि कर्म का उल्लेख किया है।[1]

(१) मोती बोयां लाल उपजसी, चावे ज्यूँ ई बोय।
बटाऊ छाने थूँ मत जोय।

यौवन को पीने का संकेत रस पीने से किया है।[1] वस्तुतः सभ्य समाज में वास्तः उपेक्षित किन्तु वैज्ञानिक अध्ययन के लिये आवश्यक प्रतीक परम्परा की प्रवृत्ति तथा जनन सम्बन्धी संकेत वैदिक साहित्य में भी उपलब्ध होते हैं।[2] मनु ने तो स्पष्ट रूप से नारी को बीजवपन के योग्य भूमि एवं पुरुष को बीज कहा है।[3] पक्षियों के प्रतीक से भी प्रेमिका को व्यक्त किया गया है।[4] पूर्णयौवन के लिये सरोवर का प्रतीक है,[5] कन्या के लिए वन की चिड़िया एवं कोयल का प्रतीक दिया है।[6]

इन प्रतीकों के द्वारा भावों की मार्मिक अभिव्यक्ति के साथ ही अनुभूतियों की तीव्रता एवं गहराई का वर्णन समास-शैली में पूर्ण होने के कारण लोक-जीवन की अभिव्यक्ति को कलात्मक बना देता है।[7]

हाड़ौती लोक-गीतों में व्यंग्य—

सभ्य मानव का सर्वाधिक सफल अस्त्र यदि कोई है तो वह है शिष्ट व्यंग्य, जो कि उसकी निर्लज्जता, एवं उसकी वाद्-क्षीणता को अपनी ओट में छिपा देता है।

हाड़ौती लोक-गीतों में व्यंग्य का काफी प्रयोग हुआ है—एक गीत में लम्बी बहू के प्रति अच्छा व्यंग्य बन सका है—

थारे तड़ा सरीखी नार—बालम छोटो सो।
घोड़ी हाँस हिण हिण हींच—बालम छोटो सो।

अरे छोटे ठाकुर! तू धन्य है!! तेरे लम्बी लकड़ी सी घर पर नारी है, तुझे बधाई है। तुझे घोड़ी लेने की जरूरत भी क्या है, तेरे तो घर पर घोड़ी हाँस ही रही है।

भोजाई और नणदल में वैर विरोध चलता ही रहता है। एक गीत में भोजाई का नणद के प्रति-किया गया चुटीला व्यंग्य देखिये—

लाडू म्हारा सुसराजी पेड़ा देवर जेठ।
घेवर घर रो सायबो जी नणदल खारी सेव।

इसी प्रकार नणद की भी भावज के प्रति उक्ति है—

वीरो मन्दिर रो देवरो रे
भावज सेरया कूतरी
वीरो म्हारो सेरया में को बैल
भावज पांणी मांयली डेड़की थी

एक गीत में ससुर के प्रति भी उक्ति मिलती है—

सुसरो डाकी जीमण बैठ्यो
नहीं परीण्डे पांणी जी
सुसरो वेरी वागड़ गाड़ी
बागर को म्हाने कांटो लाग्यो
कांटा सूं म्हाने आंसू आया,
सास तो दुलारी
जाणे कूतरी भुसै

देवर के प्रति प्रेम एवं सहज आकर्षण की जो भावना जन समाज में विद्यमान है, वह जेठजी के लिये कदापि संभव नहीं है। एकाध स्थल पर जेठजी के प्रति सद्भावना भले ही प्रकट की गई हो[1] परन्तु जेठजी की रसिकता एवं दुष्ट आचरण पर लोकगीतों में व्यंग्य ही किये हैं।[2] देवर के साथ छेड़-छाड़ एवं हास्य तो शोभा देता है, परन्तु जेठजी के प्रति वह शर्म के मारे बोल भी नहीं पाती—रसिक जेठ के प्रति कहीं-कहीं तो उसने तीखे वाण मारे हैं[3] और एक बार तो यहाँ तक नौबत आ पहुँची है कि जेठ जी की कुदृष्टि पड़ने पर रसोई बनाते हुए भी उसकी अच्छी भली मरम्मत कर दी है।[4]

लोकगीतों का सांगोपांग अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि इनमें यथार्थ जीवन का प्रतिबिम्ब है, यह वास्तविक स्थिति के परिचायक हैं, कटुक्तियों एवं व्यंग्य वाणों के तरकस हैं, साथ ही शिष्ट हास्य के सजीव चित्रण हैं। एक ओर जहाँ ये मानव की आदिकालीन स्थिति से आज तक की विकास सीढ़ी के दिग्दर्शक हैं, तो दूसरी ओर समाज का दम्भ, छल, मनोविज्ञान और नैतिकता पर क्षण भर रूक कर सोचने के लिये बाध्य कर देते हैं।



---

(१) जेठ जी म्हारा वागां मायला चम्पा—

(२) आई आई सासरिया री सीम
गाड़ी में जेठे मुलकी बोलिया जी राज
देखो ओ बीनणी थें ओ नवरंगी चोर,
देखो थें चम्पावरणी चूनड़ी जी राज
थें ई तो जेठां म्हारी सायब 'रा बीर,
जेठाणी मोकल चम्पा चूनड़ी जी राज

(३) ओ जी जेठ दुफांरा क्यूं आया, थांरे आयो नी कई दुफारो
ओ जी अठे नहीं है छोरयां छोटीं, जेठ जलेबी क्यूं ल्याया।
ओ जी जेठ मिठाई क्यूं लाया।

(४) वाड़ी मांयला बेंगण छमाया, लूण मिरच नी चाख्या
रोटी पोतां जोवण निरख्यो, अबे देखे तो कड़छी की
फेर बोले को भख्या की, मारू मुखा के थाली की

षष्टम् प्रकरण

हाड़ौती लोक-गीत—कलापक्ष

इसी प्रकार नणद की भी भावज के प्रति उक्ति है—

वीरो मन्दिर रो देवरो रे
भावज सेरया कूतरी
वीरो म्हारो सेरया में को बैल
भावज पांणी मांयली डेड़की थी

एक गीत में ससुर के प्रति भी उक्ति मिलती है—

सुसरो डाकी जीमण बैठ्यो
नहीं परीण्डे पांणी जी
सुसरो बैरी बागड़ गाड़ी
बागर को म्हाने कांटो लाग्यो
कांटा सूँ म्हाने आंसू आया,
सास तो दुलारी
जाणे कूतरी भुसै

देवर के प्रति प्रेम एवं सहज आकर्षण की जो भावना जन समाज में विद्यमान है, वह जेठजी के लिये कदापि संभव नहीं है। एकाध स्थल पर जेठजी के प्रति सद्भावना भले ही प्रकट की गई हो[1] परन्तु जेठजी की रसिकता एवं दुष्ट आचरण पर लोकगीतों में व्यंग्य ही किये हैं।[2] देवर के साथ छेड़-छाड़ एवं हास्य तो शोभा देता है, परन्तु जेठजी के प्रति वह शर्म के मारे बोल भी नहीं पाती—रसिक जेठ के प्रति कहीं-कहीं तो उसने तीखे बाण मारे हैं[3] और एक बार तो यहाँ तक नौबत आ पहुँची है कि जेठ जी की कुदृष्टि पड़ने पर रसोई बनाते हुए भी उसकी अच्छी भली मरम्मत कर दी है।[4]

लोकगीतों का सांगोपांग अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि इनमें यथार्थ जीवन का प्रतिबिम्ब है, यह वास्तविक स्थिति के परिचायक हैं, कटुक्तियों एवं व्यंग्य बाणों के तरकस हैं, साथ ही शिष्ट हास्य के सजीव चित्रण हैं। एक ओर जहाँ ये मानव की आदिकालीन स्थिति से आज तक की विकास सीढ़ी के दिग्दर्शक हैं, तो दूसरी ओर समाज का दम्भ, छल, मनोविज्ञान और नैतिकता पर क्षण भर रुक कर सोचने के लिये बाध्य कर देते हैं।

◎

---

(१) जेठ जी म्हारा बागां मायला चम्पा—

(२) आई आई सासरिया री सीम
गाड़ी में जेठे मुलकी बोलिया जी राज
देखो ओ बीनणी थें ओ नवरंगी चोर,
देखो थें चम्पावरणी चूनड़ी जी राज
थें ई तो जेठां म्हारी सायब रा बीर,
जेठाणी मोकल चम्पा चूनड़ी जी राज

(३) ओ जी जेठ दुफांरा क्यूँ आया, थांरे आयो नी कई दुफारो
ओ जी अठे नहीं है छोरयां छोटीं, जेठ जलेबी क्यूँ ल्याया
ओ जी जेठ मिठाई क्यूँ लाया।

(४) बाड़ी मांयला बैंगण छमाया, लूण मिरच नी चाख्या
रोटी पोतां जोवण निरख्यो, अबे देखे तो कड़छी की
फेर नोले को [illegible] की [illegible]

षष्टम् प्रकरण

हाड़ौती लोक-गीत—कलापक्ष

महादेव कैलाश पधारया
पारबती जी के सोच हुयो
रूण्डमाल काहे के पेरी

× ×

शंकर गौरां दौन्यूं मिल के
महाबनो में गया एकन्त
तीन ताल शिवजी फटकारी
उड़ग्या सारा जीव र जन्त
शंकर कहे तूं सुन री गौरां
राम नाम तो जीव र जन्त
अंडो फूट सुवो होय बैठ्यो
शिव जी सूं हुकारो दिया
शंकर कहे तूं सुन री गौरां
यो हुंकारो कुण ने दियो
पारबती के मन्ने खबर नीं
मूं हुंकारो नहीं दियो
ले त्रिशूल तलास करी जब
सूवा होकर भाग गया ।
तीन लोक फिर आयो सूवा
कोई न कं न इ ऊं न वास दियो

और प्रवन्ध कथा द्रुतगति से विना विराम किये चलती जाती है—

वेद व्यास जी की नार लसपणी
ऊं के री घर में जाय घुस्यो
"सुणो सुणो व्यास जी बात हमारी
चोर हमारो कहाँ घुस्यो"

यहां यदि चाहते तो शंकर और वेद व्यास की धर्मपत्नी की वार्ता को तीन चार पन्नों में भरा जा सकता था, परन्तु कथा की तीव्रता लक्षणीय है। महादेव पूछ रहे हैं—"व्यासणजी चोर कहाँ है ?"

उत्तर मिलता है—"मुझे क्या पता ? मैंने नहीं देखा"—

इन्दर को इन्दरासण कांप्यो
कृष्ण बिराजे सहसासण ।
अस्यो भक्त कोण हुश्रो म्हारो
कांप उठ्यो री इन्द्रासण ।
गरूड़देव ने पूछ जो फेरी
सुकदेव जी ने जनम लियो ।

और यहाँ संसार एवं वैराग्य का प्रश्नोत्तर कितने नपे-तुले शब्दों में व्यंजित हुआ है—

ऊभा रहो पुत्र ! मावड़ा रहो तुम
खड़े खड़े तुम करलो ज्वाव
उलट सुकदेव जी ने ज्वाव किया
किसकी मां और किसके वाप ?
मरण जीवण का कोई न साथी
मोह माया का फंदा रे
हरे राम कहो हरे कृष्ण कहो
हरे कृष्ण कहो हरे ! हरे !!

हाड़ौती लोकगीतों की यह विशेषता है कि इनमें भरती के शब्द नहीं हैं। केवल नपे-तुले शब्दों में गहरा अर्थ व्यंजित कर देने की अपूर्व क्षमता है।

२ शब्द-विन्यास की सादगी—

हाड़ौती लोक-गीतों की यह प्रमुख विशेषता है कि इनका शब्द-चयन, इनका वाक्य-विन्यास, इनकी कारयित्री प्रतिभा—सभी में स्वाभाविकता है। एक सहज प्रवाह है जो अन्तर को झकझोर कर उसमें रम जाता है। उसमें सूर के दृष्टिकूट पदों की तरह बौद्धिक चमत्कार न होकर मीरां की सी सहज तन्मयता एवं स्वाभाविक प्रवाह है। इन लोक-गीतों में जो कुछ भी वर्णन किया गया है वह सहज, नैसर्गिक एवं आकर्षक है। किसी विरहिणी को बार-बार प्रिय याद आना स्वाभाविक है। वह कह उठती है, आप मुझे भूल न जायं, घोड़े पर चढ़ते समय तो मुझे याद कर लेना, मैं रोज आपको सुस्वादु भोजन कराती थी, पास बैठकर पंखा झलती थी, भोजन करते समय तो मुझे याद कर ही लेना—

म्हारी बांकड़ली मूंछ्यां का सिरदार
थांकी ओलूड़ी सतावे ओ राज।
घुड़ला चढ़ता चतारजी
म्हांने गेला में करज्यो याद
कांसो जीमता चतारजी,
म्हांने थाली में कर लीजो याद।
महलां में चढ़ता चतार जी
म्हांने सेजां में कर लीजो याद।
थांकी ओलू ढोलू म्हं करां जी
म्हां की करे न कोय।
ईं ओलू के कारणे जी ढोला,
झर झर पंजर होय।

"प्रियतम ! ऐसा भी क्या रूठना। मैं तो आपकी याद में प्रिय, पिंजर होरही हूं, देह पर मात्र हड्डियां बची हैं, और आप ऐसे निष्ठुर हैं कि मुझे याद ही नहीं करते।"

कितनी स्वाभाविकता, विरहिणी के कथन में कितना दर्द एवं कितनी हृदयोद्रेकता भरी पड़ी है उपर्युक्त पंक्तियों में, स्पष्ट करने की बात नहीं।

एक दूसरे गीत में सास अपनी सुलक्षणा पुत्र-वधू से पूछ रही है कि "बहू ! सूनी सेजां में गहने क्यों पहिन रही हो, कोई खास कारण है क्या ? इस प्रकार करना ठीक नहीं लग रहा है।"

बहू उत्तर दे रही है, "मेरी सास ! आज आपके लाड़ले पुत्र आने वाले हैं, ढलती रात को उनका घोड़ा द्वार पर हिनहिनायेगा।" उपर्युक्त भावों को लोक-गीत ने कितनी सूक्ष्मता से वहन किया है, द्रष्टव्य है—

बहू सूनी सेजां में अनवट क्यूं पेरिया जी,
थारा धणी गया छे परदेश
बहू को हेरो कूण लेवो जी।
थारा रायवर गया है परदेश
लाडू को हेरो कूण लेवे जी
सासू ऊबा तो रीज्यो चन्दण चौक में जी
सासू ऊबा तो रीज्यो आंगणे जी।
म्हारा रायवर आवेला ढलती रात
म्हारा कसूंवर आवेला आधी रात
बहू को हेरो खुद लेवे जी।

एक अन्य गीत में प्रिया अपने पति से गहने घड़ाने के लिये प्रार्थना कर रही है। प्रियतम ! सुरंगी तीज का त्यौहार आ गया है, घर-घर झूले पड़ गये हैं। रात दूबों से नहा गई है और पनघट पर मेरी सहेलियाँ मुझ से छेड़खानी कर रही हैं, आप पधारते क्यों नहीं। ठीक तीज के त्यौहार पर घर अवश्य आ जाना, ऐसा न हो कि सहेलियों के सम्मुख मुझे नीचा देखना पड़े और हाँ ! कृपा कर मेरे गले का हार तो लेते आना, हाथ का चुड़ला तो लेते आना—

माथा ने भंवर घड़ावज्यो जी ढोला,
रखड़ी रतन जड़ाय
मुखड़ा ने बेसर लाव जो जी ढोला,
मोतीड़ा रतन जड़ाय
ढोला साहिब, तीजां को बड़ो छे त्यौहार,
हाथां में चुड़लो लावज्यो जी ढोला
पायल घुंघरू दिराय
तीज सुण्यां घर आवज्यो जी ढोला।

आगे वह कहती है, प्रियतम, आप और मैं तो दो देह एक प्राण हैं, आप आयेंगे तो खीर बनाऊंगी, मीठी लापसी से संतुष्ट करूंगी—

थांको तो म्हांको जीवड़ो एक छं ढोला
साहब जी ज्यों चकरी में डोर
आवो तो ढोला रांधू लापसी जी
ढोला वेसी तो रावू मीठी खीर
तीज सुण्यां घर आवज्यो जी।

एक अन्य गीत में पत्नी अपने पति से शिकायत करती है—ढोला ! आपकी हवेली तो ऊँची बहुत है। मुझे पत्थर की ठोकर लग गई, कांटा चुभ गया, ऐसी भी निगोड़ी क्या हवेली ?

म्हां क भाटा की ठोकर
गौरेया रो कांटो
लाग्यो सा बना
ऊँची हवेली सोहे थांकी जी ढोला
पगथ्या गोल मटोल
पगथ्या चढ़ती थक गई जी ढोला
ऊवी बीच मंझोल
हाथ पकड़ज्यो साहबा जी····।

इस प्रकार इन गीतों के अध्ययन से पता चलता है कि इनमें सहजता, सरलता एवं प्रवाह है जो इनकी सबसे बड़ी विशेषता है जिसके कारण युगों-युगों से मानव कंठों में रमते आये हैं।

व्यापक मर्मस्पर्शिता—

हाड़ौती लोकगीतों में एक गीत है "भेरूँजी" जो कि सहज ही मन को स्पर्श कर लेता है। हाड़ौती जन-समाज में किसी स्त्रीका महत्त्व तभी आंका जा सकता है जब वह परिवार-वृद्धि करे, इसलिये वन्ध्या स्त्री का सम्मान हाड़ौती जन-समाज में विशेष नहीं होता।

अतः वन्ध्या स्त्री पुत्र-प्राप्ति के लिये तरह-तरह के उपाय करती है, वह हनुमान जी को गुड़ व गेहूं का रोट चढ़ाती है, सिन्दूर से उन्हें टीका लगाती है। भेरूंजी से प्रार्थना करती है, अनेक व्रत एवं विधि-विधानों को सम्पादित करती है जिससे उसकी सूनी गोद भर जाय।

इन गीतों में वन्ध्या स्त्री का बड़ा ही सजीव चित्रण मिलता है। पुत्र के बिना उसकी अधीरता, व्याकुलता, आतुरता एवं दीनता, जो इन गीतों में चित्रित है, सचमुच करुणाजनक है।

मर्मस्पर्शी गीत यह हैं—

काशी का वासी म्हारी अरज सुणो
मतवाला भेरूँ म्हारी अरज सुणो

कास खेजरो ऊन तेजरो
दुखदायी दर दूरा कर दीजो
मतवाला भैंरू म्हारी अरज सुणो
काशी का वासी म्हारी अरज सुणों
सासू नणंदा ने म्हारी रस भरदो
म्हारा पिड पातरिया ने बस करदो
दौराणी, जठ्याणी म्हारी रस भरदो
छोटो सो जडूलों म्हारी गौद्या भरदो
काशी का वासी म्हारी अरज सुणो
मतवाला भैंरू म्हारी अरज सुणो ।

काशी के निवासी भैंरू जी ! मेरी प्रार्थना सुनिये ! मतवाले भैंरू जी मेरी विनती सुनिये । जिस प्रकार खेजड़े के वृक्ष को दुःख होता है, उसी प्रकार मैं दुखी हूं । मतवाले भैंरूजी मेरी प्रार्थना सुनिये । काशी के निवासी मेरी विनती सुनिये । मेरी गोद में एक शिशु दे दो, ताकि मेरे पतिदेव मेरे वश में हो जायें, और सासू नणद की बोली में रस आ जाय । काशी के वासी भैंरू जी ! मेरी प्रार्थना सुनिये । मतवाले भैंरू मेरी विनती सुनिये ।

इसी प्रकार एक अन्य गीत में एक स्त्री हनुमान जी से प्रार्थना कर रही है । पुत्र प्राप्ति के साथ-साथ वह अपने पुत्रों एवं बहुओं के सौभाग्य को भी माँग रही है ।

बजरंग बाला जी, मनसा पूर्ण करो हनुमान जती ।
मनसा पूरण करो हनुमान जती ।
बजरंग बाला जी कारज सिद्द करो हनुमान जती ।
सास बहुओं का और छोटी लाडयां का
चुड़ला अमर करो हनुमान जती
वाके चुड़ले चुन्दर, वाके दूध पूत
वाके राज पाट रकस्या करो हनुमान जती ।

मर्मस्पर्शिता उसी गीत में मिलेगी, जो मस्तिष्क से बोझिल नहीं हो पाता । जो भावोद्रेक करने में सक्षम होता है, जो करुणा से ओत-प्रोत होता है । एक गीत है "रोलिया" । बालक रोलिया खाटा के लिये अपनी गरीब मां से मूक शब्दों में अपनी व्यथा को उजागर करता है, पर गरीब, दीन हीन मां रोलिया को 'खाटा' लाकर कहां से दे—

पहले प्रयत्न में—

मांग मूंग के छाछ आणी थारे लेखे
वेसण कहां से लाऊं रे रोलिया, खाटा के लेखे

छाछ तो मिल गई, पर मां वेसण कहाँ से लावे और रोलिया रात भर चिल्लाता रहा ।

"सारी रात रोइयो रोलियो खाटा के लेखे"

दूसरे प्रयत्न में—

मांग मूंग के हल्दी आणो थारे लेखे
मरच्यां कहां सूं लाऊं रे रोलिया, खाटा के लेखे

इस वार हल्दी मांग तूंग कर आ गई है, किन्तु रोलिया का दुर्भाग्य—सर्वदा उपलब्ध साधारण सी वस्तु—मिरचें घर में नहीं निकलीं । दूसरी रात भी—

'सारी रात रोइयो रोलियो खाटा के लेखे'

तीसरे प्रयत्न में—

मांग तूंग के लूंगा आणो थारे लेखे
जीरो, कहां से लाऊं रे रोलिया, खाटा के लेखे,

जीरे के वगैर गाड़ी अटक गई, और तीसरी रात भी—

'सारी रात रोइयो रोलियो, खाटा के लेखे'

और रोलियो को खाटा भी उपलब्ध न हो सका ।

"जन साधारण के समक्ष तो रोलिया रात भर खाटे के लिये अव भी रोता है । प्रातःकाल उसकी विधवा मां 'खाटा' जुटाने का भरसक प्रयत्न अव भी करती है, किन्तु रोलिया की मांग अव भी पूरी नहीं हो पाती । ऐसे कितने ही रोलिये अव भी ग्रामों में रोते-रोते रोलिया की लोरी के साथ नित-प्रति सो जाते हैं ।"[१]

इन गीतों में सहज ही करुण-भाव नेत्रों के सम्मुख साकार हो उठता है और यही इन गीतों की चरम उपलब्धि है ।

प्रभावोत्पादक चरित्र-चित्रण—

हाड़ौती लोक-गीतों में यह विशेषता स्पष्ट लक्षित होती है कि इनमें प्रयुक्त शब्दों को चुन-चुन कर मोती की तरह टांके हैं, वे लड़ी में पिरोये-सें सुशोभित होते हैं ।

चरित्र-चित्रण करते समय जन-कवियों के सामने दो प्रकार स्पष्ट रहे हैं—१. रुचिकर सम्वन्ध और २. अरुचिकर सम्वन्ध । रुचिकर सम्वन्धों को चित्रित करते समय उन्होंने एक अलग परिपाटी का आश्रय लिया है, अलग रंग भरे हैं, उनमें मधुर अजस्र प्रेम-गंगा प्रवाहित सदा-सदा के लिये जन-मानस को उसमें डुवो दिया है । और आज भी उसका अवगाहन करने पर हम रस स्निग्ध हो भाव विभोर हो उठते हैं । इसके विपरीत अरुचिकर सम्वन्धों को स्पष्ट करते समय उनमें पनपती कटुता, तिरस्कार और द्रोह का चित्रण खुलकर किया गया है । दोनों को हम निम्न प्रकार से वांट सकते हैं ।

---

(१) हाड़ौती जन-काव्य का एक करुण गीत—नरेन्द्र सहाय सक्सेना—'प्रेरणा'—जनवरी १९६१, पृष्ठ १७ ।

१. रुचिकर सम्बन्ध—

अ—माता और पुत्र
आ—माता और पुत्री
इ—देवर और भावज
ई—भाई और बहिन

२. अरुचिकर सम्बन्ध—

अ—सास-पतोहू
आ—ननद और भावज
इ—देवर और भावज
ई—ससुर और पतोहू
उ—सौतें

एक गीत 'पुत्र जन्म' में चरित्र-चित्रण करते समय ग्राम्य कंठों ने किस प्रकार की उपमायें ढूंढ़ निकाली हैं, द्रष्टव्य है—

सुसरा जी म्हारा चौधरी जी
सासू जी अरथ-भण्डार।
धीयड़ म्हाकी मूंदड़ी जी
जवांई मूंदड़ी मेल्या कांच
पूत म्हाको हिवड़ो जी,
कुल बहू हिवड़ा में को हार।

मेरे ससुर तो ग्राम्य चौधरी हैं, परन्तु सुलक्षणा सास तो रुपये-पैसों का भण्डार ही है। और बेटी—बेटी तो मेरी उंगली की रत्नजड़ित अंगूठी है और जंवाई उस अंगूठी में स्थित जगमगाते रत्न, जिसकी प्रभा से अंगूठी दैदीप्यमान है। पुत्र तो मेरा कलेजा है, हृदय का हार है, और पुत्र-वधू तो उस हृदय पर झूलने वाली, उसकी सुन्दरता को द्विगुणित करने वाली हीरे के हार की लड़ है।

कितनी गूढ़ और गहरी उपमाएं ग्राम कंठों ने अपने जन-गीतों में प्रयुक्त की हैं। उनके सहज एवं सरल स्निग्ध कंठों से जो गीत मुक्त दैदीप्यमान हुए, उनमें ऐसे चरित्र व इस प्रकार के चरित्रों को उभारने वाली उपमाएं अनूठी हैं।

बेटी ससुराल विदा हो रही है, उसकी आँखों से उमड़ते आँसूं, और हृदय में उठते शत-शत भाव थम नहीं पा रहे हैं और मोहल्ले भर की स्त्रियाँ सिसकते कंठों से गा उठती हैं।

'कोयल बाई सिध चाल्या'

तो एक बारगी ही सारा वातावरण अश्रुप्लावित हो उठता है। इस गीत में जो माधुर्य, जो सौंदर्य, जो प्रांजल और पवित्र भावना, जो स्नेह और सहानुभूति, जो आत्म-मुक्तता और मानव-हृदय की अनुभूति का चित्रण मिलता है वह दुनियाँ के श्रेष्ठ काव्य में भी खोजना संभव नहीं।

जहाँ पुत्री को 'बागां की कोयल' शब्द से सम्बोधित किया है वहां जंवाई को 'आये सगाजी को सूवटो, यो है आयो सगाजी को सूवटा' कह कर पुकारा है, और साथ ही 'ओ लेग्यो टोली में सूं टाळ, फूटरमल ले चाल्यो' कह कर हृदय के भावों को रोकने का विफल प्रयत्न किया है।

हाड़ौती के एक अन्य गीत में तो चरित्रों को स्वर्णाभूषणों के माध्यम से घटित कर उनके चरित्र को स्फटिक की तरह उभार दिया है।

एक 'बनड़ी' गीत में वहू अपने सब गहनों की उपमा में परिवार के विभिन्न लोगों को ले लेती है। सास ने वहू से कहा, कि वहू ! जरा अपने आभूषण तो पहनकर दिखाओ। वधू ने उत्तर दिया, कि सासू जी ! मेरे आभूषणों के बारे में क्यों चिन्तित हो ? देखो, मैं इन लोगों के बीच में कितनी सुन्दर लगती हूँ। मेरे श्वसुर गढ के राजा हैं, सासू रत्न-भण्डार है। जेठजी बाजूबन्द हैं, तो जेठाणी बाजूबन्द की लूंब है। देवर हाथी दांत का चुड़ला है, देराणी उस चुड़ले के ऊपर वाली मजीठ है। मेरा पुत्र दीपक है; पुत्र-वधू दीपक की लौ है।

कितने सशक्त शब्दों में, किन्तु चातुर्य पूर्ण शब्दों में वहू ने सास को रिझाने के साथ साथ कितनी स्पष्टता से अपने परिवार के चरित्रों का खाका उतार दिया है—

सासू गेणां ने कांई पूछो
गेणो तो श्रो म्हारो छ परिवार

म्हारा सुसराजी गढ़ रा राजवी
सासू जी म्हारा रतन भण्डार
म्हारा जेठ जी बाजूबंद बांकड़ा
जेठाणी म्हारी बाजूबंद री लूंब
सासू जी गेणो कांईं पूछो ।

म्हारो देवर चुड़लो दांत रो
देराणी म्हारी चुड़ले री मजीठ
म्हारो कंवर घर रो चांनणों
कुल वह ऐ दिवले री जोत
सासू जी गेणां कांईं पूछो ।

म्हारो धीड़ज हाथ री मूंदड़ी
जंवाई म्हारे चंवेली रो फूल
म्हारी नणंद कसूंमल कांचलो
नणदोई म्हारे गजमोत्यां रो हार
सासू जी गेणां कांईं पूछो ।

इस प्रकार उसने प्रतीकात्मक शैली में परिवार को समेट लिया है।

देशकाल-अंकन—

तीज का त्यौहार हाड़ौती जन-समाज में विशेष प्रिय है। इस दिन सभी स्त्रियां सुन्दर आभूषणादि पहिन झूले पर झूलती हैं। एक विवाहिता तीज के त्यौहार पर पीहर जाने के लिये उतावली है, वह तुरन्त अपने गाँव जाकर सखियों के साथ झूला झूलने को आतुर है। उसके सास, ससुर, जेठ, जेठाणी, देवर, देवराणी सभी सहमत हैं पर निगोड़ा पति बहाने बना बनाकर टाल देता है, वह कई प्रलोभन देता है—

आई छै सावणिया री तीज,
सुसरा जी त्यार, म्हारी सासूजी त्यार
केसरियो नट नट जाये ।
रखड़ी मूं लादूं, थारे झालर मंगालू
थारे हंसलो घड़ा दूं सवा लाख को
फेर पीहरिये जाय ।

जेठजी तियार, म्हारी जिठाणी तियार
पण केसरियो नट नट जाय
म्हारो साब मुकरतो जाय
चुड़लो चिराथूं थारे, गजरो मूं लादयूं
फेर पियरिये जाय
पायलां मूं लादूं, थारे बिछिया घड़ाद्यूं
फेर साथण्यां में जाज्यो ।

बेचारी भ्रमित वधू पीहर गई या नहीं, पता नहीं परन्तु एक दूसरी वहू होली आने पर भी उदास है, दुखी है, उसका पति घर कहां है ?

जी सायब होली तो करी छै परदेस
गणगोरयां आज्यो म्हारा राजवी
जी सायब हाथां रो चुड़लो चिराय
जी सायब, सिर पर स्यालू मोलाय
गोटो तो फेरू महंगा मोल को ।

प्रियतम ! होली जैसे त्यौहार पर भी आप 'टके के लालच में' परदेश बैठे रहे हो, परन्तु अब यह तो याद रखना कि आप की गणगोर के त्यौहार पर घर को मत भूलना। हां ! एक बात की याद रखना, मेरे हाथों का चूड़ा चीर लेते आना, और हां, सिर पर का 'सालू' भी तो फट गया है, आते वक्त लेते आना। इतना जरूर याद रखना, कि उस पर जरी और गोटे का बारीक काम किया हुआ हो।

और गणगोर के त्यौहार पर तो वह सुबह ही माता गणगोर को पूजने चली जाती है कि जैसे भी हो, शाम तक उसका रंगीला घर पर आ जाय, उसकी इच्छा पूरी हो जाय।

और साथ ही वह अपने घर के लिए हाथ लगे मक्खन, दूध, 'कान्ह कंवर सो भाई', 'राई सी भोजाई' और 'लड्डू जैसा भतीजा' भी माँग लेती है, उसके स्वार्थ में भी परमार्थ निहित है। वह अपने लिये मांगते वक्त भी घर को नहीं भूलती—

गोरी गणगोरी माता, खोल किवाड़ी
वायर ऊभी थारी पूजणवाली
पूजो ए सोहागण राणी, कांई कांई मांगो
म्हें मांगां छा अलल कूंडा
छाछ मधणिया
राइ सो भोजाई मांगां, कान्ह कंवर सो वीरो
लाडू सो भतीजो मांगा, जलला जामी वावल मांगा
राता देइ मायड़, लछमण सो देवरियो
म्हारा सायव घरे आज तो वुलाव ए।
गोरी गणगोरी, माता खोल किवाड़ी
वायर ऊभी थारी पूजण वाली ।

हाड़ौती जन-समाज में दीपावली के शुभावसर पर वैल पूजने का रिवाज सदियों से प्रचलित है। राजस्थान ग्राम्य-समाज का केन्द्र विन्दु 'वैल'—और दीपावली जैसे शुभ त्यौहार पर उसे भुला भी कैसे जा सकता है, और यदि पूजन करते समय वैल कान फुरकावे, मस्ती से झूमे तो शुभ होता है—

कोरो र कलस्यो जल भरयो
जीं क ऊपर पीला फूल
हरिया गौवर री वणई ग्होलियां
मोत्यां चौक पुरायो
धोल्यो मोडयो पूजतां, भलो हलायो कांन
मोड़ी आई ए मालण वाग री
म्हारो धोल्यो जोवे बाट

कितनी आत्मीयता है। द्विपद एवं चतुष्पद प्राणियों की कितनी महानुभूति है एक दूसरे के सुख दुःख में। वह तो उपालंभ दे ही रही है। वह तो मालण का इन्तजार कर ही रही है, परन्तु उसका धोल्या भी खड़ा वाट जो रहा है।

हाड़ौती लोक-गीतों में जहाँ देशकाल में प्रयुक्त त्यौहारों का वर्णन आया है वहाँ वे ग्रामीण उन वहादुरों, तेजाजी, वगड़ावत जी आदि को भी नहीं भूले हैं जिन्होंने उनकी प्यारी धरती पर जन्म लेकर मातृभूमि की रक्षार्थ प्राणों को न्यौछावर कर दिया है। यद्यपि ये हाड़ौती क्षेत्र में नहीं हुए, तो भी 'वीरो पूज्यते सर्वत्र' कहावत के अनुसार ये हाड़ौती क्षेत्र में भी प्रिय हो गए हैं।

तेजाजी अपने प्राणों की परवाह न करते हुए लुटेरे दस्युओं से गायों का गोल छुड़ाते हैं, उनका घोड़ा क्षत-विक्षत हो जाता है।

एक मभल भड़ लाग्यो घोड़ी जो हाला
गायां बूजी पेल्या खाल में
मीणा गोल मांड्या गाबा में ल्यो लड़को जाट को
अबका तो जावा दो मीणा भायाओ,
बावड़ता ल्याऊं माल मोकलो।
वाया सूं रम चाल्यो घोड़ी हालो
तेजो चाल्यो जावे छै बेनण सासरे
शैल झलकतो जाव, काला बादल में चमके जांणे बीजली

हाड़ौती गीतों में एक गीत है 'बासक' जिसमें मानव का सर्प से—जहरीले नागराज से—सम्बन्ध जोड़ा है—

अबके तो चेत करो न बासक राजा
गेल जाता मानवी सूकर्‍या
बाज्या सुरया पुरवाई, सरणाटा करें बासक देव
दूधलो लावो गेला मायां, गेल जाता मानवी सूकर्‍या।

एक गीत है बगड़ावतों का, जिसमें उस वीर पुरुष का वर्णन है जिसने हाड़ौती जन-समाज को उबारा है। शत शत कंठों ने उनके प्रति श्रद्धा के सुमन चढ़ाये हैं—

माला घड़ाया बीजल सार का
ज्यां की सूरत छै मोणियार
जांको छै घुड़लो नौ लखो
यां बूंली सवाई बीज
नगर चढ़ता जां की पचरंग
उड़ रया फर फर फरके धाज

मगर बगड़ावत वीर था। शत्रुओं से लोहा लेते वक्त भी नारियों को उसने आदर की दृष्टि से देखा, शत्रु के शिशुओं को उसने प्यार दिया—

पाणी की पणिहार्‍यां म्हारी बेनड़ी, नीचीती जाय,
टाबर्‍या जांणे फूल गुलाब का, हिलोरो देतां जाय।

इसी प्रकार हाड़ौती लोकगीतों में वीर पुरुषों, नारियों, सतियों आदि के अगणित गीत हैं। भैरूंजी के गीत, सतीमाता के गीत, दियाड़ी माता के गीत, तान माता के गीत, इसी प्रकार के गीत हैं।

कृत्रिमता का अभाव—

साहित्य वही स्थायित्व पाता है, जो सरस हो—जिसमें कृत्रिमता का पूर्ण अभाव हो, जो नैसर्गिक, स्वच्छन्द एवं मधुर हो, जिसके आलाप दुखी हृदयों को

रस-स्निग्ध कर दे । मीरां और सूर में यही अन्तर है । सूर के दृष्टकूट पद मनुष्य को बौद्धिक कौतुहल में भले ही डाल दें, वे मानसिक शान्ति नहीं दे सकते । कुछ क्षणों के लिये आश्चर्यान्वित भले ही करदें, रस स्निग्ध नहीं कर सकते । सूर का एक उदाहरण देखिये—

जब दधि-रिपु हरि हाथ लियो
खगपति-अरि डर असुरनि संका, वासरपति आनंद कियो ।[1]

(दधि-रिपु—दही को मारने वाली मथनी । खगपति-अरि—गरुड़ का अरि वासुकि । वासर-दिन-वार वारि-वारि-पति-समुद्र । आनन्द कियो—बढ़ा)

इसी भाव को हाड़ौती लोक-गीत में कितनी सरलता एवं माधुर्य के साथ बाँधा गया है—द्रष्टव्य है—

एक मोर-मुकट सिरिकिसनं सोवणी माला
ऊं के कुंडल झलके कान, खांद अ दुस्साला
जो समदर ने झकझोर्‌या खडेयो स्योंठाडो
जद नाथ्यो कालो वासक नागण्या आडो

आ। पर तू पत्र ले जायगी कैसे ? ले तेरी चोंच पर मैं उपालम्भ लिख दूं और तेरे पंखों पर सात सलाम लिख देती हूं। तू उनसे मेरा सलाम कह देना।

कह देना कबूतरी उन्हें कि रात के पिछले पहर में मुश्किल से आँख लगी थी, कि सपना आ गया जंजाल सा। और मैंने देखा कि सास के लाडले घर आ रहे हैं और उतावली में मेरी आँख खुल गई, निगौड़ी आंखों ने पूरी तरह मिलने भी तो नहीं दिया:—

कबूतरी री, म्हारे भंवर ने संदेशो दीजे ए।
कबूतरी चूंच पे थारे लिख दूं ओलमो
थारी पांखां पे सात सलाम। कबूतरी ऐ!
कबूतरी री! मूं तो सूती छी रंग मेल री
आयो मन्ने जाल-जंजाल-कबूतरी री!
सासू जी थांको जायो सपूत
आयो आयो घरणे म्हारो श्याम-कबूतरी री!
चालो री बहेणियां चालां आपां सरवरिया री पाल
घुड़ले चढ्या पीव आवेला म्हारा राज—कबूतरी री!

और उसका स्वर व्यथा में डूब जाता है। इस गीत के प्रत्येक पद से करुणा टपक पड़ती है। सीधे सादे शब्दों में नैसर्गिक एवं सहज रूप से जो वियोगिनी की व्यथा है वह प्रत्येक पाठक के हृदय को झकझोर देती है।

यह गीत क्या है ? करुण रस का कलश है। जितनी करुणा इन कतिपय पंक्तियों में भरी पड़ी है इतनी संभवतः समस्त प्राचीन साहित्य में भी नहीं मिलेगी। वियोग की आशंका से उत्पन्न दुःख का इतना सरस, सजीव, अकृत्रिम तथा हृदय द्रावक वर्णन अन्यत्र उपलब्ध नहीं। हिन्दी के कवियों ने वियोगिनियों के नेत्रों से आंसू बहने से नदियों में बाढ़ आने की बात लिखी है। यह वर्णन अलंकार की दृष्टि से भले ही चमत्कारपूर्ण हो, परन्तु श्रोताओं के हृदय पर असर नहीं करता। परतु इस गीत में वर्णित भाव अपनी अकृत्रिमता के कारण सहृदयों के दिल पर सहज ही में चोट करते हैं।

मानव हृदय से सहज आत्मीयता स्थापित करने की शक्ति

हाड़ौती-लोक-गायक सदा से ही भावुक रहा है। उसने कबूतरी से संदेश भिजवाये हैं, 'दिवले' से रात-रात भर बातें की हैं। पशु-पक्षियों से अपने स्नेह-सूत्र जोड़े हैं, और धरा के अणु-अणु में विराट् मानव प्रतिबिम्ब पाया है।

बदलियों के इधर उधर जाने से उसे भ्रम हो गया कि हो न हो उसके प्रियतम ने ही उसके पास बदलियों के माध्यम से कोई संदेश भिजवाया है और वह उस बादली की ओर आशापूरित नेत्रों से ताक कर पचरंग लहरिया पहिन कर बैठ गई

और उसने देखा कि उसमें से एक बदली उसका लहरिया भिगो गई। वह पुलकित हो उठी, उसने कहलवाया—

भंवर थांकी वादली ने म्हारो
पंचरंग लहरियो भिजोयो जी राज।

धीरे-धीरे दिन बीतते जाते हैं, उसे हर क्षण पहाड़-सा लगने लग जाता है, और वह कह उठती है—

दिनड़ा तो गिण गिण म्हारा घिस गया जी कोई
आंगलियां का पोर, अब घर आजा।

प्रियतम ! तुम आते क्यों नहीं, समझ नहीं रहे हो क्या ? यह यौवन तो छाया है, इसे सहेज कर कैसे रख सकूँगी—

जोवन तो ढोला फेरूँ नी वावड़े जी
या तो ढोला फिरती घिरती छांव।

और यह यौवन है, कोई मजाक थोड़े ही है। कुआं हो तो बांध भी दूँ पर समुद्र (यौवन) को कैसे बांधूं ?[1]

कूवो हो तो बांध दूँ जी, कोई समदर बांध्यो न जाय
अब घर आज्यो

× ×

थां ने प्यारी लागे चाकरी जी पिया
माने प्यारा लागो आप.....................
अब घर आओ, मिरगा नेणी का वालम....

कालिदास के यक्ष का रोना-धोना केवल एक वर्ष के विछोह के लिये था, पर इस विरहिन के विरह की कोई सीमा नहीं है, मिलन हो भी सकता है, नहीं भी........कालिदास के यक्ष का विरह पार्थिवता में अमरता का संदेश देता है। यह लोक-गीत भी ऐसा ही माना जा सकता है।

सजीव तो क्या, जन-गायकों ने फूलों, वृक्षों, पल्लवों एवं पादपों तक से साक्षात्कार किया है, उनसे अपने आपको मिलाया है—

राजन फूल गुलाव को, वां की नारी ए फुलड़ा सेज
गहरो फूल गुलाव को।
गहरो गहरो जी वाईजी। थांका वीरा रंग रसिया
गहरो फूल गुलाव को।

साजन गुलाव के पुष्प की भांति मृदु, हंसमुख और सुन्दर हैं तथा उनकी पत्नी जैसे कि पुष्पों की शैया हो। गुलाव का पुष्प गहरा है। हे ननदी ! उस गुलावी

---

(१) हाड़ौती जन-काव्य में मेघदूत—श्री नरेन्द्र सहाय सक्सेना—'प्रेरणा'—मार्च १९६१, पृष्ठ १६

(गुलाबी रंग प्रेम का सूचक माना जाता है) गुलाब से भी गहरे आपके भैया हैं। तात्पर्य है यह कि उनका अंग-अंग प्रेम से आप्लावित है, तथा रग-रग में उनके अनुराग भरा है।

ईं चंवरी गुल बनड़ो चढयो, बाई बनड़ी ए
थारेड़ो कन्त पून्यू को सो चांद, रतना पर
चंवरी चढयो।

रत्नों से जड़ी हुई चंवरी (विवाह की वेदी) पर फूल सा दूल्हा बैठा है। हे बनी! वह तेरा पति रत्नों से जड़ी हुई चंवरी पर ऐसा लगता है, जैसे कि तारों के मध्य पूर्णिमा का चाँद खिला हो।

विवाह में 'सीठने' गाये जाते हैं। एक सरहज अपनी ननदी के पति 'नणदोई' के लिये गा रही है—

ओ जी नणदोई सा, थारी आँख नींबू केरी फांक
नींबू हो तो चूसल्यूं नणदोई जी
थारी आंख न चूसी जाय
ओ सा—

आँखों की उपमा नीम्बू से देना हिन्दी-साहित्य में अतुलनीय है।

इसी प्रकार हाड़ौती गीतों में एक गीत है 'मीण्डकड़ी' जिसका अर्थ है 'मेंढकी' जिसमें बालक ऊदी ऊदी-काली घटा घिरती देख कर गोल बना कर नाचते हैं, और इन्द्र से प्रार्थना करते हैं—इन्द्र राजा! पानी तो बरसा। हमारी तो परवाह नहीं है हमें, परन्तु तुम कृपा कर इस बेचारी प्यासी मेंढकी को तो पानी पिलादो, नहीं तो यह प्यासी ही मर जायगी। कितनी गहरी आत्मीयता भरी है। बालक—नादान बालक—भी सोचते हैं कि हम तो कुछ समय प्यासे भी रह जायेंगे, परन्तु यह मेंढकी तो प्यासी न रहे।

इन्दर राजा मेंह बरसाय
मीण्डकड़ी ने पांणी पाय
बरसूंगो, बरसाऊंगो
गेहूं चणा नपजाऊंगो
ज्वार बाजरी बोहूंगो
ढोकला में ढोकलो, मेह बाबो मोकलो
आयो रे बाबो परदेशी
टके पंसेरी कर देसी
इन्दर राजा मेंह बरसाय
मीण्डकड़ी ने पाणी पाय।

एक स्त्री तो तालाब की पाल पर बैठी काले मेघों को अपना भाई समझ

उन्हें न्यौता दे देती है, आओ भाई मेघों ! आओ ! धरती को हरी-भरी करदो, सबके कष्ट दूर करदो, तुम समर्थ हो, मैं तुम्हें लड्डू खिलाऊंगी।

पाट्यां बैठी बोली बनड़ी
इन्दर भाया घरम्यां जाय
काला मेघा घर में आय
लाड्डो खिलास्यूं
ठण्डो नीर पिलास्यूं
म्हारा बीरा साचा घर में आव।

इस प्रकार देखते हैं कि हाड़ौती जन-समाज ने पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों एवं घास तृणों आदि तक से अपना सम्बन्ध जोड़ा है, अपने हृदय की व्यथा कही है, उसके दुःख दर्द सुने हैं और इस प्रकार उसके सुख में सुखी होकर खिलखिलाये हैं तो दुःख में जी भरकर आँसू भी बहाये हैं, उन्होंने प्रत्येक—जड़ और चेतन—से अपने हृदय का तादात्म्य कर विशाल हृदय का परिचय दिया है।

परम्परा प्राप्त मौखिक रूप

परम्परा की प्राणधारक शक्ति के साथ ही लोकगीतों की कुछ विशेष प्रवृत्तियां हैं जो उनके स्वरूप निर्धारण में महत्व रखती हैं। परम्परा का अनुसरण केवल अन्धानुकरण मात्र नहीं होता। लोकगीतों की परम्परागत रूढ़ियां उनके अस्तित्व के लिए अनावश्यक नहीं कही जा सकतीं। परम्परा, रूढ़ि-निर्वाह, शैली-वैशिष्ट्य अपनी सहज स्थिति में ही अमिट रह सकते हैं, मौखिक परम्परा में जीवित रह सकते हैं, अन्यथा समय के प्रभाव में, सभ्यता और संस्कृति की विकासशील गति में इतिहास की स्मृतियों की तरह कुछ क्षण टिक कर ये सब समाप्त हो गये होते।

रूढ़ियां ने (चाहे वे रचनायं प्रक्रियागत हों, या भावों में व्यक्ति पूर्ण) लोक-गीतों के अस्तित्व को कायम रखा है।

लोकगीतों में जहाँ हम आधुनिकता के दर्शन करते हैं वहीं इनमें प्राचीन रीति-नीति, आदर्श एवं सभ्यता तथा संस्कृति के दर्शन भी होते हैं।

प्राचीन जमाने के कई ऐसे गहने थे जो आज लुप्त होते जा रहे हैं, और धीरे-धीरे वे अपने नाम तक को विस्मृत करते जा रहे हैं, पर लोक-गीतों के माध्यम से हम उस काल के गहनों को बखूबी परख सकते हैं—समझ सकते हैं। 'झुटणा', 'तन्या', 'विटिया', 'पायल' आदि कई इस प्रकार के आभूषण हैं। 'गणगोर' नामक एक गीत में एक वासक सज्जा अपने प्रियतम से गहनों की माँग कर रही है—

माथा ने भंवर घड़ाव जो जी,
रखड़ी रतन जड़ाय, गौरी का सायबा जी
या रत मानो जी गणगोर।
कांना ने झाल घड़ाव जो जी, झुटणा झोल दिवाय
मुखड़ा ने वेसर घड़ाव जो जी

मोतीड़ा फेर गंठाय
गौरी का सायबा जी
हिवड़ा ने हांस घड़ाव जो जी
तमन्यो पाट पुवाय
बाइयां ने चुड़लो चिराव जो जी, गजरा रतन जड़ाय
कडयां ने चुड़लो चिराव जो जी, गजरा रतन जड़ाय
कड़यां ने पटोली सिवाव जो जी, केसरया कोर दिवाय
धण रा सायबा जी
पगल्यां ने पायल घड़ाव जो जी,- घुमरा घमस दिराय
गौरी का सायबा जी
अंगल्या ने बिछिया घड़ाव जो जी
अनवट रतन जड़ाय
गौरी का सायबा जी
धण रा सायबा जी ।

और गीत चलता रहता है, गौरी की गहनों के प्रति मांग बढ़ती ही जाती है और चतुर पारखी इस गीत के माध्यम से उस समय की कला, संस्कृति, आभूषणों के नाम, तत्कालीन स्त्रियों की गहनों के प्रति आतुरता, एवं उनके हृदयगत् भावों का चित्रण—एक-एक को समझता जाता है, अवगाहन करता जाता है। गीतों का यह परम्परा प्राप्त रूप मौखिक रहा है अतः सामयिक प्रभाव भी देखने को मिलता है।

लोकगीतों की रचना के तत्त्व

पृथ्वी मानव, इसी त्रिलोकी में जीवन का कल्याणतम रूप है।''[1] गीतों में वर्णित भाव किसी एक व्यक्ति के हृदय के उच्छ्वास नहीं होते, प्रत्युत उनमें उस समाज के समस्त व्यक्तियों के हृदयगतभाव अभिव्यक्त होते हैं, इनकी रूढ़ता ही इनकी प्रधान विशेषतायें होती हैं।[2]

इनकी कुछ ऐसी रूढ़तायें होती हैं, जो सार्वकालीन एवं सार्वभौमिक होती हैं और जो विश्व के लोकगीत में एक रस सी मिलेगी। नीचे उनकी रूढ़तायें अतिशयोक्तियों का कुछ संक्षिप्त विवेचन कर इसे स्पष्ट करने का प्रयत्न किया जायगा।

१. निरर्थक शब्दों का प्रयोग—

लोकगीत ग्राम्य अंचल की विभुति होते हैं, वे ग्रामीण कंठों की क्रोड में पलते हैं, ऐसे ग्राम्य-जन, जो अर्द्ध शिक्षित तो होते हैं मगर जिनकी भाव-सम्पत्ति वहुत उच्च धरातल को स्पर्श किये रहती है, जो स्वयं तो अशिक्षित होते हैं, अक्षर शून्य—परन्तु उनके पास जीवन अनुभव के अनमोल रत्न होते हैं और वे भाव-सागर में गहरी डुबकी लगाकर देदीप्यमान मुक्तक लाने में सफल होते हैं। लोकगीतों के रचयिताओं के पास शब्द का ज्ञान-भण्डार वहुत ही सीमित होता है, शब्दों की कमी रहती है, पर भावों का आधिक्य। फलतः वे अपने भावों की रक्षार्थ कई निरर्थक शब्दों का भण्डार भी लोकगीतों में भर देते है। शब्द चातुर्य की कमी को पूरा करने के लिये स्वरों की सहायता के साथ ही निरर्थक शब्दों का आश्रय लिया जाता है।[3] इससे उन लोक गायकों को कई सुविधायें होती हैं, (१) वे आसानी से अपने भावों को व्यक्त कर सकते हैं, (२) उन्हें गेय रूप वनाने में दिक्कत का सामना नहीं करना पड़ता, (३) गीतों की लय प्रायः दोहराई जा सकती है, (४) यह पुनरावृत्ति प्रभाव एवं ध्वनि माधुर्य को साकार रूप देने में समर्थ होती है, (५) इससे एक वैशिष्ट्य का प्रादुर्भाव आसानी से हो जाता है और (६) भावों का उठान सहज ही किया जा सकता है।

गीत सृष्टा स्त्री-पुरुष दोनों हैं। किन्तु ये स्त्री पुरुष ऐसे हैं, जो कागज और कलम का उपयोग नहीं जानते हैं। यह संभव है कि एक-एक गीत रचना में वीसों वर्ष और सैंकड़ों मस्तिष्क लगे हों[4] और इसीलिये एक ही धुन को याद रखने के लिये वे एक-एक शब्द को कई-कई वार प्रयुक्त करते हैं। हाड़ौती लोक-गीत भी इससे अछूते नहीं वचे हैं।

गीत की टेक वार-वार दुहराने से वड़ा फायदा होता है उसका लय-

---

(१) सम्मेलन पत्रिका—लोक-संस्कृति विशेषांक २०१०—वासुदेव शरण अग्रवाल—पृष्ठ ६५

(२) भोजपुरी ग्राम-गीत—कृष्णदेव उपाध्याय—पृष्ठ ६

(३) लोकायन—डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय—पृष्ठ १८

(४) ग्रामगीतों का परिचय—रामनरेश त्रिपाठी—पृष्ठ २१

सौन्दर्य द्विगुणित हो जाता है, इससे ध्वनि माधुर्य में एक अजीब लचक एवं साकारता स्पष्ट हो जाती है। गीत से भी अधिक महत्व उसकी टेक की लय का होता है।

हाड़ौती लोकगीतों में एक गीत है 'बधावा'। अपनी कर्ण-प्रियता, स्वर माधुर्य एवं लोच की वजह से गीत अत्यन्त ही सुन्दर बन पड़ा है और साथ ही इनमें—बधावों में—'सुण्यो' पंक्तियां जब बार-बार दुहराई जाती हैं तब तो एक चित्र सा साकार हो उठता है, गीत सप्राण हो जाता है, उसके हृदय का स्पंदन स्पष्ट सुनाई देने लगता है, मगर यह पुनरावृत्ति, जो कि निरर्थक सी है, भी अत्यन्त ठीक प्रकार से व्यक्त है—

सखि पांच बधावा म्हारे आईया
लीना छै आंचल ओढ़, बधावो में सुण्यो।
गज राज बधावो सुण्यो
रूपोरल बधावो मूं सुण्यो
सखि पैलो बधावो म्हारे बाप रो
दूजो सुसरा जी घरबार-बधावो में सुण्यो
सखि अगल्यो बधावो म्हारे जेठ को
सखि चौथो बीरा जी घरबार-बधावो में सुण्यो

और इस प्रकार गीत आगे बढ़ता रहता है। उसके टेक की पुनरावृत्ति होती रहती है। इसी प्रकार इन गीतों में राज, साथण, चुड़लो आदि कई ऐसे शब्द हैं, जो बार-बार आये हैं, और वे गीतों में भर्ती के न होकर सहायक बन कर आये हैं।

२. रचयिता अज्ञात—

इन गीतों का यह सर्वमान्य तथ्य है कि "इनके रचयिता अज्ञात हैं, न तो ये लिपिबद्ध होते हैं, न उनके रचयिता का ही पता होता है। स्त्री-पुरुषों की जिह्वा ही उनकी आवास-स्थली है। कृत्रिमता उनमें छूकर भी न मिलेगी, उनमें मिलेगी सरलता और स्वाभाविकता।"[१] "मौखिक परम्परा के गुरूत्तम उत्तराधिकार के बल पर ही लोकगीत आज तक अपने सहज समुच्छ्वसित रूप को अक्षुण्ण रख सके हैं।"[२] "लोकगीत का रचयिता लोक-समाज के भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम मात्र है, उसका व्यक्तित्व लोक भावों में तिरोहित होकर लोक स्वरूपी हो जाता है।"[३] गीत मनोभावों की अभिव्यक्ति का वह माध्यम है जिसमें संगीत का अस्तित्व धुन के रूप में निहित होता है। 'लोक' से सम्बन्धित होते ही उसकी व्यक्तिपरक महत्ता सामूहिक तत्वों के अनुरूप ढ़ल जाती है, व्यक्तित्व का जो आभास कला गीतों में मिलना सहज और अनिवार्य है, वैसा लोकगीतों में नहीं, क्योंकि लोकगीत

(१) भोजपुरी ग्रामगीत—कृष्णदेव उपाध्याय—पृष्ठ ६
(२) सूर की काव्य-कला—मन मोहन गौतम—पृष्ठ ५६
(३) जनपद (त्रैमासिक) (अंक दो)—नामवरसिंह—पृष्ठ ६४

व्यक्ति-गीत नहीं हैं, उनमें मानव के समूहगत भावों की अभिव्यक्ति होती है।[१] लोक गाथाओं के रचयिता अज्ञात होते हैं, किस गीत को किस मनुष्य ने कब बनाया, वह बतलाना नितान्त कठिन है, यही कारण है कि आज हजारों गाथाओं के होने पर भी हम उनमें से एक के भी रचयिता के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं बतला सकते।[२] पं० रामनरेश त्रिपाठी ने कहा है कि इन गीतों के रचयिता अज्ञात स्त्री-पुरुष हैं।[3] आजकल के वर्तमान युग में किसी लेखक का अज्ञात नामा होना यह सिद्ध करता है कि वह अपनी कृति से लज्जित होने के कारण ऐसा करता है, परन्तु प्राचीन समाज में इसका कारण अपने नाम के विषय में लेखक की लापरवाही ही समझनी चाहिये।[४]

हाड़ौती लोकगीत भी इसी परम्परा में आते हैं। उनके रचयिता का नाम अज्ञात है, इन गायकों, कृतिकारों ने अपने व्यक्तित्व, नाम और यश की चिन्ता न करके जाति के लिये अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया है।

३. प्रमाणिक मूल पाठ का प्रभाव—

लोकगीतों का कोई मूल पाठ नहीं होता क्योंकि ये मनुष्य की जिह्वा पर फिसलते-फिसलते न मालूम कितना अपना स्वरूप बदल देते हैं, कुछ नहीं कहा जा सकता। "हम किसी भी एक पाठ के विषय में यह नहीं कह सकते हैं कि यही विशुद्ध पाठ और अन्य सभी अशुद्ध हैं।"[५]

हाड़ौती लोकगीत तो एक सरिता है, आगे चलने पर इसमें न मालूम कितने नदी-नाले मिलें, कितनों का गंदला, मैला, शुद्ध, खारा-मीठा जल समाया और विभिन्न स्थलों की मिट्टी के फलस्वरूप इस पानी में कितना अन्तर आ गया, कुछ कहा नहीं जा सकता। इसके मूल उद्गम रूप और समुद्र में गिरते वक्त के स्वरूप में कितना अन्तर आ गया है, कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। "जब रचयिता इन गीतों का निर्माण करता है, तभी तक इनका रूप मौलिक रहता है। बाद में ये जाति या समुदाय की वस्तु बन जाते हैं। इनके निर्माण के साथ ही इनकी समाप्ति नहीं होती, बल्कि वास्तविक बात तो यह है कि उस समय इन गाथाओं के निर्माण का प्रारम्भ होता है।"[६] भिन्न-भिन्न गवये गाथाओं को अपने अनुकूल बना कर उसे गाते हैं, अनेक स्थानीय घटनाओं का पुट उसमें मिल जाने से उसकी ऐतिहासिकता में भी अन्तर पड़ जाता है..........ऐसी दशा में उस मूल गीत का

---

(१) भारतीय लोक-साहित्य—श्याम परमार—पृष्ठ ७६
(२) भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन—डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—पृ० ३६६
(३) ग्राम गीत-भूमिका—रामनरेश त्रिपाठी—पृष्ठ २१
(४) The English Ballads-Robert Greeves-Page 12
(५) The English Ballads-Robert Greeves—Page 12
(६) The English & Scotish Popular Ballads (Introduction) by Prof. Keelriz—Page 18

रूप इतना परिवर्तित और परिवर्धित हो जाता है कि मूल लेखक के लिये भी उसे पहिचानना कठिन हो जाता है।[1]

हाड़ौती लोकगीत सदैव से गायकों की जिह्वा पर नृत्य करते रहे हैं फलस्वरूप इसके मूल पाठ का पता ही नहीं चलता। प्रोफेसर कीट्रीज के शब्दों में "वास्तविक लोकप्रिय गाथा का कोई निश्चित एवं अन्तिम रूप नहीं हो सकता। कोई प्रमाणिक पाठ नहीं हो सकता। उसके विभिन्न पाठ हो सकते हैं, परन्तु केवल एक ही पाठ नहीं हो सकता"[2]—सही है। हाड़ौती लोकगीतों का बदलता स्वरूप ही सप्राण है, यही इनकी सर्वोच्चता हैं।

४. स्थानीयता का पुट—

हाड़ौती लोकगीतों की यह विशेषता है कि इन्होंने कहीं भी स्थानीयता का साथ नहीं छोड़ा है। ये ऐसे गीत हैं जिनमें हाड़ौती मिट्टी की भीनी-भीनी सौंधी महक आती रही है, स्थानीयता का रंग इसमें सर्वत्र पाया जाता है और इसी कारण से हाड़ौती की सभ्यता, संस्कृति एवं वहाँ के रहन-सहन के बारे में आसानी से ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इसका अपना विशेष रहन-सहन, स्वभाव और जीवन के प्रति दृष्टिकोण है।

स्त्रियों के गर्भवती होने पर परम्परा के अनुसार उनकी इच्छा पूरी कराई जाती है, यह रिवाज हाड़ौती गीतों में इस प्रकार व्यक्त हुआ है—

ऊबा ऊबा सुसरा जी अरज करे छै
वहू काईं साद फरमाओ जी
ऊबा ऊबा जेठजी अरज करे छै
वहू काईं साद फरमाओ जी

वहू को चौथा मास लग गया है, उसका मन तो नींबू और नारंगी पर जा रहा है।

अगण्यो जो मास गौरी धन लाग्यो
चौथो जो मास गौरी धन लाग्यो
नींबू नारंगी मन जाय, भंवर केला लावजो जी,
खीर खाण्ड़ मन जाय, राइवर लेता आवजो जी।

पुत्र जन्म पर जहाँ चारों तरफ खुशियाँ मनाई जाती हैं, वहां सुसर अपनी सामर्थ्यानुसार द्रव्य भी गरीबों में बांटता है—

वहू थांका जी आठवां की होस हुई
म्हाने दरव लुटावा की वखत हुई
म्हाने साद पुरावा की वखत हुई।

---

(१) भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन—डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय-पृष्ठ ३६८
(२) The English & Scotish Popular Ballads-by Prof. Keelriz (Introduction)—Page 18.

बच्चा बड़ा होने पर एक निश्चित मुहूर्त में बालक अथवा बालिका के प्रथम बार सिर के बाल साफ करवाये जाते हैं, जिसे 'जडूल्या' अथवा 'मुंडन' कहा जाता है। यह रिवाज गीत में भली प्रकार से व्यक्त हुआ है—

झालर को है सोहलो
ऊंचा तो देऊं माता बैठणां ओ माई
दूदां पखारूंगी पाय
भूवा बाई चाली है रिसावती ओ माय
लीनी छै सासरिया की वाट ।
भूवा बाई ने लावां मनाय के, ओ बाई
चीर ओढ़ घर जाय ।
झडूल्या झेल घर जाय
नाऊका ने लावो बाई मनाय, छपन छुरा ले घर आय
झडूल्या उतार्या घर आय
नेग लेर घर आय
झालर को है सोहलो ।

विवाह को रवाना होने से पूर्व यहाँ यह परम्परा है कि विभिन्न देवी-देवताओं को पूजा जाता है, उन्हें प्रसन्न किया है—

नाचो म्हारा गनपत नाचोगा, पगां घूंघरा बाजेगा
गनपतिया तो म्हारा नाचेगा
पगां घूंघरा बाजेगा ।

× ×

उवा ऊवा सायब लाल जी अरज करे
पांच लाडू पंगा धरे

× ×

महादेव जी म्हें वन में अकेला
क्यूं कर रेस्यां जी !
पारवती जी हुकम करो तो
सहेल्यां बुलावां जी

× ×

भोला जी भण्डारी थां के दरसन आई जी
दरसन आई जी, शिव परसन आई जी
भोला जी भण्डारी थां के दरसन आई जी
अब तो फक उघाड़ो महादेव जी

× ×

रूप इतना परिवर्तित और परिवर्धित हो जाता है कि मूल लेखक के लिये भी उसे पहिचानना कठिन हो जाता है।[1]

हाड़ौती लोकगीत सदैव से गायकों की जिह्वा पर नृत्य करते रहे हैं फलस्वरूप इसके मूल पाठ का पता ही नहीं चलता। प्रोफेसर कोट्रीज के शब्दों में "वास्तविक लोकप्रिय गाथा का कोई निश्चित एवं अन्तिम रूप नहीं हो सकता। कोई प्रमाणिक पाठ नहीं हो सकता। उसके विभिन्न पाठ हो सकते हैं, परन्तु केवल एक ही पाठ नहीं हो सकता"[2]—सही है। हाड़ौती लोकगीतों का बदलता स्वरूप ही सप्राण है, यही इनकी सर्वोच्चता हैं।

४. स्थानीयता का पुट—

हाड़ौती लोकगीतों की यह विशेषता है कि इन्होंने कहीं भी स्थानीयता का साथ नहीं छोड़ा है। ये ऐसे गीत हैं जिनमें हाड़ौती मिट्टी की भीनी-भीनी सौंधी महक आती रही है, स्थानीयता का रंग इसमें सर्वत्र पाया जाता है और इसी कारण से हाड़ौती की सभ्यता, संस्कृति एवं वहाँ के रहन-सहन के बारे में आसानी से ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इसका अपना विशेष रहन-सहन, स्वभाव और जीवन के प्रति दृष्टिकोण है।

स्त्रियों के गर्भवती होने पर परम्परा के अनुसार उनकी इच्छा पूरी कराई जाती है, यह रिवाज हाड़ौती गीतों में इस प्रकार व्यक्त हुआ है—

ऊबा ऊबा सुसरा जी अरज करे छै
बहू काईं साद फरमाओ जी
ऊबा ऊबा जेठजी अरज करे छै
बहू काईं साद फरमाओ जी

बहू को चौथा मास लग गया है, उसका मन तो नींबू और नारंगी पर जा रहा है।

अगण्यो जो मास गौरी धन लाग्यो
चौथो जो मास गौरी धन लाग्यो
नींबू नारंगी मन जाय, भंवर केला लावजो जी,
खीर खाण्ड मन जाय, राइवर लेता आवजो जी।

पुत्र जन्म पर जहाँ चारों तरफ खुशियाँ मनाई जाती हैं, वहां सुसर अपनी सामर्थ्यानुसार द्रव्य भी गरीबों में बांटता है—

बहू थांका जी आठवां की होस हुई
म्हाने दरव लुटावा की वखत हुई
म्हाने साद पुरावा की वखत हुई।

---

(१) भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन—डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय-पृष्ठ ३९८
(२) The English & Scotish Popular Ballads-by Prof. Keelriz (Introduction)—Page 18.

बच्चा बड़ा होने पर एक निश्चित मुहूर्त में बालक अथवा बालिका के प्रथम बार सिर के बाल साफ करवाये जाते हैं, जिसे 'जड़ूल्या' अथवा 'मुंडन' कहा जाता है। यह रिवाज गीत में भली प्रकार से व्यक्त हुआ है—

झालर को है सोहलो
ऊंचा तो देऊं माता बैठणां ओ माई
दूदां पखारूंगी पाय
भूवा बाई चाली है रिसावती ओ माय
लीनी छै सासरिया की वाट ।
भूवा बाई ने लावां मनाय के, ओ बाई
चीर ओढ़ घर जाय ।
झड़ूल्या झेल घर जाय
नाऊका ने लावो बाई मनाय, छपन छुरा ले घर आय
झड़ूल्या उतार्‌या घर आय
नेग लेर घर आय
झालर को है सोहलो ।

विवाह को रवाना होने से पूर्व यहां यह परम्परा है कि विभिन्न देवी-देवताओं को पूजा जाता है, उन्हें प्रसन्न किया है—

नाचो म्हारा गनपत नाचोगा, पगां घूंघरा बाजेगा
गनपतिया तो म्हारा नाचेगा
पगां घूंघरा बाजेगा ।

× ×

ऊवा ऊवा सायब लाल जी अरज करे
पांच लाडू पंगा धरे

× ×

महादेव जी म्हें वन में अकेला
क्यूं कर रेस्यां जी !
पारवती जी हुकम करो तो
सहेल्यां बुलावां जी

× ×

भोला जी भण्डारी थां के दरसन आई जी
दरसन आई जी, शिव परसन आई जी
भोला जी भण्डारी थां के दरसन आई जी
अब तो फक उघाड़ो महादेव जी

× ×

अन्नपूर्णा माता—

देखो अनपूरण माता का मुजरा
हो देवी खेले छै जी अंगना
अंगना खेले झाला रख जी के अंगना

× ×

दियाड़ी माता—

दियाड़ी री माता ।
डावा डूंगर ले उतरया
बाड़ी तो सीचूं माता आपकी
कुशल करो परिवार की
दियाड़ी ओ माता ।

सती माता—

अपणी सती के भंवर सोवे
अपणी सती के भार सोवे
रखड़ी, झुटणा वेग मुलावो बोरा जी
सायब को डोलो चंदण नीचे ऊबो

× ×

इन्दरगढ़ की माता—

अवला थां के भंवर इन्दरगढ़ का
अवला थां के झालज इन्दरगढ़ का
अव तुम रमा झमा म्हारी माई जी
वेग पधारो मारी माई जी ।

× ×

वाला जी—

चांदनी सी रात छिटकर्‌या तारा
खड़्या छै छोटा ओवरा वाला जी
रोट को भोग लागे छै ज्यारे ।

हाड़ौती लोकगीतों में स्त्रियां विशेष चतुर दिखाई गई हैं । वह अपने चातुर्य से पति को सर्दी की ऋतु में परदेश जाने से रोकती है—

आज तो सियालो घणो सी पड़े, जो मेवाड़ राजा
जेसूं परणी छै आपरी नार
मती ना परदेश पधारो

और फिर वह समझाती है—

ऊनालो फेर आवेला, चौमासो पेर आवेला
सियालो फेर आवेला, पर गयो जोवन पाछो ना आवे
म्हारी जोड़ी रा रतन, सियालो राजन यूँ ही गयो जी।

× × × ×

सियालो आछो नहीं, वर्षा तो यह मन्त
सियाले मत साचरो, थांने कांमण वरजे कन्त ।

और इतनी अनुनय करने पर पति कहता है—

सोनेरी सगड़ी, जड़ाऊ रा दूदिया
तोई म्हारो जाड़ो नहीं जाइयो भंवर जी

× ×

रमझम करता लाडी सा पधार्या
जद म्हारो जाड़ो जाइयो भंवर जी

इसके अलावा बगड़ावतों के, तेजाजी के, कालाजी, भैरूँजी और कई स्थानीय वीर पुरुषों को जन-गायकों ने अपने कंठों में बैठाकर उन्हें अमर कर दिया है और साथ ही अपनी स्थानीयता की भी रक्षा की है।

हाड़ौती लोकगीत और संगीत

लोकगीतों में संगीत एवं काव्य का सम्मिश्रण होता है क्योंकि लोकगीतों में काव्यात्मक अभिव्यक्ति को संगीत के स्वरूप में ढ़ालकर ही प्रस्तुत किया जाता है।[1] ये बहुश्रुत होते हैं। लोकगीतों की मौखिक परम्परा में जिन गीतों का अस्तित्व आज विद्यमान है उसका कारण है—श्रवण संचित स्वर लहरियों का आकर्षण। जिन गीतों की गायन शैली अधिक सरल एवं मधुर होती है, उनका प्रभाव जन-मानस पर निरन्तर बना रहता है।[2] इन लोकगीतों में रस की धारा अविच्छिन्न गति से प्रवाहित होती रहती है। ये गीत क्या हैं रस के फव्वारें हैं, जिनका श्रोत कभी सूखता ही नहीं।[3] गीतों की सरसता ही इनकी अपनी विशेषता है। मधुर शब्द, परिचित भाव, गृहस्थी का मनोरम वातावरण, अवसर की उपयुक्तता, सब मिल कर इन गीतों में एक विचित्र तन्मयता उत्पन्न करने की क्षमता प्रदान करते हैं।[4]

संवेदनशील मानव-हृदय के भाव सहजतः जब मुख से अभिव्यंजित होते हैं, स्वर एवं लय बद्ध हो जाने के पश्चात् एक निश्चित 'धुन' गेय पद्धति में प्रगट

---

(१) परम्परा—लोकगीत अंक—पृष्ठ ५६
(२) मालवी लोकगीत—डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय—पृष्ठ ३६१
(३) भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन—डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय-पृष्ठ ३२८
(४) भोजपुरी ग्रामगीत—कृष्णदेव उपाध्याय—पृष्ठ ३०

होते हैं। इन लोक धुनों की संख्या अनन्त है। भारत के प्रत्येक जन-पद में जितने भी लोकगीत प्रचलित हैं, उनकी विशेष धुन हैं। ये धुनें निसर्ग सिद्ध हैं। इन्हीं लोक-धुनों में भारतीय संगीत के प्रत्येक राग छिपे हुए हैं।[१] यदि स्पष्टतः देखा जाय, तो प्रतीत होगा कि लोक-संगीत हमारे सामाजिक सम्बन्धों का संगीतमय इतिहास है। इस इतिहास में हमारी पीढ़ियों के मानवीय सम्बन्ध, रीति-रिवाज, विश्वास व धारणाएं, जीवन के मार्मिक अनुभव, प्रेम की मधुर कल्पना और समाज को एक सूत्र में पिरोने की लालसा का भावनात्मक प्रतिफलन रहता है।[२]

यदि हम लोकगीतों एवं उनमें प्रयुक्त धुनों का अध्ययन करें तो प्रतीत होगा कि शास्त्रीय संगीत का विकास निश्चित रूप से लोकगीतों पर आधारित है। लोक-धुनों में शास्त्रीय संगीत का ज्ञान होता है। कुछ नई धुनें ऐसी भी हैं, जिनके द्वारा नवीन रागों का निर्माण किया जा सकता है।[3] लोक धुनों में से राग के मूल स्वरों को लेकर राग-रागिनियों का निर्माण कर प्रदेश एवं जन-पद विशेष की गान पद्धति पर उनका नामकरण करना भी इस बात को सिद्ध करता है, कि शास्त्रीय संगीत का आधार लोक-संगीत ही है।[४]

लोक-संगीत समाज की एक सहज आवश्यकता है। अपने नैतिक मूल्यों, सामाजिक उत्सव त्यौहारों, रीतिरिवाजों और सामाजिक कार्यों के दौरान में यह संगीत जन्म लेता है। लोक-संगीत का सर्जक एक व्यक्ति नहीं होता, इसकी उद्भावना जन-समूह में प्रचलित औसत संगीतात्मक धुनों के आधार पर होती है।[५]

शास्त्रीय कलाओं एवं लोकगीतों में कुछ भिन्नता है। जहां शास्त्रीय कलाओं में विषय की विद्वता, विषय का गहन अध्ययन, विषय का सांगोपांग ज्ञान और इसी सम्पूर्णता के साथ विषय की अभिव्यंजना भी होती है, जब कि लोक-साहित्य, लोक-कला या लोकगीतों में ज्ञान का इतना भार नहीं ढोया जाता। यहां जीवन के अनुभव पर आधारित प्रतिदिन की सच्चाई को अत्यन्त सादे ढंग से कह देने का उपक्रम मात्र रहता है, अतः जहाँ शास्त्रीय काव्य या शास्त्रीय संगीत में विचारों का प्राधान्य रहता है, वहाँ लोकगीतों में अनुभूति और मार्मिक अनुभवों की प्रमुखता होती है। शास्त्रीय कलाओं का प्रयोजन मनुष्य के उस हृदय पक्ष को आलोड़ित करने का रहता है जो समाज की चेतना को जीवन की आवश्यकताओं

(१) मालवी लोकगीत—डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय—पृष्ठ ३६१

(२) साहित्य, संगीत और कला—कोमल कोठारी—पृष्ठ १७२

(३) भारतीय संगीत का मूलाधार लोक-संगीत (लेख)—कुमार गन्धर्व-सम्मेलन पत्रिका लोक-संस्कृति अंक—पृष्ठ ३१२

(४) मालवी लोक-गीत—डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय—पृष्ठ ३६१-३६२

(५) साहित्य, संगीत और कला—कोमल कोठारी—पृष्ठ १७२

के अनुरूप ढालने का प्रयत्न करता है, जबकि लोकगीत जीवन के मनोनीत क्षणों को अत्यन्त सहज और सरलता से कह देने में विश्वास करते हैं।[1]

इस प्रकार लोकगीतों को परखने पर लोक धुनों की निम्नलिखित विशेषताएं मानी जा सकती हैं—

१—चार पाँच स्वरों में सीमित (साधारणतः)।
२—लय बद्धता।
३—लय के अनेक प्रकार इन धुनों में से प्राप्त होते हैं।
४—लोक-धुन के स्वर समय के अनुरूप होते हैं।
५—सरलता।
६—धुन रचना प्रसंगानुकूल होती है।
७—एक धुन में अनेक गीत गाये जा सकते हैं।[2]

हाड़ौती लोकगीतों का अध्ययन करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनके भावों में जहाँ तलस्पर्शी गहराई, विलक्षण मार्मिकता, सहजता, सरलता एवं नैसर्गिक प्रवाह है वहाँ उनकी धुनें भी अपना विशेष स्थान रखती हैं। इसकी धुनों में जहाँ विशदता है, वहाँ कलेजे पर सीधी चोट करने वाली पैनता भी है। जहाँ वे अपनी विशेष स्वर लहरी से वायु मण्डल एवं वातावरण को समयानुकूल बनाने की क्षमता रखती हैं, वहाँ वे करुणा के अथाह सागर से निस्सृत मानव के नेत्रों से बाढ़ बहा देने की सामर्थ्य भी रखती हैं। ये गीत "सुख दुःख एवं आनन्द-उल्लास के भावों को प्रकट करने वाले लोकगीतों के शब्द संगीत की स्वर माधुरी के सहारे रस उत्पन्न करने की क्षमता रखते हैं।"[3] यदि हम समग्रतः विचार करें तो प्रधानतः निम्न धुनें हाड़ौती लोकगीतों की विशेष आकर्षक हैं—

गीत की प्रथम पंक्ति	प्रसंग	भाव सृष्टि
१. माथ ने भंवर घड़ाओ म्हारा वीरा जी.....................।	बहिन का निवेदन	हर्ष, उल्लास, प्रतिष्ठा का गर्व
२. चालो म्हारा बलमा उतावला रे म्हारी मां की जाई म्हारे वाट	भाई की बहिन के घर जाने की उतावली,	उत्सुकता, तत्परता स्नेहता।
३. ओबा या न भावे, म्हांने नींबू न भावे	प्रसूता की इच्छा	सौख्य, स्नेहता
४. बन्नी के बाबा जी ने ओढ़नी रंगाई	विवाह	हर्ष

(१) परम्परा—लोकगीत अंक—लोकगीत और संगीत—श्री कोमल कोठारी—पृष्ठ ५६—५७

(२) भारतीय संगीत का मूलाधार—लोक संगीत—कुमार गन्धर्व—सम्मेलन-पत्रिका लोक-संस्कृति अंक—पृष्ठ ३१२

(३) मालवी-लोकगीत—डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय—पृष्ठ ३६२

५. रंगरसिया जंवाई छो जी राज	जंवाई के प्रति	हास्य, प्रेम
६ ऊंचो चढ़ो ने जोवती, म्हेलां चढ़ी ने जोवती	पति के प्रति	तत्परता, उत्सुकता, स्नेह, प्रेम
७. नाचो म्हारा गनपत नाचोगा पगां घूंघरा वाजेगा	विवाह	मंगल भावना एवं मांगलिक आयोजन का उत्सव
८. कोटा के छाजा पे नौवत वाजे	विवाह	,,
९ भोला जी भण्डारी थां के दसरन आई जी	भक्ति	भक्ति निवेदन
१०. अपणी सती के भंवे सोवे	पूजन	भक्ति निवेदन
११. कासी का वासी म्हारी अरज सुणो मतवाला भैरूं म्हारी अरज सुणो	वन्ध्या-गीत	पुत्र लालसा, कातरता, विह्वलता
१२. पाणी भरन कैसे जाऊं जी नणदिया हो कुआ पै मच रही कीच री नणंदिया	होली	माधुर्य भावना
१३. घर बाबाजी का छोड़ धीयड़ का चली	विवाह (विदाई)	अवसाद एवं करुण भाव
१४. आज बनो जी आछ्या जाजो थें तो आछी भली लेयर आज्यो	विवाह (विदाई)	अवसाद एवं करुण भाव
१५. कलाळण वैरण भरलारी प्याला सेज पे घूमे मतवालो	रात्रि गीत	प्रणय-भाव
१६. प्रथम भक्त एक सप्त ऋषि जाने राम नाम गुण गाया है	शुकदेव प्रसंग	आध्यात्मिक
१७ काली चूनड़ ऊपर अगदाता घणा राजी	प्रणय	प्रणय निवेदन, मस्ती
१८. मत जाओ जी पिया परदेस	पतिगमन	विरहानुभुति
१९. बना थांकी आंख्यां कामणगारी	प्रणय	मस्ती, प्रणय,

रात्रि के शान्त एवं स्निग्ध वातावरण में जब इन लोकगीतों की रसीली कूक भर जाती है तो चतुर्दिक वातावरण एक अनोखी मस्ती से भर जाता है। बेटी की विदाई पर नयन झर-झर झरने लग जाते हैं और प्रणय निवेदन पर मारे अंग-अंग में स्फुरण एवं मस्ती की तरंग जगा देते हैं। इसी प्रकार मृत्यु-गीत पर जहाँ ये गीत विषाद की अतल गहराइयों में मानव को डुबोने की सामर्थ्य रखते हैं वहां प्रकृति-सम्बन्धी गीतों में विचित्र उल्लास से वातावरण को सौरभमय एवं सप्राण भी कर देते हैं। इन गीतों में जादू है, जो पत्थर को भी पिघला देता है, ये मानवता की पवित्र धरोहर हैं।

लोकगीतों में काव्य एवं संगीत—

काव्य एवं संगीत का सदैव से ही पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। संगीत की दृष्टि से राग किसी भी गीत के लिये प्राधान्य होती है। "राग केवल स्वरों का सुनियोजित क्रम मात्र ही नहीं है, बल्कि राग में विशिष्ट पकड़, विशिष्टवादी संवादी एवं अनुवादी विवादी स्वरों के अर्जित तथा वर्जित निरूपण भी हैं। वैसे ही आरोही-अवरोही, स्थायी अन्तरे आदि के शास्त्रीय नियम हैं।"[1]

इतना होते हुए भी लोकगीत के संगीत में लय की अत्यन्त सहज प्रवृत्ति का प्राधान्य है। यहाँ लय का तालात्मक शास्त्रीय विधान नहीं होता। शास्त्रीय संगीत में लय का विकास ताल की मात्राओं के सुनिश्चित गणन एवं गुणन की जटिलताओं में विभाजित रहता है, किन्तु इसके विपरीत लोक-संगीत में लय की सहज प्रवृत्ति मात्राओं के विशिष्ट भाग में विभाजित रहती है।[2]

हाड़ौती का एक लोकगीत है 'पाणी भरण कैसे जाऊं री नणंदियां'[3] जिसमें एक तरफ प्रेम, स्नेह, उमंग का छलकता हुआ दरिया अठखेलियां करता है, तो दूसरी ओर सलज्ज नवोढ़ा के हृदय में यौवन की स्निग्ध धारा प्रवाहित कर देता है। जहां तक इस गीत में आने वाले शब्दों का अर्थ है, वह तो ठीक है, लेकिन जब तक इन शब्दों एवं छन्दों को कहरवे की ताल पर स्थित करता हुआ संगीत नहीं मिलता, तब तक हम पूर्णरूपेण अभिव्यंजना का आनन्द उठा ही नहीं सकते। इस प्रकार के और भी कई गीत हाड़ौती-साहित्य में विद्यमान हैं, और उनकी धुनें इतनी शक्तिशाली हैं कि यदि उनकी पहली पंक्ति ही केवल तार वाद्य पर बजाई जाय, तो सुनने वाले का सिर आनन्दोतिरेक में मस्त सा हिलने लग जायगा।

लोकगीत एवं शास्त्रीय राग विधान—

शास्त्रीय संगीत की अपनी एक निश्चित प्रणाली है। दूसरी राग रागनियां

---

(१) साहित्य, संगीत और कला—कोमल कोठारी—पृष्ठ १७५
(२) साहित्य, संगीत और कला—कोमल कोठारी—पृ० १७५
(३) मैं धरती राजस्थान की—स्वर्गीय लक्ष्मीसहाय माथुर—पृष्ठ ७९

८. कोटा के छाजा पे नौबत बाजे	विवाह	,,
९ मीरा जी भण्डारी थां के दरसन आई जी	भक्ति	भक्ति निवेदन
१०. अपणी सती के भँवर गावे	पूजन	भक्ति निवेदन
११. कानां का वाली म्हारी अरज सुणो मतवाला सैंई म्हारी अरज सुणो	सन्ध्या-गीत	पुत्र लालसा, तन्- मया, विह्वलता
१२. पाणी भरन कैसे जाऊं जी नणदिया हां कुआ पे मच रही कीच री नणदिया	होली	माधुर्य भावना
१३. घर बाबाजी का छाड़ धींयड़ का चाली	विवाह (विदाई)	अवसाद एवं करुण भाव
१४. आज बनी जो आछूया जाजो थें तो आछी भली नेयर आज्यो	विवाह (विदाई)	अवसाद एवं करुण भाव
१५. कलाळण बैरण भरलारी प्याला सेज पे घूमे मतवालो	रात्रि गीत	प्रणय-भाव
१६. प्रथम भक्त एक सत कवि जाने राम नाम गुण गाया है	गुरुदेव प्रसंग	आध्यात्मिक
१७ काली चूनड़ ऊपर अणदाता घणा राजी	प्रणय	प्रणय निवेदन, मस्ती
१८. मत जाओ जी पिया परदेश	मतिगमन	विरहानुभूति
१९. बना थांकी आंख्यां कामणगारी	प्रणय	मस्ती, प्रणय, निवेदन
२० भंवर म्हांका बागां आज्यो जी	प्रणय	प्रणय निवेदन
२१. रात ठंडी चांदणी सेजां पे लेट जाऊँ रे	प्रकृति	प्रकृति-गीत
२२. उड़ उड़ रे सुआ तूं पचरंग्या	सन्देश	सन्देश-गीत
२३. सावण की मस्त घटा या छळवा लागी रे	ऋतु गीत	उल्लास एवं छेड़-छाड़
२४. थें तो चालो न सगो जी मंसाण	मृत्यु-गीत	विह्वलता, दुःख
२५. अरे छोड़ छोड़ म्हारा वन का राजा	शिकार गीत	विनय शिकार

रात्रि के शान्त एवं स्निग्ध वातावरण में जब इन लोकगीतों की रसीली कूक भर जाती है तो चतुर्दिक वातावरण एक अनोखी मस्ती से भर जाता है। बेटी की विदाई पर नयन झर-झर झरने लग जाते हैं और प्रणय निवेदन पर सारे अंग-अंग में स्फुरण एवं मस्ती की तरंग जगा देते हैं। इसी प्रकार मृत्यु-गीत पर जहाँ ये गीत विषाद की अतल गहराइयों में मानव को डुबोने की सामर्थ्य रखते हैं वहां प्रकृति-सम्बन्धी गीतों में विचित्र उल्लास से वातावरण को सौरभमय एवं सप्राण भी कर देते हैं। इन गीतों में जादू है, जो पत्थर को भी पिघला देता है, ये मानवता की पवित्र धरोहर हैं।

लोकगीतों में काव्य एवं संगीत—

काव्य एवं संगीत का सदैव से ही पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। संगीत की दृष्टि से राग किसी भी गीत के लिये प्रावान्य होती है। "राग केवल स्वरों का सुनियोजित क्रम मात्र ही नहीं है, बल्कि राग में विशिष्ट पकड़, विशिष्टवादी संवादी एवं अनुवादी विवादी स्वरों के वर्जित तथा वर्जित निरूपण भी हैं। वैसे ही आरोही-अवरोही, स्थायी अन्तरे आदि के शास्त्रीय नियम हैं।"[1]

इतना होते हुए भी लोकगीत के संगीत में लय की अत्यन्त सहज प्रवृत्ति का प्राधान्य है। यहाँ लय का तालात्मक शास्त्रीय विधान नहीं होता। शास्त्रीय संगीत में लय का विकास ताल की मात्राओं के सुनिश्चित गणन एवं गुणन की जटिलताओं में विभाजित रहता है, किन्तु इसके विपरीत लोक-संगीत में लय की सहज प्रवृत्ति मात्राओं के विशिष्ट भाग में विभाजित रहती है।[2]

हाड़ौती का एक लोकगीत है 'पाणी भरण कैसे जाऊँ री नणंदियां'[3] जिसमें एक तरफ प्रेम, स्नेह, उमंग का छलकता हुआ दरिया अठखेलियां करता है, तो दूसरी ओर सलज्ज नवोढ़ा के हृदय में यौवन की स्निग्ध धारा प्रवाहित कर देता है। जहां तक इस गीत में आने वाले शब्दों का अर्थ है, वह तो ठीक है, लेकिन जब तक इन शब्दों एवं छन्दों को कहरवे की ताल पर स्थित करता हुआ संगीत नहीं मिलता, तब तक हम पूर्णरूपेण अभिव्यंजना का आनन्द उठा ही नहीं सकते। इस प्रकार के और भी कई गीत हाड़ौती-साहित्य में विद्यमान हैं, और उनकी धुनें इतनी शक्तिशाली हैं कि यदि उनकी पहली पंक्ति ही केवल तार वाद्य पर बजाई जाय, तो सुनने वाले का सिर आनन्दोतिरेक में मस्त सा हिलने लग जायगा।

लोकगीत एवं शास्त्रीय राग विधान—

शास्त्रीय संगीत की अपनी एक निश्चित प्रणाली है। दूसरी राग रागनियां

---

(१) साहित्य, संगीत और कला—कोमल कोठारी—पृष्ठ १७५
(२) साहित्य, संगीत और कला—कोमल कोठारी—पृ० १७५
(३) मैं धरती राजस्थान की—स्वर्गीय लक्ष्मीसहाय माथुर—पृष्ठ ७६

की अप्रतिहत गति से संचालित है।[१] इसी प्रकार हृदय की धड़कन में भी एक ताल है, बोलने में लय का सन्तुलन है, हमारी चाल में एक प्रकार की ताल है। वास्तव में देखा जाय तो प्रतीत होगा, कि ताल ही संगीत का वह संबल है, जो मनुष्य के मन को आग्रहपूर्वक संगीत के आनन्द में लगाये रहता है। संगीत में, साथ सुनने वाले या गाने वाले के तादात्म्य का प्रारंभ भी, ताल की गति से होना संभव है।[२]

ताल को शास्त्रीय पक्ष से कई विभागों में विभाजित कर दिया है। इनमें मुख्यतः दादरा—६ मात्रा, कहरवा—८ मात्रा, झपताल—१० मात्रा, एकताल—१२ मात्रा, आड़ा चार ताल—१४ मात्रा, एवं त्रिताल—१६ मात्रा मे होता है। संपूर्ण राग-रागिनियां इन्हीं मात्राओं के आधार पर आधारित होती हैं। शास्त्रीय संगीत में तबला, पखावज व मृदंग ताल के लिये संगत में रहते हैं, जबकि लोक-गीतों में ताल की दृष्टि से ढोलक, ढोल, मजीरे, नगारे, चंग, डफ, अपंग आदि कितने ही वाद्य होते हैं।

हाड़ौती लोकगीतों में अधिकतर निम्न तालों का प्रयोग होता है—

१—दादरा—६ मात्राएं—धा धिन ना। धा तिन ना

२—चाचर—७ मात्राएं—धाक धिन धा धिन। धाक तिन धाधिन

३—तीवरा—७ मात्राएं—धिन ना धिन ना। तिन तिन ना

४—कहरवा—८ मात्राएं—धा गि न ति न क धि ना

ये तालें ढोलक तबले और नगारे के स्वरूप को स्पष्ट करती हैं। डफ व चंग पर अधिकतर कहरवा बजाया जाता है। मजीरोंमें भी निश्चित बीट्स (Beats) दी जाती हैं।

हाड़ौती लोकगीतों में अधिकतर तीवरा चाचर, अथवा कहरवा का प्रयोग किया जाता है। कहरवा की चलत धुन में एक मस्ती और आदमी को बहा ले जाने की असाधारण क्षमता है। उसके बीच-बीच में आने वाले बोल भी खूब मुक्त होकर प्रयुक्त होते हैं।

ताल का संगीत में वही महत्व है, जो भाषा में व्याकरण और विशेषतया 'यति' का है। व्याकरण द्वारा सफल वाक्य जिस प्रकार अपनी विवेकपूर्ण समाप्ति की ओर आमुख होता है, और वहीं उसे पूर्ण विकास की संगीत मिलती है, ठीक उसी प्रकार संगीत में सम गायक के लिये प्रतीक्षा करता है। 'सम' पर एक वाक्य की पूर्णता आती है, और भावों की अभिव्यक्ति के लिये उद्वेलित गायक इसी वाक्य की ओर चला जाता है।[३]

---

(१) परम्परा—लोकगीत अंक—पृष्ठ ६५

(२) लोक-गीत और संगीत—कोमल कोठारी—पृ० ६५

(३) परम्परा—लोकगीत अंक—कोमल कोठारी—पृष्ठ ६६

हाड़ौती लोक-संगीत सहज साधना, प्रचलित स्थान भाषा और सामाजिक जीवन में व्यक्त गीत परम्परा का सौन्दर्यात्मक प्रयोग है। हाड़ौती लोक संगीत का राग-रूपों तक पहुंचने का प्रयत्न करता हुआ वह शास्त्रीय संगीत की गहराई तक पहुँचने के लिये व्याकुल है और दूसरी ओर शास्त्रीय संगीत की नई बंदिशें हमेशा लोक संगीत के नाना रूपात्मक ध्वनि सौन्दर्य को ग्रहण करके स्वयं को समृद्ध बनाने के लिये लालायित हैं। दोनों ने एक दूसरे को बहुत कुछ प्रदान किया है[1] और भविष्य में करता रहेगा।

हाड़ौती लोकगीतों की गायन प्रणाली—

हाड़ौती लोकगीतों को यदि हम गायन प्रणाली के गवाक्ष से आंक कर देखें, तो हम इन्हें सुविधापूर्वक दो भागों में विभक्त कर सकते हैं।—१. प्रथम तो वे गीत हैं, जो सामूहिक रूप से विशेष अवसरों पर स्त्रियां (अधिकतर) एवं पुरुष मिल-जुल कर गाते हैं। ऐसे गीतों में पारिवारिक गीत, त्योहार गीत एवं रीति-रिवाज से सम्बन्धित गीत हैं, और २—दूसरी प्रकार के वे गीत हैं—जिनमें लोक कथाएं संगुफित हैं, जिनमें देवों, पितरों एवं महापुरुषों की श्रद्धापूर्वक अर्चना की गई है, इनमें मानव-हृदय के भावों को व्यक्त करने का प्रयत्न किया गया है। पहले प्रकार के गीतों को उचित अवसर पर एकत्रित होकर गाया जाता है, जैसे विवाह में, होली पर तथा मुण्डन आदि के समय तथा दूसरे प्रकार के गीत बुनियादी तौर पर पहले प्रकार से अलग हैं।

गायन-प्रणाली पर आधारित गीत

सामूहिक गीत	ऐकिक गीत	लोक कथाओं पर आधारित गीत
१—चंदण कटाऊं रे भूर्या पालकड़ी (बेटी की विदा)	१—हां ओ अलबेला भंवर	१—दियाड़ी माता
२—हालीड़ो हजारी म्हारो लाखां रो बेपारी (ऋतु गीत)	२—म्हारे चूल्हा की बुझगी आग	२—बगड़ावत
३—हस्ती ल्याज्यो आंकस दीज्यो (विवाह गीत)	३—अम्बा म्हाने दूर दीनीं परदेश	३—तेजाजी
४—सुण सुण रे कोटा का तेली (दुलहिन के उबटन करते वक्त)	४—भंवर म्हाके महल पधारोसा	४—नाग गीत
५—गोर गोर गणपत ईसर पूजे पारवती (देव गीत)	५—आज तो सावणियां री तीज	५—गोविन्दजी का गीत
६—भंवर म्हाने पूजण दो गणगौर (ऋतु गीत)	६—कसण गया परदेश, सख्यां सब कर रई हांसी रे	६—मीरां दीवाणी रो गीत
७—कलाली का झांझर बाजलाद (मद्य गीत)	७—मत जाओ जी पिया परदेश	७—रावण मंदोदरी का गीत

हाड़ौती लोकगीतों की संगीतमयता के उदाहरण

हाड़ौती में एक गीत है 'सावण री तीजां' जिसमें नायिका तीज का त्योहार आने पर पति से रूठ गई है। पति मना रहा है पर वह मान नहीं रही है। रात का ठंडा पहर, ग्राम का सुरक्षित वातावरण, सावणिया री तीज, दिनभर के गृह कार्यों से निवृत होकर कुछ वधुएं घर के आगे की चौपाल में बैठकर जब गीत के बोल उगेरती हैं, तो एक अजीब सा मोहक वातावरण छा जाता है।

आई आई सावणिया री तीज
गोरी ने मांड्यो रूसणो जी
म्हाका राज
प्यारी ने मांड्यो रूसणो जी म्हाका राज।
लाओ पिया रेशम, सोना की ल्यावो पाटली जी
म्हाका राज
रूपा की लाओ पाटली जी म्हाका राज
कहां से ल्यावां रेशम की डोर,
कहां से ल्यावां पाटली जी म्हाका राज
कोटा से ल्यावो रेशम-डोर
बूंदी से ल्यावो पाटली जी
म्हाका राज
घाल्यो घाल्यो आम्बोलां की डार
झूलो तो झूलां बाग में जी
म्हाका राज
झूलो तो डाल्यो चम्पा बाग में जी
म्हाका राज
हींडे हींडे घर की जी नार
हिंडावे मोही सायबा जी
म्हाका राज।

और धीरे-धीरे गीत की स्वर लहरियाँ मस्त, परन्तु खामोश वातावरण में तैरती हुई दूर-दूर तक चली जाती हैं, इसमें शब्द और अर्थ तरल होकर, ताल और लय के सहारे एक भावात्मक वातावरण उपस्थित कर देते हैं।

यदि इस उपर्युक्त गीत को यों ही सीधे सादे शब्दों में कह दें, तो इसका सारा सौन्दर्य लुप्त-सा प्रतीत होता है, यह एक साधारण सा काव्य ही होकर रह जायगा। "यदि संगीत के साथ इस गीत का सौ फीसदी आनन्द उठाया जा सकता है तो संगीत के बिना आनन्द का दस प्रतिशत भी नहीं।"[१]

(१) परम्परा—लोकगीत अंक—पृष्ठ ६३

हाड़ौती में एक भी गीत ऐसा नहीं मिलेगा जिसे संगीत का साहचर्य न मिला हो, देखिये एक रंगीली हाड़ौती नार किस प्रकार थिरकती हुई अपने पति से जैपुर के कपड़े मंगवाती है—

म्हां ने जैपुर को थें लूगड़ो, उड़ादो साजना
हिल मिल रंग खेलां
आंख्यां का सतारां बाजू
लागे घणा ही प्यारा म्हाने
सुसरा जी ने पागड़ी मंगवादो साजना
हिल मिल रंग खेलां।
मां ने मती करो हैरान
मां ने मती सतावो भरतार
म्हाने जैपुर को थें लूगड़ो उड़ादो साजना

यही नहीं, अपितु शिकार गीत में भी 'गीत' ने संगीत का दामन नहीं छोड़ा है। देखिये किस द्रुत गति से संगीत शब्दों के साथ अठखेलियां करता हुआ चलता है—

अरे छोड़ छोड़ म्हारा वन का रे राजा
कांई हठ लाग्यो रे
मगरो छोड़ रे
ऐ पातल्या रघुवीर सा मार्‌या रेसी रे
मगरो छोड़ रे।
किलांणसिंघ जी असल शिकारी
नित उठ खबरां देवांगा
अब छोड़ छोड़ म्हारा असल रंगीला
कांई हठ लाग्यो रे
मगरो छोड़ रे।

और शेरनी के अनुनय-विनय करने पर भी शिकारी मानता नहीं है अपितु स्पष्ट शब्दों में कहता है—

ऐ री सूता सेर निसंग पहाड़ां
जब जागे जद मारूं
जगा दे सिंघ ने
ए री थारा खाविन्द को
पंजो चाले
राजपूतां को हाथ
जगादे सिंघ कूं

हाड़ौती लोकगीतों की संगीतमयता के उदाहरण

हाड़ौती में एक गीत है 'सावण री तीजां' जिसमें नायिका तीज का त्योंहार आने पर पति से रूठ गई है। पति मना रहा है पर वह मान नहीं रही है। रात का ठंडा पहर, ग्राम का सुरक्षित वातावरण, सावणिया री तीज, दिनभर के गृह कार्यों से निवृत होकर कुछ वधुएं घर के आगे की चौपाल में बैठकर जब गीत के बोल उगेरती हैं, तो एक अजीब सा मोहक वातावरण छा जाता है।

आई आई सावणिया री तीज
गौरी ने मांड्यो रूसणो जी
म्हाका राज
प्यारी ने मांड्यो रूसणो जी म्हाका राज।
लाओ पिया रेशम, सोना की ल्यावो पाटली जी
म्हाका राज
रूपा की लाओ पाटली जी म्हाका राज
कहां से ल्यावां रेशम की डोर,
कहां से ल्यावां पाटली जी म्हाका राज
कोटा से ल्यावो रेशम-डोर
बूंदी से ल्यावो पाटली जी
म्हाका राज
घाल्यो घाल्यो आम्बोलां की डार
झूलो तो झूलां बाग में जी
म्हाका राज
झूलो तो डाल्यो चम्पा बाग में जी
म्हाका राज
हींडे हींडे घर की जो नार
हिंडावे मोही सायबा जी
म्हाका राज।

और धीरे-धीरे गीत की स्वर लहरियाँ मस्त, परन्तु खामोश वातावरण में तैरती हुई दूर-दूर तक चली जाती हैं, इसमें शब्द और अर्थ तरल होकर, ताल और लय के सहारे एक भावात्मक वातावरण उपस्थित कर देते हैं।

यदि इस उपर्युक्त गीत को यों ही सीधे सादे शब्दों में कह दें, तो इसका सारा सौन्दर्य लुप्त-सा प्रतीत होता है, यह एक साधारण सा काव्य हीं होकर रह जायगा। "यदि संगीत के साथ इस गीत का सौ फीसदी आनन्द उठाया जा सकता है तो संगीत के बिना आनन्द का दस प्रतिशत भी नहीं।"[1]

---

(१) परम्परा—लोकगीत अंक—पृष्ठ ६३

हाड़ौती में एक भी गीत ऐसा नहीं मिलेगा जिसे संगीत का साहचर्य न मिला हो, देखिये एक रंगीली हाड़ौती नार किस प्रकार थिरकती हुई अपने पति से जैपुर के कपड़े मंगवाती है—

म्हां ने जैपुर को थें लूगड़ो, ढड़ादो साजना
हिल मिल रंग खेलां
आंख्यां का सतारां वाजू
लागे घणा ही प्यारा म्हाने
सुसरा जी ने पागड़ी मंगवादो साजना
हिल मिल रंग खेलां।
मां ने मती करो हैरान
मां ने मती सतावो भरतार
म्हाने जैपुर को थें लूगड़ो उड़ादो साजना

यही नहीं, अपितु शिकार जीत में भी 'गीत' ने संगीत का दामन नहीं छोड़ा है। देखिये किस द्रुत गति से संगीत शब्दों के साथ अठखेलियां करता हुआ चलता है—

अरे छोड़ छोड़ म्हारा बन का रे राजा
कांई हठ लाग्यो रे
मगरो छोड़ रे
ऐ पातल्या रघुवीर सा मार्‌या रेसी रे
मगरो छोड़ रे ।
किलाणसिंघ जी असल शिकारी
नित उठ खबरां देवांग।
अब छोड़ छोड़ म्हारा असल रंगीला
कांई हठ लाग्यो रे
मगरो छोड़ रे ।

और शेरनी के अनुनय-विनय करने पर भी शिकारी मानता नहीं है अपितु स्पष्ट शब्दों में कहता है—

ऐ री सूता सेर निसंग पहाड़ां
जब जागे जद मारूं
जगा दे सिंघ ने
ए री थारा खाविन्द को
पंजो चाले
राजपूतां को हाथ
जगादे सिंघ कूं

सप्राण हो गया है, उसमें एक अजीब सी चमक एवं लय आ गई है। शब्दों की ताल पर थिरकती गीत की ध्वनि सारे वातावरण को संगीतमय कर देती है—

राजा रखड़ी घड़ावे सोना तोल तोल के
राजा सोनीडे सूं लाया मीठा बोल बोल के
राजा म्हांसूं बोल्या बोल, कलेजा छोऊ छोल के
वाकी मायल्यां सूं बोल्या हिवड़ो खोल खोल के
राजा टोपस घड़ावे, सोना तोल तोल के
राजा कलस घड़ावे सोना तोल तोल के।

आदि काल से दैनिक जीवन में ऐसे कितने ही अवसर आते थे, जब हमारे पूर्वज नाचते हुए 'सत्यम्' 'शिवं' 'सुन्दरम्' का गान किया करते थे, मातृ-भूमि का सजीव चित्र प्रस्तुत करते हुए जन गायक गा उठा था—

'यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति मर्त्यो व्येलवा'

जहां आनन्द मनाने वाले लोग गाते और नाचते हैं, सिद्ध होता है कि संगीत, जीवन नृत्य का काव्य से अभिन्न सम्बन्ध है, इन्हें अलग-अलग करके नहीं देखा जा सकता। और जीवन का उल्लास हमें हाड़ौती लोकगीत 'होली' में उसी सक्षमता से मिलता है—

पानी भरन कैसे जाऊं री नणंदिया
तो जमना पे मच रही कीच री नणंदिया
हो गंगा पे मच रही होरी री नणंदिया।
सासूजी का जाया, भोलो बाई सा रा बीरा
तो गोरी से खेलत होरी, हो नणंदिया
पाणी भरण कैसे जाऊं री नणंदिया
माथा ने थां के भंवर सोवे
कानां पे थांके झालज सोवे
तो रखड़ी री धम तोड़ी री नणंदिया
तो झुटणा री धम तोड़ी हो नणंदिया
पाणी भरण कैसे जाऊं री नणंदिया।

इसमें दो मत नहीं कि लोकगीत, लोक-संगीत के अभाव में केवल अर्थहीन ध्वन्यालाप मात्र है। लोक-मानस अनेक मनोभावों की धुनों में शब्दों का प्रयोग इसलिये करता है कि उनकी अभिव्यक्ति निरर्थक न हो। या यों कहिये, कि सार्थक शब्दों के माध्यम से धुनों के सहारे लोक-भावों को नैसर्गिक विकास मिलता है।[१]

मानवता का बहुमूल्य इतिहास, इन नृत्यों के एक-एक ताल, रहस्य गीतों के एक-एक स्वर में निहित है।[२] जो हो, गीत, संगीत और नृत्य तीनों ही लोक मानस

(१) भारतीय लोक-साहित्य—देवेन्द्र सत्यार्थी—पृष्ठ ७७-७८
(२) बेला फूले आधी रात—देवेन्द्र सत्यार्थी—पृष्ठ २००

की पूरक अभिव्यक्तियाँ हैं। तीनों ही एक दूसरे से पृथक् नहीं की जा सकती। जहाँ हर्षोल्लास का सामूहिक रूप प्रगट होता है, वहाँ तीनों ही संयुक्त होकर व्यक्त होती हैं।[1]

समग्रतः दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट होता है कि हाड़ौती लोकगीत की देह शब्दमय है, तो उसकी आत्मा संगीत। और संगीत के बिना उसका जीवन निरर्थक है। फलस्वरूप हाड़ौती लोकगीत और संगीत का अभिन्न साहचर्य है।

हाड़ौती लोकगीतों में छन्द योजना

छन्द भावों का आच्छादन करने के कारण छन्द (छादनात्) (छन्द) कहा गया है। इनका उपयोग शब्द योजना को मर्यादित करने के लिए होता है। वस्तुतः छन्दों के चोखटे में शब्द ही नहीं भाव भी मर्यादित हो जाते हैं। लोकगीतों में भावों को आच्छादित करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। उनमें भावों को उन्मुक्त रूप से नैसर्गिक शैली में व्यक्त किया जाता है। जहाँ तक साहित्यिक मर्यादा का प्रश्न है, लोकगीतों में मर्यादा का अभाव नहीं होता है। हाँ, ऐसी मर्यादा का अभाव हो सकता है जो प्रबन्धादि के बन्ध के समान उन्हें बाँध सके।

हाड़ौती गीतों में लय की ही प्रधानता है। लय के सामने छन्द के बन्धन को किसी प्रकार का महत्व नहीं दिया गया है। उदाहरणतः एक गीत की पंक्तियां देखिए—

चन्दा ताणे चाँदणी र, ऊभी सरवर पाल।
कांटो लाग्यो प्रेम को, आंख्या बवे पनाल ॥१॥

लय से स्पष्ट है कि यह दोहा छन्द है जिसमें मात्रादि के प्रयोग में शास्त्रीय बन्धनों को स्वीकार नहीं किया गया। परन्तु लय की दृष्टि से ये पंक्तियाँ सर्वथा मर्यादित हैं।

पीपल धाल्यां घाव बरामण मारिया।

यह सोरठ छन्द का लोकगीतों की लय में ढला हुआ स्वतन्त्र प्रयोग है।

सावण हरिया, भादव दही
क्वार करेला, कातग मही।

यह पंचाक्षर छन्द है जिसमें प्रथम चरण में लय को सुरक्षित रखते हुए ६ अक्षरों का प्रयोग किया गया है।

हाड़ौती लोकगीतों को इस लय स्वातन्त्र्य को ध्यान में रखते हुए हम गीतों के छन्दों को लयात्मक गीतियां ही कह सकते हैं। प्राकृत व अपभ्रंश गीतियों में इनका मूल तो खोजा जा सकता है, परन्तु इन भाषाओं का साहित्य इतना लुप्त हो गया कि प्राप्य साहित्य के आधार पर इस कार्य में सफलता स्वल्प मात्रा में ही होगी। हाँ, संस्कृत नाटकों के बीच-बीच में प्रयुक्त गीतियों से इनका पूर्ववर्ती रूप

(१) भारतीय लोक-साहित्य—देवेन्द्र सत्यार्थी—पृष्ठ ८२

अवश्य स्पष्ट हो जाता है। अतः हम हाड़ौती गीतों के छन्द को लयात्मक गीति या प्रगीत छन्द ही कह सकते हैं।

हाड़ौती लोकगीतों में अलंकार विधान

हाड़ौती लोकगीतों में किसी शब्द-चित्र को और अधिक स्पष्ट करने के लिये, सूक्ष्म अनुभूति को रमणीय और सबल बनाने के लिये एवं लोकगीतों के मर्म को अधिक स्पष्ट उजागर करने के लिये लोक गायकों ने अलंकारों का प्रचुर मात्रा में उपयोग किया है। इन गीतों के अध्ययन से यह स्पष्ट लगता है कि अन्य अलंकारों की अपेक्षा हाड़ौती लोकगीतों में उपमालंकार का अधिक प्रयोग किया गया है। परन्तु लोक-गीतों में प्रयुक्त उपमालंकार की विशेषता यह है कि इससे गीतों में एक विचित्र प्रकार की ताजगी, सादगी, नवीनता एवं मौलिकता का पुट आ गया है। काव्य-जगत की अधिकांश उपमाएं कवि परम्परा युक्त होने के कारण बासी तथा फीकी सी प्रतीत होती हैं, परन्तु इन गीतों की उपमाएं वैसी ही ताजी हैं, जैसे ऊंचे वृक्षों से अठखेलियाँ करने वाली वन की वायु।[1]

उपमा—

घीयड़ म्हां की मूंदड़ी जी
जंवाई मूंदड़ा मेल्या काच
चिन्ता म्हां की कुण करे जी
पूत म्हारो हिवड़ो में को हार
चिन्ता म्हां की कुण करे जी।

मेरी घीयड़ (पुत्री) मूंदड़ा (एक आकर्षक अभूषण, जो हाथों में पहिना जाता है) के समान है, जिसमें जंवाई जी ने काच जड़वा दिये हैं। मेरी चिन्ता कौन करे ?

मेरा पुत्र हिवड़ा (गला) है, और बहू उसका हार है। मेरी चिन्ता कौन करे ?

मूंडो तो बनड़ी रो सूरज रो तेज
आंख्यां ज्यूं आम फली
नाक ज्यूं जांण सूआ पंखी
तिरछी व्है भूण कमांण
ओठ तो बनड़ी रो पान नागर रो
बाघड़ा हेमा रो गेड
पेट ज्यूं दीसे पिपल रो पानां
पगल्या केला थंभ।

---

(१) भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन—कृष्णदेव उपाध्याय—पृष्ठ ३२५

इसमें बहू की सुन्दरता को उपमाओं से स्पष्ट किया गया है। बहू का चेहरा इस प्रकार कान्तिवान हो रहा है, जैसे सूरज का प्रकाश हो, और आँख तो आम की फली के समान बड़ी हैं, नाक तोते की नाक के अग्रभाग के समान नुकीली है, और भौंह चढ़ी कमान सी तिरछी हैं। हे बहू ! तुम्हारे होठ, काटे गये पान के समान पतले, तुम्हारी बांहें सोने की लाठी के समान सुन्दर और सुवर्ण, तुम्हारा पेट पीपल के पत्ते की तरह कोमल एवं पतला और तुम्हारे पैर जैसे केले के सुन्दर स्तंभ हैं।

उपर्युक्त गीत में ध्यान देने योग्य बात यह है कि इसमें जो भी उपमान लिये गये हैं वे सब देहाती दुनियाँ से सम्बन्धित हैं, तथा वे देहाती सौन्दर्य के परिणाम प्रस्तुत करते हैं। पेट की उपमा पीपल के पत्ते से तथा पैरों की उपमा केलों के थंमें से देना कितना स्वाभाविक है।

ये विशेषताएं हाड़ौती समाज की सौन्दर्य-कल्पना की प्रतीक हैं। हाड़ौती जीवन में नुकीली नाक सौन्दर्य सूचक मानी गई है, इसी प्रकार होठों का पतला होना, पेट का कोमल व पतला होना विशेष सुन्दरता का सूचक माना गया है। कहना न होगा कि काव्य-जगत में ये उपमाएं बिल्कुल अपूर्व, अनूठी और मौलिक हैं।

श्लेष—

बागां रा भंवरा रे
म्हारो संगियो रस मद लोभीड़ो
रस मंगवाइयो भंवरा रे
वैरी रस ल्यायो थोड़ो थोड़
रस मद लोभी हो
सगरी नगरी आस लगाई हो भंवरा
कींकर बादूं रस थोर
रस मद लोभी हो।

स्वाधीन पति को कोई स्त्री कहती है, कि हे मित्र ! मैंने तो भँवरे को रस लेने के लिए भेजा था, लेकिन वह वैरी रस थोड़ा ही लाया। मेरे पास तो रस इतना थोड़ा है कि मैं किसे रस, रस में से बाँटूं, क्योंकि नगरी के तो जितने निवासी हैं, वे सब मेरे हितु हैं।

यहाँ पर भँवरा (भ्रमर और पति) तथा रस, मधु और प्रेम शब्द में श्लेष है जो सहृदयों के अंतःस्तल को स्पर्श करता है। सुन्दरी का आशय यह है कि उसके पास प्रेम इतना कम है कि वह एक पुरुष पति के अतिरिक्त अन्य पुरुष से प्रेम नहीं कर सकती। भंवर तथा रस शब्द ने इस गीत में जान डाल दी है।

रूपक—

सत सुकरत रो लियो घड़ल्यो
प्रेम डोर सूँ बांधू
हो बीरा हेत डोर सूँ जकड़ूँ
माथे भरूँ सुहाग
कुआ सूँ पाणी भर भर ल्याऊँ।

स्त्री कहती है कि सत्य और सुकीर्ति रूपी घड़ा है, इस घड़े से प्रेम-रूपी रस्सी के द्वारा माँग में सिन्दूर भर कर अच्छी तरह से पानी भर-भर कर लाऊँगी। अर्थात् प्रेम के द्वारा सुयश तथा सत्य का अवलम्बन कर मैं मोक्ष-रूपी पवित्र जल को लाऊँगी, जिससे मैं सहज ही में इस भरे सागर के पार पहुंच जाऊँगी।

वक्रोक्ति—

एक वन्ध्या स्त्री किस प्रकार से पुत्र प्राप्ति के लिए कालाजी से वचन-चातुर्य की ओट लेकर पुत्र प्राप्ति हेतु प्रार्थना करती है—

जी काला ! बागां जो बागां मूँ फिरी
जी काला ! सरवर सरवर मूँ फिरी
जी काला कठियन पायो हरियो रूँख
कँवर काला—कठियन पायो हरियो रूँख
कँवर काला-कूखड़ली वैरण होइ जी काला
म्हारे सुसरा जी जेठ जी यूँ केवें
जी काला—बांझण को मुखड़ो मत देखो
मूँ शरणे थांके आई जी

हे काला जी ! मैं प्रत्येक बाग में चक्कर लगा चुकी हूँ। प्रत्येक तालाब-तालाब को मैं परख चुकी हूँ, मुझे किसी ने शरण नहीं दी। कहीं मैंने शीतल छाँह नहीं पाई, कहीं मेरी तृप्ति नहीं हुई। मेरी कोख ही मेरी शत्रु बन गई है।

काला जी ! मैं तो अब आपकी ही शरण आई हूँ। मेरे ससुर और जेठ जी तो कहते हैं कि बाँझ का मुँह कौन देखे।

इस प्रकार से अपने वचन-चातुर्य एवं वाक्य पटुता से कालाजी को प्रसन्न कर लेती है, अप्रत्यक्ष रूप से वह पुत्र की याचना करती है। इसी प्रकार से एक आधुनिक हाड़ौती लोकगीत में आज के मिनिस्टर पर अच्छा व्यंग्य किया गया है।

सभा में किसी युवक तथा वृद्ध ने 'मिनिस्टर' का ध्यान उनके वायदों की ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया। व्यंग्यकर्त्ता व्यंग्य में कटुता भरकर कहता है—'महाशय ! यह बालक बुखार में है, इस वृद्ध की बुद्धि सठिया गई है, इस कारण ये ऐसी बातें करते हैं अन्यथा जो-जो वायदे आपने किये थे वे सब पूर्ण हो गये हैं।'

पटवारी, रोहणा, कानूनगो, हो गया म्हांके तावे
ऊँ दिण का थांका वे वादा सब हो गया छै साँचा
यो बालक नादान मालका जुर में रोठी माँगे
यो बूढ़ो साठियो वन्नाठियो, अनगल वातां हांके
यां वातां पे ध्यान न दो थें
यां सब की सब झूठी
घी दूध की नदियां वहवे
देव रमे घर घर में

'म्हां की अब थे फिकर छोड़ दो, मौज करो महलां में।' कहना न होगा जन-कवि ने वक्रोक्ति में जो सबक आज के वायदा भूल मिनिस्टर को दिया है, वह सहज ही भूल न सकेगा।

विनोद—

हाड़ौती लोकगीतों में स्थान-स्थान पर विनोद-प्रसंग मिलते हैं। इस विनोद की एक यह प्रमुख विशेषता है कि ये विनोद हास्यपरक होते हुए भी अश्लील नहीं हैं। 'जंवाई के गीत' विनोद का अच्छा वातावरण उपस्थित करते हैं—

म्हांका जी सिरदार जंवाई, थां ने गाल्यां न देस्यां जी
म्हांका जी उमराव जंवाई थां ने गाल्यां न देस्यां जी
गाल्यां न देस्यां, बुरा न वोल्यां रंगती रंग बतरास्यां जी
म्हांका जी सिरदार जंवाई
थां ने गाल्यां न देस्यां जी
म्हां का जी उमराव जंवाई
थांने गाल्यां न देस्यां जी
थांकी दादी, म्हांका बाबाजी
ढेल म्हेल में देस्यां जी
थांकी मैया, म्हांका दादाजी
ढेल म्हेल में देस्यां जी
म्हांका जी सिरदार जंवाई थांने गाल्यां न देस्यां जी
म्हांका जी उमराव जंवाई थांने गाल्यां न देस्यां जी
थां की नानी म्हारा नानाजी ने
ढेल म्हेल में देस्यां जी

× × ×

एक और अन्य गीत में—

रंग रसिया जंवाई छो जी राज
ऊभी साल्यां अरज करे
राज री दाद्यां वगसो जी राज
बावा जी म्हां का रंग करे ।
राज री काक्यां ने बगसो जी राज
राज री माम्यां ने वगसो जी राज
वीरा जी म्हांका रंग करे ।

रंगीले जंवाई ! आप नवजवान हैं, रसीले हैं । आपकी सालियां आप से एक प्रार्थना कर रही हैं । कृपा कर आपकी दादी को हमारे पास भेज दो, क्योंकि जिसे देखकर हमारे दादा को भी रंग चढ़ जायेगा । कृपा कर आपकी काकियाँ और मामियाँ हमारे भाइयों के पास भेज दें, जिससे ये रंगीले बनें ।

इस प्रकार विनोद भी इन गीतों में प्रचुर मात्रा में मिलता है ।

उपहास—

विनोद की अपेक्षा उपहास में विरोधी को नीचा दिखाने की भावना अधिक होती है । स्वयं निन्दा न करते हुए भी विपक्षी को निन्दित ठहराना इसका लक्ष्य होता है । आज के समाज को लक्षित कर एक श्रेष्ठ गीत उपलब्ध है ।

निर्वाचन का समय निश्चित हुआ । समस्त राजनैतिक दलों ने अपने-अपने मोर्चे संभाले । मंत्रियों ने भी अपना मुंह ग्रामों की ओर किया, उन्हें पैरों तले भूमि खिसकती नजर आने लगी । बेचारे आज के मिनिस्टर अपनी बात भी पूरी नहीं कह पाये थे, कि हाड़ौती अंचल के वासियों ने उनका उपहास करना शुरु कर दिया—

माथो हिला कँरिया किरसा
बात धणी की सांची
दूर देश की जोत टूटगी
नेता कुर्सियाँ बैठिया
जनम जनम का दुख मत्या अब
धन सूँ कोठा भरगिया
होया नाहर बलदिया म्हां का
गायां भैंस्यां हाथी
लीरक लीर अंगरखी उतरी
पाग मली रेशम की
कांई दुख पूछो थे म्हां का
में हो गया—राजा जी ।

पधारिये मिनिस्टर साहब ! बड़ी कृपा की आपने, हमारे गाँव में आकर। आपने जो वायदे किये थे, वे सब सही उतरे, हमारे लगान माफ हो गये। हमारे जनम-जनम के दुःख मिट गये और हमारे घर धन से—सोना चांदी से भरे ठठ मार रहे हैं। हमारे बैल तो शेर की तरह पुष्ट बनकर दहाड़ रहे हैं, गायें और भैंसें तो जैसे गजराज बनी द्वारों पर झूम रही हैं, पहिनने का कपड़ा और सिर की पगड़ी तो देखो, रेशम की बन गई है। आप हमारे दुःख क्या पूछ रहे हो, हम तो अब नवाब बने घूम रहे हैं।

कहना न होगा, भोले-भाले ग्रामीणों का उपहास कितना सशक्त एवं सप्राण हैं।

कटुक्ति—

कटुक्ति में शब्दों की ओट नहीं ली जाती, अपितु सारा विरोध-कथन सीधे शब्दों में होता है। हृदय का विषाद और रोष जितना ही गहरा होता है, उसका व्यक्तिकरण उतना ही तीव्र और एकनिष्ठ होता है। कटुक्ति के तीर सीधे जाते हैं और विषैले तथा अणियारे होने से लगते ही जलन करने लगते हैं। हाड़ौती लोकगीतों में कटुक्तियों का भण्डार भरा पड़ा है। नणद व सास के बोल, देवर की कटुक्तियाँ व ग्रामीणों के उपदेश कितने पैने हैं—कहा नहीं जा सकता। एक गीत में पर उपदेश कितने कुशल बहुरुपिये के साक्षात् रूप मिनिस्टर के प्रति कितनी गहरी कटुक्ति है—

राड़ न आछी
बड़ा बड़ा नेता आ आ म्हां ने समझावे
पंच कमेटी सूं छै म्हां की राड़ बुझावे
में मूरख करसां छां, अण जांण गांव का
सूझ बूझ म्हां में कांई न में ढांढा सा
पण म्हां में यो बोध
राड़ म्हां में यो बोध
राड़ छै खोटी
म्हां ने देवे सीख किन्तु आपस में भड़के
'वोट म्हांने दो वोट म्हांने' गंडक सा झगड़े
वोट लेर जां बाद न क्यूं साता सूं बैठे
'म्हूँ मंत्री बण जाऊँ न तू बण' आपस में रूठे
राड़ बड़ां की

ये नेता हमें तो शिक्षा देते हैं किन्तु आपस में झगड़ा करते वाज नहीं आते। 'वोट मुझे दो, वोट मुझे दो' यह कह कर आपस में ही कुत्तों की तरह झगड़ते रहते हैं। वोट लेने के बाद तो आराम से बैठना चाहिये, किन्तु यह भी नहीं। 'मैं मंत्री बनूं, तू मत बन' इसी पर रूठते हैं। क्या आप जैसे बड़ों को यह झगड़ा शोभा देता है।

श्लेष—

जहाँ एक ही शब्द के दो अर्थ प्रकट होकर विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होते हों, वहाँ श्लेष अलंकार होता है।

एक गीत में इसका प्रयोग सफलतापूर्वक व्यंजित हुआ है। एक नव-यौवना, जिसका पति परदेश चला गया था, श्रावण आ जाने पर, आकाश में काले-काले ऊदे-ऊदे बादल उमड़ घुमड़ कर छा गये देखकर, जब उसके पति नहीं आये तो वह क्या करे—संकोच के मारे वह श्लेष में कहती है—

घिर घिर घिर घन घन आयर
घिर घिर छाया मेघ रहूँ मूं क्यां जी
पर दीसे नी घनश्याम जी
घिर घिर छाया मेघ, रहूं मूं क्यां जी

उपर्युक्त गीत में घनश्याम के दो अर्थ हैं—१. काले-काले बादल और २. उसके पति।

बादलों की ओट में अपने पति के न आने की बात कह कर वह उदास सी हो जाती है।

ग्रामीण उपमान—

जहाँ लोकगीतों में विभिन्न अलंकार सफलतापूर्वक व्यंजित हुए हैं, वहाँ उनमें ग्रामीण उपमानों की भी प्रचुरता है जो कि एक प्रकार से अलंकार के अंग हैं इन उपमानों की यह विशेषता है कि ये उपमान ग्राम्य अंचल से ही लिये गये हैं। उनमें ग्राम की उपज है। उस माटी की सौंधी महक इनमें सर्वत्र लक्षित होती है। साथ ही ये उपमान मौलिक, अछूते एवं काव्य-जगत के लिये अनूठे हैं। कुछ उदाहरण देखिये—

हो राज थें डोडा मूं ऐलची
थां बिन रऊँ कियां मूं ऐकली

[हे प्रियतम ! आप और मैं अलग-अलग रह ही कैसे सकते हैं, आप डोडा (इलायची के ऊपर का छिलका) हैं तो मैं उसमें इलायची।]

घियड़, म्हारी मूंदड़ी जी हां जी
जंवाई मूंदड़ी मेल्यां कांच
चिन्ता म्हाँकी कूण करे जी।

(मेरी बेटी अंगूठी के समान है तो मेरा जंवाई उस अंगूठी में प्रयुक्त जाज्ज्वल्यमान प्रकाशित नग है।)

सप्तम प्रकरण

हाड़ौती के कुछ प्रबन्ध गीत

सप्तम प्रकरण

हाड़ौती के कुछ प्रबन्ध-गीत

हाड़ौती का लोकगीत साहित्य सभी दृष्टियों से समृद्ध है। इनमें जहाँ हर्ष एवं मिलन के सुखद संस्मरण है तो विरह-विदग्धा नायिका के उच्छ्वास भी; प्रेम एवं भक्ति की पावन गंगा प्रवाहित है, तो शान्त एवं वैराग्य की यमुना भी। एक ओर इसमें भक्ति का सागर ठाठे मार रहा है तो दूसरी ओर हास्य-विनोद की उत्ताल तरंगें भी अट्टहास कर रही हैं। जीवन के मोटे से मोटे एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म मनोभावों का सदैव अंकन जितनी सफलता एवं मार्मिकता से इन लोकगीतों में हुआ है उतना अन्यत्र किसी भी विधा में नहीं। इन लोकगीतों के अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि इनमें मात्र छोटे छोटे गीत ही नहीं है, अपितु ऐसे कई प्रबन्ध-गीत भी हैं, जिनमें अथ से इति तक पूरा इतिवृत्त गूँथा गया है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का ऐसा विश्वास है कि 'पद्य-बद्ध लोक-कथाओं को लिखने की परम्परा गुणाढ्य की बृहत्कथा-मंजरी से प्रारम्भ होती हैं'[1] यह तो लोक-कथाओं को पद्यबद्ध करने की परम्परा की बात, परन्तु यह मौखिक परम्परा तो न मालूम कितनी पुरानी है इसका क्रमबद्ध इतिहास प्राप्त करना ही दुष्कार्य है। डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय इसकी पुष्टि करते हुए लिखते हैं कि मौखिक परम्परा में जन-सामान्य की गेय लोक-कथाएं प्रत्येक युग की छाप लेकर इतिहास को कल्पना के धुंधले आवरण में छिपाकर न जाने कितने युगों से कल कण्ठों में प्रवाहित होती चली आ रही है।[2] फिर भी इतना अवश्य है कि ये गाथाऐं किसी भी रूप और उद्देश्य को लेकर चली हों, इन पर समाज एवं युग का प्रभाव व्यंजित होता गया हो, किन्तु उसके अन्तस्थ भावों में किंचित भी विकार न आने पाया। इनकी मूल आत्मा अक्षुण्ण एवं अप्रभावित रही। कंठस्थ होने के कारण यह जन-मानस के कंठों पर फिसलती रही, इसके फलस्वरूप उनकी भाषा में अन्तर अवश्य आया, मगर वह भी नगण्य ही, क्योंकि ये लोक-गाथाएं उन जाति एवं पीढ़ियों की धरोहर रही, जो अपने आपको, अपने समाज एवं स्वरूप को बहुत धीरे धीरे बदलते हैं। इन पर आधुनिकता का प्रभाव नहीं के बराबर रहता है, इसीलिये हम आज भी इन लोक-गाथाओं का रसास्वादन बड़ी सफलता के साथ कर सकते हैं।

---

(१) हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी—पृष्ठ ५६

(२) मालवी लोकगीत—एक विवेचनात्मक अध्ययन—डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय—पृष्ठ २२७

सप्तम प्रकरण

हाड़ौती के कुछ प्रवन्ध-गीत

हाड़ौती का लोकगीत साहित्य सभी दृष्टियों से समृद्ध है । इनमें जहाँ हर्ष एवं मिलन के सुखद संस्मरण हैं तो विरह-विदग्धा नायिका के उच्छ्वास भी; प्रेम एवं भक्ति की पावन गंगा प्रवाहित है, तो शान्त एवं वैराग्य की यमुना भी । एक ओर इसमें भक्ति का सागर ठाठे मार रहा है तो दूसरी ओर हास्य-विनोद की उत्ताल तरंगें भी अट्टहास कर रही हैं । जीवन के मोटे से मोटे एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म मनोभावों का सदैव अंकन जितनी सफलता एवं मार्मिकता से इन लोकगीतों में हुआ है उतना अन्यत्र किसी भी विधा में नहीं । इन लोकगीतों के अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि इनमें मात्र छोटे छोटे गीत ही नहीं है, अपितु ऐसे कई प्रवन्ध-गीत भी हैं, जिनमें अथ से इति तक पूरा इतिवृत्त गूँथा गया है ।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का ऐसा विश्वास है कि 'पद्य-वद्ध लोक-कथाओं को लिखने की परम्परा गुणाढ्य की वृहत्कथा-मंजरी से प्रारम्भ होती हैं'[1] यह तो लोक-कथाओं को पद्यवद्ध करने की परम्परा की वात, परन्तु यह मौखिक परम्परा तो न मालूम कितनी पुरानी है इसका क्रमवद्ध इतिहास प्राप्त करना ही दुष्कार्य है । डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय इसकी पुष्टि करते हुए लिखते हैं कि मौखिक परम्परा में जन-सामान्य की गेय लोक-कथाएं प्रत्येक युग की छाप लेकर इतिहास को कल्पना के धुंधले आवरण में छिपाकर न जाने कितने युगों से कल कण्ठों में प्रवाहित होती चली आ रही है।[2] फिर भी इतना अवश्य है कि ये गाथाऐं किसी भी रूप और उद्देश्य को लेकर चली हों, इन पर समाज एवं युग का प्रभाव व्यंजित होता गया हो, किन्तु उनके अन्तस्थ भावों में किंचित भी विकार न आने पाया । इनकी मूल आत्मा अक्षुण्ण एवं अप्रभावित रही । कंठस्थ होने के कारण यह जन-मानस के कंठों पर फिसलती रही, इसके फलस्वरूप उनकी भाषा में अन्तर अवश्य आया, मगर वह भी नगण्य हो, क्योंकि ये लोक-गाथाएं उन जाति एवं पीढ़ियों की धरोहर रही, जो अपने आपको, अपने समाज एवं स्वरूप को वहुत धीरे धीरे वदलते हैं । इन पर आधुनिकता का प्रभाव नहीं के वरावर रहता है, इसीलिये हम आज भी इन लोक-गाथाओं का रसास्वादन वड़ी सफलता के साथ कर सकते हैं ।

---

(१) हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी—पृष्ठ ५६

(२) मालवी लोकगीत—एक विवेचनात्मक अध्ययन—डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय—पृष्ठ २२७

डॉ० सत्येन्द्र ने इस प्रकार के प्रवन्ध-गीत को 'क्रम-संवृद्ध कहानी' की संज्ञा से विभूषित किया है ।[1] शरतचन्द्र मित्र ऐसी कथा की परिभाषा करते हुए लिखते हैं—

Accumulative drolls or Cumulative Folk tales are stories in which the narrative goes on by means of short and petty sentences, and, at every step of which all previous steps thereof are repeated, till at last the whole series of steps thereof are recapitulated,[2]

स्पष्टतः हाड़ौती लोक-गाथाओं में एक विशेष गतिक्रम एवं जिज्ञासात्मक विलक्षणता विद्यमान है जिनके माध्यम से कथा का प्रवाह सतत मन्थर गति से प्रवाहित होता रहता है ।

रुद्रट ने महाकथा लिखने के जो लक्षण बतलाये हैं, उनमें गुरु एवं देवता विशेषतः गणपति की वन्दना से कथा प्रारम्भ करने का विधान है[3], यही परम्परा हाड़ौती गाथाओं में सहज रूप से ही उपलब्ध है—

पहले र गणेसा संवरो
हिरदा में संवरो भवानी सारदा
गणपत कांई चढ़े, कांई चढ़े छः भवानी सारदा
एक गणपत लाड्डा को भोग
भवानी चढ़ दूध्या खोपरा................

और फिर कुल-देवता को नमस्कार कर उसका आशीर्वचन प्राप्त कर मूल कथा शुरू हो जाती है ।

भूतकाल संघर्ष-काल था, जिसमें मानव इतना व्यस्त एवं उसका मानस इतना आलोड़ित रहता था, कि उसका पूर्णमानस-प्रतिविम्ब सच्चाई के साथ इन लोक-गाथाओं में सरलतम अभिव्यक्ति के साथ उतरा है । कृषि-जीवन की व्याप्त वेदना, शोक एवं कातरता, इन गीतों के माध्यम से व्यक्त हुए हैं । इन गाथाओं में जीवन के संघर्ष, जय-पराजय एवं उत्साह के स्वर पूर्णतः अभिव्यक्ति के साथ अवतरित हुए हैं । लोक-रुचि ने अपनी भावनाओं को अक्षुण्ण रखने के लिये इतिहास का आधार अवश्य ढूंढ़ा है, किन्तु असाधारण पुरुष से सामान्य व्यक्ति का सम्बन्ध जोड़ने की चेष्टा में, युग-युगों के तीव्रगामी प्रवाह में जन-मानस की स्मृति इतिहास को सुरक्षित रखने में असमर्थ रही है, एवं शनैः शनैः इतिहास और व्यक्ति के नामों में कल्पना का असत्य मिश्रित हो गया है । इन कथा-गीतों में घटना, कथावस्तु एवं पात्र तो गौण रहते हैं, तथा धार्मिक विश्वास और जन मानस की मनोवैज्ञानिक

---

(१) व्रज-लोक साहित्य का अध्ययन डॉ० सत्येन्द्र—पृष्ठ १३
(२) उद्धृत—भारतीय लोक साहित्य—श्यामपरमार—पृष्ठ १७१
(३) श्लोकमहाकथायामिष्टान् देवान गुरूनमस्कृत्य—काव्यालंकार—पृष्ठ १६

अभिव्यक्ति के साधन-मात्र होते हैं, मुख्य रूप से तो इनमें जीवन के रहस्यमय व्यापार एवं जन-मानस द्वारा समझे गये कार्य-कारणों की व्याख्या भर होती है।[१] इन गाथाओं के इर्द-गिर्द गौप्य जीवन की स्मृतियां जुड़ी रहती हैं। 'ग्वाल जीवन एवं कृषि सभ्यता की शाश्वतधारा से स्फूर्जित बूंदें गीत-कथाओं के रूप में भूमि और समय की गति को अपने में समेट लेती हैं, इनमें जीवन-व्यापन करने की विधि एवं गौरवमय जीवन का निर्माण कर जीवित रहने का मार्ग-दर्शन भी रहता है।[२]

जीवन असंख्य घात-प्रतिघातों से आच्छन्न रहता है, जीवन में जहाँ हर्ष की तरंगें मचलती हैं, वहां दुख एवं निराशा का सागर भी। उन असंख्य घटनाओं में से कुछ विभिन्न घटनाओं को लेकर ये कथा-गीत रचे गये हैं। इन लोक-गीतों में करुणा, प्रेम एवं गृह-कलह आदि घटनाओं का गुंफित प्रकार साकार हुआ है। 'जन-सामान्य के जीवन की बहुमुखी धाराओं को कथा एवं कल्पना के सूत्र में बाँधकर परम्परा प्राप्त ज्ञान को अक्षुण्ण रखने वाली ये गीत-कथाएं विशेष महत्त्व रखती हैं। इनमें वीर पूजा का भाव सुरक्षित है, जहाँ मानवी-भाव-विकास का सहज एवं आदिम स्वरूप देखा जा सकता है। इसके साथ ही महाकाव्य एवं प्रबन्ध-काव्यों के विकसित रूप का प्रारंभिक एवं मूल स्वरूप इन लोक-प्रबन्धों में दृष्टि-गोचर होता है।'[३]

भरत ने महाकाव्य के जो लक्षण बतलाये हैं वे पूरे नहीं तो, अधिक से अधिक इन लोक-प्रबन्धों के लिये लागू होते हैं, इस दृष्टि से ये महाकाव्य की परम्परा के सन्निकट पाये जाते हैं। भरत के अनुसार—

१—महाकाव्य में उत्पाद्य या अनुत्पाद्य, कोई लम्बी पद्यबद्ध कथा होती है।
२—प्रसंगानुसार अवान्तर कथाएँ भी होती है।
३—जीवन की समग्रता के साथ, किसी प्रधान घटना, अलंकृति वर्णन, प्रकृति चित्रण आदि का वर्णन होता है।
४—नायक सर्वगुण सम्पन्न, महान, वीर, धीर, शक्तिमान एवं नीतिज्ञ होता है।
५—अन्त में नायक की विजय होती है।
६—मनुष्यकृत असंभव या अस्वाभाविक घटनाएं उसमें होती ही नहीं।
७—प्रारंभ मंगलाचरण से होता है।
८—कथा सर्गबद्ध तथा नाटकीय तत्वों से युक्त होती है।[४]

उपर्युक्त महाकाव्य के लक्षण देखने से प्रतीत होता है कि इनमें गिनाये

---

(१) मालवी लोकगीत—एक विवेचनात्मक अध्ययन—डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय पृष्ठ २३०
(२) Botkin-A treasury of Western Folklore-introduction Page 3.
(३) मालवी लोकगीत—डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय—पृष्ठ २३०
(४) नाट्य-शास्त्र—भरत मुनि।

अधिकांश तत्व लोक-प्रबन्धों के लिये लागू होते हैं इस दृष्टि से वे भारतीय आचार्यों द्वारा बताये महाकाव्य के लक्षणों से मिलते-जुलते हैं। एक प्रकार से वे महाकाव्य के गेय एवं संक्षिप्त रूप होते हैं। उदाहरणार्थ, हाड़ौती लोकगीतों के इन प्रबन्धगीतों जैसे तेजाजी, शुकदेव-जन्म आदि के नायक हो धीरोदात्त है, शुरू से आखिर तक लम्बी पद्यबद्ध कथा चलती है, बीच बीच में अवान्तर प्रसंग भी आते हैं। घटना के तारतम्य में मुख्य प्रसंग पूर्ण समग्रता के साथ व्यंजित होता है। नायक सर्वगुण सम्पन्न, महान वीर, धीर, शक्तिमान एवं नीतिज्ञ होता है। प्रत्येक लोक-प्रबन्ध का प्रारम्भ मंगलाचरण से हुआ है। इस प्रकार से इनकी परम्परा हम महाकाव्यों के साथ बाँध सकते हैं।

श्री चिन्तामणि उपाध्याय ने इन लोक-प्रबन्धों को बैलेड की प्रवृत्तियों के काफ़ी समीप माना है, उनके अनुसार भारत की गीत-कथाएं एवं यूरोप के परम्परा प्रचलित लोक-प्रबन्ध 'बैलेड' में प्रवृत्तियों की दृष्टि से बहुत कुछ समानताएं पाई जाती है। गेय-तत्व के साथ ही कथा-तत्व, कल्पना, कथा की प्रवाहमयी गति एवं निश्चित शैली के कारण प्रबन्ध-काव्य का आभास इन गीत-कथाओं में प्राप्त होता है।[1]

इन गीत कथाओं में निम्न प्रवृत्तियां विशेष रूप से व्यापक रहती हैं—

१—नायक की वीरता को प्रदर्शित करने के लिये विभिन्न विशालता-पूर्ण परिस्थितियां की कल्पना।

२—युद्ध में नायक ही के वीरता-पूर्ण एवं दुर्धषमय व्यक्तित्व का चित्रण।

३—नायक की अविरल प्रेम की वृत्ति।

४—युद्ध, प्रेम, नायक और खल-नायक का संघर्ष।[2]

इन प्रवृतियों में जन-मानस की आदर्श भावना प्रतिबिम्वित होकर जीवन का दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। 'भय एवं संकट की चरम स्थिति में वीरता एवं धैर्य, युद्ध में प्रचण्ड पराक्रम, प्रणय के मधुर जीवन में हार्दिक प्रेम बन्धन की दृढ़ता को बनाये रखने की कामना ही मानो जन साधारण का जीवन-दर्शन है। महाकाव्य की रचना जिन उद्देश्यों को लेकर की जाती है, उनकी पूर्ति इन गीत-कथाओं के द्वारा अधिक व्यापक रूप से होती है। गीत-कथाओं के अन्य लक्षणों में उनका महाकाव्य के निकट होना अधिक महत्वपूर्ण लक्षण है। यह इन गीतों की प्राथमिक एवं सर्वोपरी विशेषता है।[3]

इतिहास और लोक-गाथाओं में इतना साम्य होते हुए भी कुछ अन्तर है। समाज जहाँ अपने ज्ञान का मौखिक परम्पराओं से अर्जन करता हुआ कंठ में निवास

(१) मालवी लोकगीत, एक विवेचनात्मक अध्ययन—पृष्ठ २३१

(२) George Sampson—The concise Cambridge History of English Literature—Page 108

(३) पुराण मिति वृत्त मारकायिकोदाहरण—
धर्म शास्त्रं अर्थ शास्त्रं चेति इतिहासः ॥ अर्थशास्त्र ५।१४

करता हुआ ही शनैः शनैः बढ़ता रहता है वहाँ आज का इतिहासकार हृदय की अपेक्षा बुद्धि द्वारा ज्यादा संचालित रहता है। वह सत्य की जानकारी के लिये पहले की अपेक्षा अधिक सावधानी बरतता है। प्राचीन काल में जहाँ अनुश्रुतियों एवं मौखिक परम्पराओं की वीथियों से ही इतिहासकार का मार्ग प्रशस्त होता था, इनके माध्यम से ही वह इस जीवित सत्य के अस्तित्व को व्यापक रूप से ग्रहण करता था, और इसी दृष्टि को ध्यानगत रखते ही पुराण-साहित्य एक आदर्श अर्थ में इतिहास-वाची बन गया, क्योंकि पुराणों का आधार ठोस सत्य कम है, अपितु जनश्रुतियों का प्रभाव सर्वाधिक है। चाणक्य इतिहास की परिभाषा देते हुए उसकी वर्ण्य वस्तु के सम्बन्ध में लिखते हैं—'पुराण, इतिवृत्त, कहानी, उदाहरण, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि को इतिहास के अन्तर्गत ही समझना चाहिये'[१]

यह इतिहास के आधार की व्यापक दृष्टि है, परन्तु आज का बुद्धि-जीवी इतिहासकार पग पग पर तर्क करता है, उसे कल्पना के भवनों में न भटकाकर ठोस धरातल पर खड़ा रख कर आंकने के लिए व्यग्र है, और वह इतिहास के सूक्ष्मातिसूक्ष्म क्षण को भी सत्य की कसौटी पर आंकने के लिये लालायित है। इस दृष्टि से आज अर्थशास्त्र एवं धर्मशास्त्र का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व हो गया है। 'इतिहास के क्षेत्र में शास्त्रीय एवं विवेचनात्मक दृष्टि से उक्त विषय के शास्त्रों को सम्मिलित नहीं किया जा सकता'।[२]

यदि निष्पक्ष दृष्टि से देखा जाय, तो हम लोकगाथाओं एवं प्रचलित जनश्रुतियों को इतिहास से अलग करके देख ही नहीं सकते, क्योंकि इतिहास एवं जनश्रुतियां आपस में इतनी घुली-मिली हुई होती हैं कि उन्हें आज के इतिहासकार द्वारा विच्छिन्न करके देख पाना संभव ही नहीं है। 'कभी कभी तो इतिहास के प्रत्यक्ष प्रभाव भी जनता को आलोकित नहीं कर पाते। ऐतिहासिक व्यक्ति एवं स्थान के लिये साधारण ग्रामीण-जन अपना मत अलग से ही निर्धारित कर लेते हैं, और मन-कल्पित अज्ञान-जन्य अनेक कथाएं प्रचलित होकर जनश्रुति का स्वरूप धारण कर लेती हैं। इतिहास की कुछ ज्वलन्त घटनाएं भी लोक-श्रुतियों में इतनी प्रच्छन्न हो जाती हैं कि उनका प्रकृत ज्ञान भी धूमिल हो जाता है।'[३]

इस प्रकार से यह स्पष्ट है कि इन लोकगाथाओं एवं इतिहास में पार्थक्य कर पाना सहज संभव है। एक दृष्टि से ये इतिहास के सत्य रूप की धूमिल प्रतिकृति हैं जिस पर समाज एवं समय की गर्द जम गई है और लोक-मानस-कंठों से फिसलती इनमें कई नवीन कल्पनाएं एवं विशेषताएं प्रच्छन्न रूप से जुड़ गई हैं। परन्तु यदि सत्य शोधान्वित दृष्टि से इस पर जमी गर्द को उधेड़ कर सावधानी-

---

(१) पुराण मितिवृत्त मारूयायिकोदाहरणं
धर्मशास्त्रं अर्थशास्त्रं चेति इतिहासः ॥अर्थशास्त्र ५।१४

(२) लोकायन—डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय—पृष्ठ ७१

(३) लोकायन—डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय—पृष्ठ ७१

पूर्वक निरीक्षण करें तो उसके नीचे इतिहास का ठोस सत्य सुवर्ण की भाँति दमकता हुआ हमें मिलेगा।

प्रबन्ध-गीतों का कथानक—

हाड़ौती प्रबन्धगीत कई दृष्टियों से स्तुत्य हैं इनमें जहाँ परम्परागत विचार-धारा के साथ आर्य-संस्कृति का समावेश है, वहाँ मौलिक दृष्टिकोण का भी अभाव नहीं है। इतिहास में चूड़ावत, शक्तावत, राणावत आदि राजपूत वंशों का खुलकर वर्णन हुआ है, वहाँ बगड़ावत भाइयों के बारे में नगण्य-सी जानकारी है। 'हीड़' के अन्तर्गत बगड़ावत भाइयों का पूर्ण विवरण प्राप्त होता है, इसका कारण शायद यह हो कि इन बगड़ावत भाइयों का प्रभाव राजस्थान में सर्वाधिक रहा हो। इसी प्रकार तेजाजी के बारे में भी पूर्ण जानकारी इन गीतों के माध्यम से हमें प्राप्त होती है।

अन्य लोक-गाथाओं की अपेक्षा हाड़ौती लोकगाथाओं में एक और विशेषता है, वह है दार्शनिक तत्व का अपरोक्ष प्रभाव। जन-मानस ने जब इन गीतों की रचना की होगी तब इनका ध्येय यह नहीं होगा कि वे इन गीतों में दार्शनिकता की भावना का समावेश करें, परन्तु अपरोक्ष रूप से इन गीतों में दार्शनिक धारा का जो समावेश हुआ है, वह स्तुत्य है। 'शुकदेव-जन्म' एक ऐसा ही सशक्त, सबल एवं सप्राण प्रबन्धगीत है कि वैसा गीत अन्यत्र मिलना दुर्लभ नहीं तो कठिन अवश्य है।

बगड़ावत चौबीस भाई थे, जो युद्ध करते मारे गये थे। इस बगड़ावत की 'हीड़' का कई दृष्टियों से महत्व है। चरित्र-चित्रण के साथ ही उस समय के इतिहास, भूगोल, समाज और राजनीति के बारे में भी इससे अच्छी जानकारी प्राप्त होती है। पीढ़ी दर पीढ़ी इसमें बराबर परिवर्तन होता आया है। बोलचाल की भाषा में होने के कारण इसमें नवीनता का समावेश होना स्वाभाविक ही है। परम्परागत यह महाकाव्य लोगों के जीवन का अभिन्न अंग बन गया है। जन्तर नामक वाद्य-यन्त्र पर जब बगड़ावत का गायन होता है तो संगीत और काव्य सजीव हो उठते हैं। गूजरों का भी अपना एक इतिहास है इनके उत्कर्ष का भी समय था। अपने समय में ये बड़े शक्तिशाली थे, इनकी अपनी संस्कृति थी। बगड़ावत महाकाव्य तो लोक-सम्पदा है। बगड़ावत किसी बाघाराव की सन्तति परम्परा में हुए थे, क्योंकि बगड़ावत शब्द का उल्लेख इतिहास-ग्रन्थों में मिलता है। बगड़ावत का प्रारम्भ इस प्रकार होता है—

पेली सुमरूँ गणपत महाराज
फेर सुमरूँ माता सारदा
गणपत ने चढ़ावां मोदक लाड़ला
सारदा फूलां री माल
हिरदा में विराजे गणपत देव
कण्ठे विराजे देवी सारदा।

बगड़ावत भाइयों की आपसी बातें—

चोइस बेटा एक आपका
ज्यांकी एक सूरत एक उणियार।
मीयां जी कहे छे मायां थे सुणों
सुणल्यो म्हारी बात
रण का चोक झड़ा दिया ज्यांमे
मस्ताक वाल दो छड़काये
चकरिया भंवरी की जाजम राल दो
ज्यांय बैठ भाइयां की जोड़
भरिया दरिखाना बेटा बाग का
ज्यां में मीयाजी करे छे जवाब
मायां जी दीन्हीं छे भोलानाथ न
ज्यारूँ करिदो जमिया प नाम।

इस प्रकार से बगड़ावत लोक-काव्य का श्री-गणेश होता है और धीरे धीरे कथा मर्म-सूत्र की ओर बढ़ने लगती है। बगड़ावत चौबीस भाई थे, इनमें तेजा सर्वाधिक बलशाली व समझदार था। उसने कहा—माया (धन-दौलत) का मोह करना व्यर्थ है, मामूली से द्रव्य के लिये झगड़े-टंटे करना अशोभनीय है इससे तो अच्छा है हम अपनी गायों को लेकर 'मनारिया की डूंगरी' चले जांय और वहां कुछ नहीं तो छाछ बेचकर ही कालयापन कर लेंगे। पर मियांजी न माने। उन्होंने तो तेजा को तड़क कर 'बनिया का बेटा' और कायर तक कह दिया। उन्होंने सुझाव दिया कि मौज करो, दारू पियो और मान्ड गाओ। अपने पास तो लाखों के घोड़े हैं, और सवालाख के ऊपर के पिलांण है। अपन तो युद्ध करेंगे और युद्धोपरांत 'रण-राव' की बेटी से शादी कर आवेंगे, जिससे कोई भी हमारी धरती पर आँख तक उठाकर न देख सकेगा।[१]

---

(१) इतनी सुनताई तेजो जवाब द
सुणज्यो भायां म्हारी बात
माया न ऊंडी गाड़ दो, कुल देख्यो काल
चढ़ चाला मनारिया की डूंगरी, बेच खावांगा छाछ
इतरो सुनतां तो मीयांजी जवाब दे, सुणो माया बात
तेजो वणिया को भानजो, चाले वांण्या री चाल
माया दीन्हीं छे भोलानाथ न बारावरसा क उदार
मीयां के माया भरलो तोवरा, चालो काठियावाड़
लाखां लाखां का लांवगा टारड़ा सवा लाखां का पलांण
दारू पिवगा फांतुड़ो कलाल की, ज्याम घुलरिया दाड़ दाख
राणी लांवगा रण का राव की, ज्याऊं हो जावगो जमिया प नाम

फिर उस नायिका का रूप वर्णन है जो कि अपने आपमें अद्वितीय है। सब से बड़ी विशेषता है कि ग्राम्य कण्ठों से स्वतः ही उपमान-उपमेय की झड़ी लग गई है जो कि अपने आप में अद्वितीय है।[1]

मीयां जी ने भाभी से बड़ी प्रार्थना की उसका रूप-वर्णन कर उसे प्रसन्न करने की चेष्टा की, परन्तु भाभी ने तो एक ही बात कही—

इतनी खहतां ई भाभी ज्वाब द
सुणले देवर बात
ज्यां की छाया देवर म्हारा बैठता
ज्यांकी काटो थां डाल
राणाजी लाग छ थांका भायला
वाकी ताको था नार
बढ़ सासू बढ़ साला हेली
तीजी भायला की नार
नाक सवा की सी चांच, जीब केवल को सो फूल
ये तीनूं ना देवर म्हारा छोड़ द
थांकी बहुत बढ़ाव भगवान

मगर मियांजी तो अपनी जिद पर अड़े थे, उन्होंने कहा—मुझे तो एक ही बात चुभ रही है कि मैं होली के दिनों में किसके साथ रंग खेलूं, किस पर पानी डालूं। भोजाई ने उत्तर दिया—रण मत करो, तुम मेरे साथ होली खेलो, महलों में केसर घोलावो, मैं तैयार हूँ।[2]

---

(१) गूजरां की बगओ भाभीजी, वाक आव छातियां की बास
पाता झाड़ रावड़िया, पिव अथर सूं छाछ
पेनळ है सा वाको पेट छ, चारस जसा पाव
राणी लावगा रण का राज की, पांय लौड़ी सोक
मूंगफली सी वाकी भाभी आंगल्यां
दांत ऊ दाड़म सा बीज।

(२) होद्यां भराव देवर म्हारा बादल मेल में
ज्यांमें केसर रंग दे गुलाय
देवर भौजाई होल्यां खेलता
रंग म्हैलां क मांही
म्हारी कळिया सूं देवर म्हारा कसक से
घालूं कस्यां फळगां वा सेल

इस प्रकार से कथा-सूत्र आगे बढ़ता रहता है। बगड़ावतों के तेइस भाई युद्ध के लिए जाते हैं, सिर्फ तेजा उनके साथ नहीं जाता, और वे रण-क्षेत्र में अपूर्व वीरता प्रदर्शित करते हैं और निश्चित राजकुमारो से शादी कर आते हैं।[१]

बगड़ावत का कथानक संक्षिप्त ही है परन्तु इस संक्षिप्त कथानक में ही बगड़ावत-वंशीय पूरा इतिहास आ गया है। विविध प्रसंगों की आयोजना, रोचकता की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है, साथ ही साथ इनमें कौतूहलता भी है परन्तु सर्वत्र इतिहास के तत्व इतनी खूबी के साथ पिरोये गये हैं कि इन लोक-गाथाओं से इतिहास बहुमूल्य सामग्री प्राप्त कर सकता है।

तेजाजी, रुक्मण, हिरणाकुस-प्रह्लाद, शिव-पार्वती आदि कथा-गीतों का कथा-सूत्र भी ग्रामीणों के लौकिक जीवन को सामान्य अनुभूतियों से गुंथा पड़ा है। 'विविध घटनाओं का समावेश यद्यपि कथा-प्रसंग से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रखता किन्तु जनता की भावनाओं का निदर्शन उसमें अवश्य हो जाता है'।[२]

धार्मिक कथागीतों में हिरणाकुस-प्रह्लाद की कथा को एक व्यवस्थित कथा में आबद्ध कर संजोया गया है, जिसके माध्यम से मानव को धर्म की ओर उन्मुख करने का सफल प्रयास किया गया है। कथा का प्रारम्भ ईश्वर-स्तुति से किया गया हैं।[3] कथा का संक्षिप्त सार निम्नलिखित है—

१—ईश्वर की प्रार्थना, व पाप को क्षय करने की आतुर प्रार्थना।

२—हिरण्यकश्यप पुत्र को समझाता है, कि वह व्यर्थ में हठ न करे। राम का नाम तो एक दुष्कर्म है उसे जितना जल्दी हो वहाँ तक भूल जाना चाहिये। तुम तो मेरे पुत्र हो, भावी राज्याधीश हो लो! हाथ में तलवार लेकर शहर में गश्त लगाओ, और जो भी राम का नाम लेता दिखाई दे, उसकी गर्दन तुरन्त उड़ा दो। युद्ध करना हो तो युद्ध भी करना, परन्तु हार कर मत आना।

३—प्रह्लाद दूतों से कहता है कि पूरे शहर में ढिंढोरा पिटवा दो कि कोई भी राम का नाम न ले, और सिपाहियों से कह दो कि जो भी राम

---

(१) रलमल वागेड़ भाई चाल्या
लीनी राय कुंवरी सांथ
वध वध बताई भायां वीरता
धज वज जनाई निज री धाक।

(२) मालवी लोकगीत—डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय—पृष्ठ २३३

(३) अपनी आपनी कला वरण प
आया आप ही रे नारायण
धर्‌यो है जमीं पर पांव।
मारी न्हातां पाप पाताल उतार्‌यो
दीदी धोली धजा उड़ाय।

का नाम लेता दिखाई दे, उसका सिर धड़ से उसी समय उतार दो। यह मेरे पिता-श्री का हुक्म है इसका पालन येन-केन-प्रकारेण होना अनिवार्य है।

४—प्रह्लाद को एक कुम्हारिन मिलती है। वह कहती है कि न्याव देते वक्त बिल्ली ने एक मिट्टी के बर्तन में बच्चे दे दिये थे, पर मुझे याद नहीं आया, और उसे पकाने के लिए उसके चारों तरफ आग लगा दी अब तो उसे राम ही बचा सकता है, न आप बचा सकते हो न आपके पिताजी। प्रह्लाद को उसकी बातें सुनकर क्रोध आ जाता है और कहता है—पगली, झूठ बोलती है, राम उसे कैसे बचा सकता है। वह कहती है—वह सन्तों का प्रतिपालक है, दुष्ट-दलन-कर्ता है, जो उसका नाम नहीं लेता है वह बाद में पछताता है। यदि बिल्ली के बच्चे जीवित नहीं निकलें, तो मैं स्वयं अपनी गर्दन अपने हाथों से उड़ा दूंगी।[1]

५—कुम्हारी भगवान से प्रार्थना करती है—हे प्रभु! जगदाधार!! भक्तों का कारज करने वाले! मुझ पर विपत्ति पड़ी है उसे दूर करो। यदि बिल्ली के बच्चों को जीवित नहीं निकाला, तो इस राज्य से आपका नामोनिशान मिट जायगा।

६—प्रह्लाद घर जाता है। मां को सारी बात आद्यन्त सुनाता है! माता बडी क्रोधित होती है, और कहती है कि तुमको किसने बहका दिया? ऐसे पुत्र से तो मैं बांझ ही अच्छी थी। बेटा! मैं तुम्हारे ही भले के लिये कह रही हूँ कि तुम राम का नाम लेना छोड़ दो। यदि तुझे अपना जीवन सुखकर बनाना है तो राम-नाम को छोड़कर हरदम राजा की बड़ाई करो। अपने पिता के सामने तो कभी भूलकर भी राम का नाम मत लेना।

७—हिरणाकुस रनिवास आता है, तो उसे सूना सूना लगता है। वह रानी से पूछता है कि क्या बात है? आजकल तुम उदास-सी, अनमनी-सी

---

(१) झूठ बात मत मानो जी म्हारी
तुरत सांवरा आये
नाम उन्हीं का जो नहीं लेवे,
वह मन में पछतावे
संता का प्रतिपाल छ मना
दु:ख का प्राण मटाव
अजी बाई राम बचावे बल्ली का बच्चा
दोनी पाव में
अतनी बाकी करो छो बड़ाई, मांक सांच नहीं आई
बच्चा जीवत नहीं कढ़े तो, हाथां सीस उड़ाय।

क्यों रहती हो ? रानी हाथ जोड़कर खड़ी हो जाती है, और कहती है कि प्रह्लाद राह पर नहीं चल रहा है, हरदम राम राम रटता है, कहीं तुम उसका अहित न कर दो इस भय से अनमनी हूँ। राजा उत्तर देता है कि रानी, तुम चिन्ता मत करो। मैं गुरुजी से इसकी विशेष शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध करता हूँ।

८—हिरण्यकश्यप प्रह्लाद को गुरु के सम्मुख ले जाता है, और उसे कहता है कि इसे हमारी कुल की शिक्षा दो। गुरु प्रयत्न करता है, परन्तु प्रह्लाद का तो एक ही उत्तर है कि वह राम के अलावा न तो कोई हरफ पढ़ना चाहता हैं और न पढ़ेगा।

९—गुरु प्रह्लाद को पकड़ राजा के पास उपस्थित करता है और कहता—हे राजा! इस बालक को पढ़ाना मेरे वश का नहीं हैं, इसने गुरुकुल के और भी छात्रों को भड़का दिया है।

१०—हिरण्यकश्यप प्रह्लाद को जल्लाद के हाथों सौंप देता है और उसे भयानक यंत्रणाएं देने को कहता है जिससे वह सही रास्ते पर आ जाय।

११—प्रह्लाद प्रभु से प्रार्थना करता है। नृसिह रूप धारण कर साक्षात् ईश्वर प्रकट होते हैं और वे दैत्यकुल का नाश कर प्रह्लाद की रक्षा करते हैं।

१२—फिर प्रह्लाद 'राम' नाम की उपयोगिता अपनी प्रजा को समझाता है।[1]

प्रह्लाद की पूरी कथा पर विचार करने से पता चलता है कि ग्राम्य जनता के मस्तिष्क में हिरण्यकश्यप एवं प्रह्लाद की पूरी कथा विद्यमान है परन्तु उनके उर्वर मस्तिष्क ने इतनी सफलता के साथ असत्य पर सत्य, और अन्याय पर न्याय की विजय दिखाई है कि भोले-भाले सरल-चित ग्रामीण अनायास ही राम की ओर आकर्षित हो जाते हैं और यही इन कथाओं का चरम ध्येय है।

---

(१) सूली बड़ी कठोर है, धार बड़ी है तेज
लगा कंवर प्रेलाद के फूलों की सी सेज
प्रभु बचायोजी सूली ऊपरे छू मूं दास तुमारो
सूली पे सूं बचवाया सना आण खड़ा गिरधारी
सांचो राम को नाम जगत में सुणज्यो सब नर नारी
माका घट में राम विराज्या
रक्षा कीन्हीं म्हारी
अब नहीं छोड़ूं राम नाम ने
यो ही नाम अधारी।

का नाम लेता दिखाई दे, उसका सिर धड़ से उसी समय उतार दो। यह मेरे पिता-श्री का हुक्म है इसका पालन येन-केन-प्रकारेण होना अनिवार्य है।

४—प्रह्लाद को एक कुम्हारिन मिलती है। वह कहती है कि न्याव देते वक्त बिल्ली ने एक मिट्टी के बर्तन में बच्चे दे दिये थे, पर मुझे याद नहीं आया, और उसे पकाने के लिए उसके चारों तरफ आग लगा दी अब तो उसे राम ही बचा सकता है, न आप बचा सकते हो न आपके पिताजी। प्रह्लाद को उसकी बातें सुनकर क्रोध आ जाता है और कहता है—पगली, झूठ बोलती है, राम उसे कैसे बचा सकता है। वह कहती है—वह सन्तों का प्रतिपालक है; दुष्ट-दलन-कर्ता है, जो उसका नाम नहीं लेता है वह बाद में पछताता है। यदि बिल्ली के बच्चे जीवित नहीं निकलें, तो मैं स्वयं अपनी गर्दन अपने हाथों से उड़ा दूंगी।[1]

५—कुम्हारी भगवान से प्रार्थना करती है—हे प्रभु! जगदाधार!! भक्तों का कारज करने वाले! मुझ पर विपत्ति पड़ी है उसे दूर करो। यदि बिल्ली के बच्चों को जीवित नहीं निकाला, तो इस राज्य से आपका नामोनिशान मिट जायगा।

६—प्रह्लाद घर जाता है। मां को सारी बात आद्यन्त सुनाता है! माता बडी क्रोधित होती है, और कहती है कि तुमको किसने बहका दिया? ऐसे पुत्र से तो मैं बांझ ही अच्छी थी। बेटा! मैं तुम्हारे ही भले के लिये कह रही हूँ कि तुम राम का नाम लेना छोड़ दो। यदि तुझे अपना जीवन सुखकर बनाना है तो राम-नाम को छोड़कर हरदम राजा की बड़ाई करो। अपने पिता के सामने तो कभी भूलकर भी राम का नाम मत लेना।

७—हिरणाकुस रनिवास आता है, तो उसे सूना सूना लगता है। वह रानी से पूछता है कि क्या बात है? आजकल तुम उदास-सी, अनमनी-सी

---

(१) झूठ बात मत मानो जी म्हारी
तुरत सांवरा आये
नाम उन्हीं का जो नहीं लेवे,
वह मन में पछतावे
संता का प्रतिपाल छ मना
दु:ख का प्राण मटाव
अजी वाई राम बचावे बल्ली का बच्चा
दोनी पाव में
अतनी वाकी करो छो बड़ाई, मांक सांच नहीं आई
बच्चा जीवत नहीं कढ़े तो, हाथां सीस उड़ाय।

ऊपर तेजाजी प्रबन्ध-गीत के कुछ अंश[1] दृष्टव्य है, जो अत्यन्त मार्मिकता से भरा हुआ है। कथा के बीच में आया बहिन-भाई का संवाद तेजा के विदा होते समय का कारुणिक प्रसंग और उसकी वीरता, घमासान युद्ध आदि के जो सजीव चित्र इस लोक-काव्य में उतरे हैं वे किसी भी भाषा के अच्छे इस लोक-काव्य से सफलतापूर्वक टक्कर ले सकते हैं।

---

(१) प्रबन्धगीत का नायक तेजाजी बड़ा ही वीर एवं तेजस्वी था वह जितना वीर था, उतना सहृदय भी। उसकी बहिन ससुराल थी, और उसके बहनोई उसे भेज नहीं रहे थे, आखिर उसने बहिन के ससुराल जाने की ठानी। वह मार्ग में जा ही रहा था कि उसे मीणों (एक जाति, जो लोगां, पद-यात्रियों को लूटमार कर उदरोपार्जन करती है परन्तु अब स्वतन्त्रता के उषः काल में यह जाति भी सभ्यता के प्रकाश में आ रही हैं) ने घेर लिया, अकेला तेजा क्या करता ? वह विवश था, फिर भी उसने कहा—मैं क्षत्रिय हूँ, रण से पीठ दिखाकर भागने वाला नहीं हूँ, परन्तु मुझे एक बार बहिन के ससुराल जाने दो, उसे पीहर के वृक्ष तो दिखला देने दो, फिर मैं स्वतः ही तुम्हारे पास आकर उपस्थित हो जाऊँगा। फिर तुम अपने मन की हविस निकाल लेना। मीणा ने उसे क्षात्र-वचन पर विश्वास कर छोड़ दिया। तेजा बहिन के ससुराल जाता है, और बहनोई से अनुनय-विनय कर बहिन को लेकर अपने घर की ओर रवाना होता है, परन्तु थोड़ा ही दूर जाता है कि उसे वासुकि सर्प घेर लेता है, वह उससे प्रार्थना करता है कि उसने क्षत्रिय धर्म की सौगंध खाकर मीणें को वचन दिया हैं अतः वह उन्हें जाकर ललकारना चाहता है, इसलिये वह उसे छोड़ दे।

वासुकि उसे छोड़ देता है और वह निर्विघ्नता-पूर्वक अपनी बहिन को अपने घर ले जाकर छोड़ देता है और फिर सबसे अन्तिम विदा लेता है—मां, बहिन, भाई, पत्नी आदि उसे बहुत समझाते हैं परन्तु वह नहीं मानता, उसे अपनी प्रतिज्ञा याद है।

आखिर वह मीणों के पास जा पहुँचता है और उन्हें युद्ध के लिये ललकारता है। मीणे तो तैयार ही होते हैं वे सब शस्त्र आदि लेकर उस पर टूट पड़ते हैं। वह अकेला वीरता-पूर्वक काफ़ी समय तक शत्रुओं से लड़ता है, परन्तु धीरे धीरे उसके सारे अस्त्र-शस्त्र टूट पड़ते हैं और वह निहत्था रह जाता है, फिर भी वह बिजली की तरह कड़क कर शत्रुओं पर गिरता है। उसके सारे शरीर से रुधिर के फव्वारें वह निकलते हैं और धीरे धीरे वह अशक्त होकर गिर पड़ता है, परन्तु कायर शब्द को अपने पास नहीं फटकने देता है। और उसकी सच्ची वीरता ही लोक-मानस की जिह्वा पर थिरकती आजतक अक्षुण्ण है, चिर-नूतन है, चिर-स्मरणीय है।

उपर्युक्त कथन से काफी सहमत होते हुए भी इतना अवश्य कहा जा सकता है कि ग्राम्य उपमानों का अपना सीमित क्षेत्र है, उनकी अपनी स्वयं की दृष्टि है, वे अपनी दृष्टि वहीं तक फैला सकते हैं जहाँ तक उनका अनुभव है और इसी कारण से काव्य में ऐसे ही उपमानों का प्रयोग कर सकते हैं जो उसके अनुभव क्षेत्र में होंगे। श्री चिंतामणिजी ने भी विवेचना करते हुए कहा है 'वस्तुतः उँगलियों के लिये मूंगफली की उपमा केवल आकृति-साम्य के कारण दी गई। हाँ, गुण क्रिया आदि पर विचार करने की आवश्यकता ही नहीं, क्योंकि जन-सामान्य की दृष्टि किसी भी वस्तु के स्थूल रूप को ग्रहण करती है। मूंगफली की तीन पेरी एवं उँगलियों की पैरियों में आकृति-साम्य है—और यही लोकगीतों की देन हैं'[1]

कथा-प्रबन्ध को रोचक बनाने के लिए उसके कथानक में कवि-प्रसिद्धि के साथ ही साथ थोड़े बहुत रूप से निम्नलिखित मान्यताओं का उल्लेख अवश्य करता है।

(१) नायिका का नख-शिख सरस रूप-वर्णन।

(२) प्रकृति छटा।

(३) बाग, कुएँ या पनघट पर नायक-नायिका का अनजाने ही मिलन।

(४) चम्पा बाग में घुड़ले बांध कर डेरा जमाना।

(५) गांव या नगर की नाइन को अपनी ओर मिलाना जो नायिका तक आती जाती हो।

(६) विरह का वर्णन।

(७) वज्जर किवाड़ों को खोलना व बन्द करना।

(८) नायक का अपने बल, शौर्य व चातुर्य का प्रदर्शन करना।

(९) पक्षियों के लिए सोने चांदी के पिंजरे, व उनसे संवाद पठाना।

(१०) सूरजपोल, कजरीवन, कामरूप री कामणी आदि शब्दों का प्रयोग।

(११) कथा के अंत में नीति-प्रद बातें।

इसके अतिरिक्त कथा में रोचकता उत्पन्न करने के लिये जन-जीवन के कुछ कौतुहलपूर्ण एवं मनोरंजक प्रसंगों को कथागीतों में स्थान दिया गया है। नट और बाजीगर के खेल, संपेरे के द्वारा पूंगी के संगीत से सर्पों के विविध करतब, जोगियों की करामात, जादू-टोने, जंतर-मंतर, परकाया प्रवेश एवं देह-परिवर्तन आदि मानव से सम्बन्धित मानवेतर सृष्टि के रहस्यों से सभी कथागीतों का कलेवर आवेष्ठित रहता है[2] इस प्रकार इन लोक-प्रबन्धों को सजीव तथा आकर्षक बनाने के साथ साथ चिर-नूतन रखा गया, जो आज भी सहस्रों ग्रामीणों की जिह्वा पर नृत्य करते हैं।

---

(१) मालवी लोकगीत—एक विवेचनात्मक अध्ययन—डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय—पृष्ठ २३६

(२) मालवी लोकगीत—डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय—पृष्ठ २३७

करता है इसी कारण उसके साहित्य में ऐसे अन्ध-विश्वासों का बाहुल्य पाया जाय, तो आश्चर्य क्या ?

हीड़—

भारतीय जन-जीवन त्यौहार प्रधान है, यहाँ के प्रत्येक धडकन में त्यौहार है, उत्सव है और इन त्यौहारों में सर्वाधिक सुचारुपूर्ण एवं भावना-प्रधान त्यौहार है 'दीपावली'। दीपावली लक्ष्मी पूजा के साथ ही श्री-सम्पन्नता एवं वैभव प्राप्त करने की सामाजिक कामना का एक मूर्तिमान स्वरूप है। दीप मात्र एक मृतिका का पात्र ही नहीं है, अपितु जीवन को सतत् जलते रहने देने की एक प्रेरणा है। अंधकार से आच्छन्न वसुधा जब गहरी नींद से सोई होती है तब दीपक ही मात्र अपनी पूरी शक्ति लगा कर उस अंधकार से संघर्ष करता है और इसी प्रकार वह जीवन में व्याप्त दैन्य, दारिद्र्य के अंधकार को भी चुनौती देने की प्रेरणा देता है, यह उसके जहाँ दुर्धर्ष पौरुष का सूचक है वहाँ हमें भी गतिशीलता देने का एक ज्योतिस्तंभ है।

हीड पूंजन की प्रथा संपूर्ण राजस्थान की तरह हाड़ौती में भी प्रचलित है। "दीपोत्सव की तरह हीड़ भी ज्योतिर्मय पूजा का एक स्वरूप हैं। दीपावली के अवसर पर हीड़ का पूजन होता है—मिट्टी के सकोरे में तिल्ली का तेल एवं कपास्ये रख कर ज्योति प्रज्वलित की जाती है। दीप अमावस्या की संध्या को दीपमालिका एवं लक्ष्मी-पूजन करते समय इस हीड़-दीप विशेष की पूजा भी की जाती है। पूजन के पश्चात् बांस या चपटी लकड़ी के डंडे पर हीड़ प्रस्थापित कर अपने संबंधी, परिचित एवं मित्रों के यहाँ पर जाते हैं, और 'हीड' के दीप में स्नेह प्रदान करने की आकांक्षा प्रकट करते हैं 'आई दिवाली मेलो तेल।' प्रत्येक द्वार पर हीड़ का स्वागत होता है, और हीड़ लाने वाले व्यक्ति को प्रसाद में मिष्ठान्न प्राप्त होता है। जिस समय हीड में तेल डाला जाता है, उसकी ज्योति अधिकाधिक प्रज्वलित हो उठती है"[१] और इस प्रकार से प्रत्येक सम्बन्धी, स्वजन के घर जाकर दीप को अधिकाधिक प्रज्वलित कर प्रगाढ़ स्नेह का परिचय देना हाड़ौती जन-मानस की निःछल हृदय की सरलतम अभिव्यक्ति है जो मौलिक होते हुए भी सामाजिक है, शिव एवम् सत्य से पूर्ण है, तथा विश्व-बन्धुत्व को प्रगाढ़ करने की परिचारिका है।

हीड़ का प्रारम्भ एक विशेष प्रकार से होता हैं, जिसमें शुरू से गणपति-वन्दना एवं नित्य-कर्म-वाचन होता है।[२]

---

(१) मालवी लोकगीत—डॉ० चिन्तामणी उपाध्याय—पृष्ठ २३८

(२) पहले र वन्या च संवर ज्यारे गोरी
पहले गोरी का नन्द गुणेश
हाली गे संवर हल हांकता, वाणिया हाट संजोग।

हीड़ मुख्यतः ग्राम्य संस्कृति से ओत-प्रोत उत्सव है, इसलिए यह अधिकतर गाँवों में ही मनाया जाता है शहरों में इसका आयोजन नहीं होता। हाड़ौती गीतों में दीपावली सम्बन्धी बड़े ही सुन्दर भाव-प्रधान चित्र मिलते हैं—

थां मो तो उछारो माता नागली
उछरो न छालर गाय
थां की उछेरी गाया ना चरो
राख छापर प ठौर
थाया सूं नापा चालिया, ग्या धनियां क पास
भरिया दरिखाना राजाराम का
श्याम नाया जोड़िया हाथ
हाथ जोड़िया नांय जवाब दे
सुणों धणियां भ्रो बात
मां की उछेरी गायां ना चर, चाल उछेरो बाला देव
हाथ चन्टयो पग में पावड़या
चाल्या बाला देव
नाप की उछेरी माता क्यों न चरो
थां तो उछरो न छालर गाय
नाप की उछेरी धनी म्हारा ना चरा
मान राखत छापर प ठौर

हाड़ौती प्रवन्ध-गीतों की सर्वाधिक विशेषता है उसमें विविधता का व्यापक प्रसार। ऐसे बहुत से कम प्रदेश होंगे जहाँ दीपावली ही की हीड़ के अलावा भी हीड़-काव्य मिले। हाड़ौती इस क्षेत्र में धनी है। दीपावली की हीड़ के अलावा बैल पूजते समय ही "गौमाता उच्छव हीड़" 'वृन्दावन विहारी की हीड़' आदि हीड़-काव्य भी मिलते हैं जो विषय-वस्तु, शैली, भाव, चित्रांकन एवं हृदयस्पर्शिता के रूप में सर्वाधिक स्पृहणीय है। बैल पूजते समय की हीड़ के कुछ स्थल अवलोकनीय हैं—

सामी स्याल्या म दिया जल
थारी नालूं छूं झुक झुक वाट
लाम्बा दीना न धराणी सराईना
कटड़ा लगाया जोत
तल तल धोलो मांडियो
मंडियो गजती रात
पगल्या न मांडी धोला पायल्या
गला न घूघर माल
मांडने व ली न दया धोला कापड़ा
थारा हाली के पंचरंग पाग

हरिया गोबर को दीनो गरलो
मोत्यां चौक पुराय
कोरे कोरे कळस्यां जल भर्यो
ज्यां क ऊपर पीलो पान
मोडी आई मालण बाग की
म्हारो धोलो न्हाले बाट

× ×

धोल्यो भाग्यो गोत न पैल्यो
पंचाली क पांल
गाड़ी गडगी र धोला रेत में
ज्यांक लाग्या धणिया का बोल
गाड़ी गडगी र धारी रेत में
भूरियाई जोय निकाल

देखने से प्रतीत होता है कि हाड़ौती लोक-काव्यों की भावनाएँ इतनी विकसित हो चुकी है कि उनका हृदय पशु-पक्षियों से बातें करता है, उनके सुख-दुख में अपने को भागी समझता है और उनसे घुलमिल कर स्वजन की तरह बातें करता नहीं अघाता। यही नहीं, वह हीड़ को लेकर जैसे—बन्धु-बांधवों के यहाँ जाता है, उसी प्रकार वह हीड़ से अपने बैलों की भी पूजा करता है। रोली-चन्दन लगाता है एवं उससे पूर्ण सहयोग की प्रार्थना करता है और यहीं आकर उसका मानस इतना विस्तृत हो जाता है कि वह देश, जाति, धर्म की सीमाएँ लांघ कर विश्व-बन्धुत्व तक परोक्ष रूप से पहुँच जाता है। यही इनकी विशेषता है जो सर्वोच्च है, श्लाघनीय है।

हाड़ौती जन-साहित्य में एक गीत है 'हीड़ो' इसमें भी अन्य लोक-प्रबन्धों की तरह प्रारंभ में मंगलमूर्ति गणेश स्मरण है, तत्पश्चात् नवोदित सूर्य-स्तवन—

पहली गजानन्द सुमरज्यो
ये तो गौरी का नन्द गणेश
एक तो सुमरो रे उगता भांण
या का उग्यां र उजाला होय

और उसके बाद हाड़ौती ग्राम्य अंचल में होने वाले दैनिक कार्यों का वर्णन शुरू होता है—

बेटी तो सुमरे राजपूत को
ऊ तो मांडे र घुड़ला पलांण
हाली तो सुमरेजी हल हांकता
ए तो हटवाड़ा महाजन लोग

खाली लो सुमरे छ खतवाड़ ने
ये तो ऐरण सुमरे छ लुहार
हाली तो हींदे छ हरिया पालणा
यो तो धोलो गऊ करे पेट

और उसके बाद उन पशुओं का स्मरण किया जाता है जो कि उसके दैनिक जीवन में सर्वाधिक उपयोगी है—

गऊ का जाया तो धोला हल बवे
ये तो घुड़ला न ढाब्या छ राज
यां ही तो जम्यां प ठाकर दो भला
एक तो घोड़ी र दूजी छ गाय।

और उसके बाद मूल कथा प्रारम्भ होती है—

भरी तो कचरयां भगवान की
ज्यामं नारद लिया छ बुलाय
मरत लोका म नारद जावज्यो
थां तो लाज्यो रमींड़ा की माय
हाथ में वीणा र पग में पावड़्या
नारद लाग्या छ बन्या की र गेल
झाड़ दो चरती र गाडर हेरली
वां न हेरी छ मींडा की माय
हाथ जोड़्या नारद बोलरया
गाडर याद करो री भगवान
कांई तो उजाड़ म्हांने कर लियो
म्हांसू कांई तो कहजी भगवान[1]

भेड़ अपने निर्दोष जीवन का परिचय देती हुई कहती है—

हरिया तो डूंगरा नारद म्हां चरां
म्हांने खाई छ खेजड़िया की छाल

मगर भगवान क्रोधित हो उसे श्राप दे देते हैं कि तुझे बलि-पशु होकर तलवार का झटका सहना पड़ेगा और उसके बाद नारद को मृत्यु-लोक में भैंस को बुलाने भेजते हैं, मगर वह भी पुत्र मोह में पड़कर कहती है—

काचा तो दूंधा का धाया वाछरू
घणो नहीं र झलेगो जी मार।

---

(१) भगवान ने दरबार में नारद को बुलाकर कहा, कि तुम किसी बच्चे की माँ को लाओ। नारद ने भेड़ को भगवान के पास चलने को कहा, भेड़ ने उत्तर दिया मेरा क्या अपराध है।

आसोजा पड़े करड़ा तावड़ा
देगा लल लल जीभां दे काढ़[1]

और भगवान उसे भी श्राप दे देते है—

मरत लोकां में भूगां जायजे
तूं तो जावणदशीश कटाए

और अन्त में ईश्वर जब गाय को बुलाते हैं और कहते हैं—

थारा तो बछवा री छालर देव दे
या ने सोपंगा री जम्यां को भार

और गाय का अनुपम त्याग यहां स्पष्ट हो जाता है वह हाथ जोड़ कर कहती है—

म्हारा तो बछवा जी भगवन लेवल्यो
यां न सौंपो जम्यां को को जी भार

और इस प्रकार गाय अपने पुत्र को सहर्ष भू का भार सहन करने को तैयार कर देती है। यही उसकी गरिमा है, पवित्रता त्याग एवं आदर्श और इस कारण वह मातृपद पाने की अभ्यर्थिनी है। 'स्वार्थ के आगे विश्व और देश तो दूर नगर और पड़ोस से भी समीप अपने प्रिय आत्मीय तक के लिये लोगों से तिनका ढीला नहीं होता। जिसमें अपने ही हृदय का अंश इतनी आसानी से, इतनी गहन जिम्मेदारी के लिये देकर गाय ने मां का जो श्रद्धेय पद प्राप्त किया है, वह बैलों की आवश्यकता न होने वाले युग में भी स्मरणीय रहेगा और ऐसी देवी मां के पुत्र भला सपूत क्यों नहीं होंगे ? हम आज भी देखते हैं, सगा पुत्र पिता का विरोध करता है, पत्नी पति से खिन्न जाती है, बेटी भी मन-पसन्दी का नारा लगाने लगी है; मगर बैल, यह सृष्टि का पालनहार कष्टों से बिना मुंह मोड़े, जीवन भर और मरने के बाद भी शिवम् (कल्याण-कारी) भावना से ही कार्य किये जा रहा है'।[2]

ईश्वर बैल की कर्त्तव्य-निष्ठा, सत्यता एवं विश्वास से अनुप्राणित होकर उसके आदर्श पशुपालक कर्त्तव्य पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं—

लांबी तो शाला रे धोले थारे दिया
बैल थां का घर घर मंगलाचार
लिप्या तो पुत्या रे थार ओवरा
थांकी ठांण मां म चौक पुराव
ठंडा पांणी की कूंड्या जल रहवे

---

(१) प्रभो ! मेरा बच्चा तो कच्चा दूध का पीने वाला है वह ऐसे कार्य का भार कैसे सहन कर सकेगा ? आश्विन मास की धूप कितनी तेज होती है ? यह तो बरगला कर जीभ निकाल देगा।

(२) स्वदेश ३० अक्टूबर १९५७ वर्ष २ अंक ४–५ पृष्ठ ८

थाकी ठाण्यां म नागर बैल
चुगणां चुगाव धोला थांने चूरमा
थां न ऊपर सूं घी की रे नाल।

और वह—

इन्द्रापुर सूं तो धोलो उतर्यो
ऊं क मोतीड़ा दमके ललाट

ईश्वर उसे हुक्म देते हैं कि तुम मृत्यु-लोक में जाना और जाट के घर पर जाकर ही ठहरना।[1] वह मृत्यु-लोक में उतरता है तो राजरानियां उसे रोकती हैं, वन्दना करती है, अपने यहाँ रुकने व विश्राम लेने का आग्रह करती हैं, परन्तु बैल का तो एक ही उत्तर है—

हुक्म नहीं छ दीनानाथ को
म्हांने हुक्म जाटां क रे द्वार

बैल सीधा जाट (कृषक) के यहाँ जाता है, जाट के हर्ष का तो कहना ही क्या? वह अपनी पत्नियों को पुकार कर कहता है—

उठे न गोरी, ए उठे न सांवली
उठ न बालूड़ा की माय
इन्द्रापुर सूं तो धोलो ऊतर्यो
थां देखो न ऊं का सिणगार
आंव न धराणीं कर ल आरत्यो
थारा धोला का दुख छ पांव
म्हूं कस्या करूं थारी धोला आरत्यो
म्हारी झोली में सूता नन्दलाल
नन्दलाला न सवाणो पालणो
थारा धोला का दुख ए पांव
लालो तो सवाण्यो हरिये पालणे
बांका धोलां के लागी ए पांय
रणक झणक धोलो ठमकरयो
ऊं की झूलां छ लाल गुलाल
मोत्यां री जड़्या छ सरांबड़ा
ऊं का सींगा प सूनां का खोल।

अत: स्वागत में—

चन्दन घसलो री मर बाटका
थां सूनां का थाल सजाव

(१) मरत लोकां में धोला आवज्यो
वां जाज्यो जाटां क रे द्वार।

और लो चंदन वगैरह भी तैयार हो गया—परन्तु अभी तक मालिन क्यों न आई ?

मोड़ी तो आई री हरखी मालणी
थां सूं वेगा आया री कुम्हार

पर बेचारी मालिन करती भी तो क्या ?

ऊंचो तो पेड़ खजूर को
ऊं प चढता तो लागे छ वार

और फिर जाट उसकी पूजा-आरती उतारती है—

धूल ले लर म्हारा धोलच्चा
या दूप घणी क रे द्वार

उस समय को भी शुभ हो घड़ी के शुकुन भी शुभ होते हैं।[१] उसके चरवाहे को भी सिंगारा जाता है[२]। कितना मंगलकारी दृश्य बन जाता है ! वह अत्यन्त सुन्दर लगता है[३] धीरे धीरे समय गुजरता है, फसल पक जाती है, भर भर कर खलिहानों में लाई जाने लगी[४]; परन्तु बैल चरने लग गया था, वह जरा देरी से पहुँचा।

अधीर मालिक ने पूछा:—

मोडो तो आयो रे म्हारा धोलच्या
थनं कस्यां रे लगाई एति वार

धणी उसके पैरां में नाले ठुकवा देता है[५], पर बैल सत्याग्रह पर उतर गया। उसने कहा—यह क्या मालिक ? मुझे तो मात्र घास ही खाने को देते हो और उस भैंस को खल वगैर खिलाते हो, अब आप उसे ही लाकर यहां जोतिये। वह तुम्हारा

(१) दाई तो चारस, दाई मोरड़ी
वह तो बोली छ मांझल रात

(२) मांडळ हालीई दीज्यो हरिया कापड़ा
वांका हाल्यां न पचरंग पाग

(३) धोली तो जोड़ी नारायण बलदां की
या तो सोहे छ हाल्यां क रे हाथ
या तो सोहे छ धणी क रे द्वार

(४) रण खेतां में गाड़ा घुल्रया
जद बलदां की होई छ पुकार

(५) अरडक मांडू र था रे खुर ताळां
थारे मुरडक मोंडे र नाल

हल खींचेंगी[1] और सुनकर किसान पानी-पानी हो गया। उसे बात जच गई, उसने वचन दिया कि भविष्य में ऐसा पक्षपात तुम्हारे साथ हरगिज नहीं होगा[2] और फिर वह मनोविज्ञान का सहारा लेता-सा उसकी प्रशंसा करता है—

गाडो घड़िया छ धोलां को मालवे
ई को शील घड़ी र अजमेर
धोल्यो तो पेल्यो रे दोनी घर जपो
देखां कुण कुण खींचे छ असराल अधिक)
दोनी छो धोल्या रे पेल्या पूत ज्यूं
थांकी सब विधि ल्यूंगो रे सम्हाल

और वे बैल हिम्मत कर अपनी मर्यादा का निर्वाह करते हुए काम पूरा कर देते हैं—

धोल्या रे पेल्या र दोनीं ई घर जप्या
थांक घर (जुआ) प आग्या छ भोलानाथ

और वे इस प्रकार से यह कार्य पूरा कर लेते हैं मानों इनके जुए पर स्वयं शिवशंकर आ विराजे हों। शिव की कल्याण भावना ही तो बैलों को जन-कल्याण की ओर प्रेरित करती है।

गीतों का यह खेत पर सत्याग्रह वाला अंश स्त्रियां भी अपनी लय में फसल काटने के समय गाती हैं। जब गेहूं की बालों को बाँधकर जो गुच्छा तैयार किया जाता है, उसे 'सावड़' कहते हैं। सावड़ की पूजा के पश्चात् ही अनाज खेत से उठाया जाता है, उस समय सावड़ के गीत चलते हैं। इस प्रकार सारा का सारा गीत 'हीड़' इस मधुरता से उतार-चढाव के साथ गाया जाता है कि सुनने वाला मंत्र-मुग्ध-सा हो जाय। इसमें कहीं वाद्य आदि नहीं बजाये जाते, क्योंकि लोग इस घर से उस घर फिर फिर कर एक दूसरे के बैलों का शृंगार व पूजा करवाने में सहयोग देते चलते हैं, साथ साथ गीत भी चलता रहता है। गीत में हर चरण के बोल शुरू होने से पूर्व और पश्चात् लम्बा अलाप ऐ ऐ ऐ ऐ हीड़ों का लिया जाता है।[3]

हाड़ौती लोकगीतों में प्रचुर मात्रा में ऐतिहासिक तत्व प्राप्त होते हैं। बगड़ावत प्रबन्ध-काव्य से हमें इतिहास के कई अज्ञात तथ्य उपलब्ध हैं जिसके माध्यम से हम यह ज्ञात कर सकते हैं कि बगड़ावत कौन थे? क्या थे? आदि आदि। इस प्रकार के गीतों से इतिहास-शोधन में दिशा-दृष्टि मिलती है। अकबर सम्बन्धित एक लोक-काव्य हाड़ौती क्षेत्र से प्राप्त हुआ है जिसमें वर्णित घटना की पुष्टि इतिहासज्ञ भी करते हैं। अकबर के समय राज्य की दशा कैसी थी? वह इस प्रकार से प्रस्तुत है—

वह दन छा दीन इलाही का
अकबर की फिरे दुहाई छी
सोनां का दूध कटोरां में
विष की घुल रही दवाई छी
अर गटां गटां हिन्दूराजा
एक प एक पीता चलग्या।

× ×

सब होश जोश पाताल गयो
अभिमान मान का दिन ढलग्या
सांभ टोला कतनो परणी
कतना की पाग पगां में ली
कतनां न मन्सबदारी दे
सिंहासन ले डोढ्या के दी
फिर बची खुची इज्जत प भी
मीना बाजार लगावाव छो
यूं बड़ी बड़ी मूंच्छ्या पर व अठी
लम्बी नाक कटाव छो

और कूटनीतिज्ञ चतुर अकबर भी सावण की मस्त फुहारों में मीना-बाजार का आयोजन करता, जिसमें सिवा अकबर के सभी औरतें होती।[1]

एक साल उस मीना-बाजार में कवि पृथ्वीराज की नवेली पत्नी ने भी भाग लिया[2] परन्तु उसके आंतर को शृंगार होते ही, घर से निकलते समय ही छींक हुई, मगर उसने इन अन्ध-विश्वासों की अवहेलना की—

(१) यूं उमड़ घुमड़ सावण आतो
मन मन में हूंश जगाव छो
ई मौसम में ही अकबर भी
मीना बाजार लगवाव छो
औरतां खुदो सोदो ले दे, मोहरां, कोड़ियां, पीसां में।

(२) बस नई नवेली आई पृथ्वीराज कवी की कौराणी।

गहणा को भरणाटो छाग्यो
साँम ही खोटी छींक हुई, बढ़तो पग भी झटको खाग्यो
सोची पड़दा को जीवन छ कुण रोज रोज बुलवाव छ
की वखत घड़ी सूँ एक बार दिल्ली में याँ दन आव छ

मगर वह कूटनीति के जाल में फँस गई थी, वह उस भोली-भाली सरल हृदय बालिका को लेकर मीना-बाजार गई और उसे भरमा कर भूल-भूलैया की ओर ले गई[1] और जब वह उधर डरती डरती, सभीत, चकित हरिनी की तरह चली तो उसने सामने अकबर को खड़ा देखा, उसे एकदम बोध हुआ—ओफ ! बांदी तो दगा दे गई[2] उसने जगदम्बा को स्मरण किया, और उस दिन वह पहली बार जरा-सी शंकित हुई थी, उसने उस दिन पहली बार जाना था कि औरत का क्षेत्र कितना सीमित साधनों से आवद्ध है—

ऊं दन जाणी क औरत की
दुनिया में कतनी ताकत छ
म्हूं यहाँ अकेली अबला छूं
माया में ऊभी आफत छूं
आंसूं की ताकत पर ही हूं
इज्जत को बोझ उठायो छ
बिजली की फुरती सूं होग्यो
सब बोच सिंहणी गरज उठी
खुल गया केश, विकराल भेष
चांमुडा भवानी भभक उठी
ज्यां ई दन लेखे वंधरी छी
झट हाथ कटारी प पुग्यो

दो लात, यवन प व्रजपात
चट् बोड़ फटाग्यो को टूटग्यो।
छाती प तो सदरूप काल, ज्यूं लन लप जीभ हलाव छो
कामी कुत्ता को ताकत प, सती को सत्त उगाव छो'
सिंहणी गर्जना कर बोली
क्यूं नागण ठुकराई थं नं
अणदागल असवारां की बेटी
हूं मेवाड़ा खून मं मं ह
हो गयो अन्त हिम्मत को मां गऊ हूं कर जोड़या। कहो नीच राजा का राजा न अवला सूं ऊं दन मांगी प्राण भीख और वह राजपूत बाला उसे छोड़ते हुए बोली—

गऊ घत्त ! जा कुत्ता ! माफ करयो
खद सिंह तुणकल्या खाव छ
ओछा पण ओछा को ठेको
असली न उठी चत लाव छ
पण भूल कदी मीना वजार
लगवावा को फिर मत करजे
तूं जश्या मंई मां कहस्यो छ,
हर पर-नारी ई 'मां' कहजे
अधरां में अटक्यो जी फिरयो
भाटा ज्यूं मूंड हिली 'हां' में
फिर चरणां में माथो धरयो
टप टप आंसू झरग्या वां में [1]

हाड़ौती लोक-गीतों में दर्शन—

लोक-गीतों के अज्ञात रचयिता दर्शन-शास्त्र के पंडित नहीं थे, और न उन्होंने विधिवत दर्शन का अध्ययन ही किया था, जिससे कि वे लोक-गीतों और विशेषकर प्रबन्ध-गीतों में दर्शन समावेश कर सके। प्रबन्ध-गीत प्रयत्न-वश निर्मित नहीं हैं, अपितु ये तो सहज स्वाभाविक उद्गार हैं, जो स्वतः ही भोले-भाले सरल ग्रामीणों के हृदतल से प्रसूत होकर आज भी जन-मन-मानस को आन्दोलित करने में समर्थ एवं सफल हैं।

हाड़ौती लोक-गीतों में यत्र-तत्र जो भी दर्शन का पुट आया है वह अनायास ही आया है। दर्शन का हमारे जीवन से अविच्छेद्य सम्बन्ध रहा है। जिस समय सम्पूर्ण संसार अज्ञानान्धकार में ग्रस्त था, उस समय भी भारत दार्शनिक गुत्थियाँ सुलझाने में व्यस्त था, क्योंकि यहाँ के मानव ऋषि-मुनि जीवन के उस

(१) स्वदेश—१२ मार्च सन् १६५७—वर्ष १ अंक २३

कर उसे पाने का प्रयत्न किया जाना चाहिये और वह एक जन्म से ही नहीं, अपितु अपने अधिकार के अनुसार साधन के द्वारा जो कुछ ज्ञान जीव एक जन्म में प्राप्त कर लेता है, उसका नाश मरने से ही होता, वह ज्ञान तो जीवात्मा के साथ साथ एक जर्जर शरीर को छोड़ कर दूसरे नवीन शरीर में चला जाता है और दूसरे जन्म में वह जब पूर्व-जन्म के उस संचित ज्ञान के आगे ज्ञान के मार्ग में अग्रसर होता है ।[1]

तत्पश्चात् यह इससे भी सूक्ष्म भूमि में प्रविष्ट करता है । अहं-पर का भेद भुला देने पर शान्ति तत्व की प्राप्ति होती है और वह परमतत्व को पहिचानने में समर्थ होता है और उसके सामने जन्म-मरण कुछ भी नहीं रहता और अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु वह सत्, चित् और आनन्द का सामंजस्य तथा सामंजस्य को पूर्णतः अपने जीवन में समाविष्ट कर लेता है ।[2] यही आत्मा का वास्तविक साक्षात्कार होता है, और जिसे चीन्हने पर निश्चय-पूर्वक उस परमतत्व ज्योतिस्वरूप के दर्शन हो जाते हैं जिससे साक्षात्कार होने पर जीव जन्म-मरण के पाश से छूट जाता है । हाड़ौती प्रबन्ध-गीतों में यही विचार पूर्णतः समाविष्ट होकर एकाकार हो गये हैं, जिसका आभास हमें 'शुकदेव जन्म' नामक प्रबन्ध-गीत में उपलब्ध होता है । हाड़ौती-गीत-साहित्य इतने विविध परिमाणों एवं विषयों से संग्रहित है कि उसमें सभी तरह के गीत पूर्णतः क्षमता के साथ उपलब्ध होते हैं परन्तु धीरे धीरे यह साहित्य प्रायः लुप्त होता जा रहा है क्योंकि यह बहुत ही कम लोगों को याद रहा है । यह प्रबन्ध-गीत (शुकदेव जन्म) मुझे काफ़ी परिश्रम के उपरान्त प्राप्त हुआ है, हाड़ौती के सुदूर अंचल में जाने पर एक ग्रामीण वृद्धा के मुंह से उक्त गीत सुनने को मिला, जिसे लिपि-बद्ध किया गया । इस गीत की एक और प्रति मुझे श्री स्वर्गीय लक्ष्मीसहाय माथुर की धर्मपत्नी से भी प्राप्त हुई । दोनों का मिलान करने पर बहुत कम पाठान्तर मिला ।[3]

गीत का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि इस गीत में भारतीय दर्शन का पूर्ण चित्रण पूरी क्षमता के साथ हुआ है । गीत का प्रारम्भ पूर्व परम्परानुसार ही हुआ है—

प्रथम भक्त सप्त ऋषि
यांन राम नाम गुण गया है
बाल मित्र जी मेरा सारा जन
पीछा ही उलटाया..........
× ×

---

(१) वासांसि जर्णानि यथाविहाय, नवानी ग्रहणाति न रोपराणी तथा शरीराय विहायजीर्णा, न्यन्यानि संयाति नवानिदेही—श्रीमद् भागवत ४।४
(२) भारतीय दर्शन—उमेश मिश्र—पृ० १२—१३
(३) स्वर्गीय श्री लक्ष्मी सहाय माथुर की हस्तलिखित 'शुकदेव जन्म' की प्रति लेखक के निजी संग्रहालय में उपलब्ध है ।

शिव का त्रिशूल संहार का सूचक है। वे उस महाशून्य में हुंकारा देने वाले की खोज में निकल पड़े। जीव पूरे संसार में, त्रैलोक्य में घूम आया, परन्तु उसे सर्वत्र संसार ही संहार दृष्टिगोचर हुआ। उसे त्रिशूल अपने पीछे दिखता ही गया, उस जीव को किसी ने मरण के सम्मुख रोकने की धृष्टता नहीं की—

ले त्रिशूल तलाश करी जब
सूवा होकर नाग गया ।
तीन लोक फिर आयो सूवा
कोई न वा कूं वेस दियो ।

आखिर उस जीव ने वेद व्यास के घर में शरण ली। फलतः, जीव का उद्धार धार्मिक पवित्र कार्यों से अनुप्राणित होते हुए समस्त संसार पर मातृ स्वरूप सौन्दर्य बनकर छाये तभी जीव का उद्धार हो सकता—

वेद व्यास जी की नार सतपणी
विन के री घर में जाय घुस्यो

परन्तु मरण तो सर्वत्र तैयार है। विश्वव्यापी काल का प्रसार कहां नहीं है?

सुणो सुणो व्यासण जी बात हमारी
चोर हमारो कहां घुस्यो

आखिर जीव ने निश्चय किया कि यदि मुझे आवागमन के फंदे से निकलना है, मृत्यु को जीतना है तो तपस्या से ही वांछित उद्देश्य की सिद्धि हो सकती है—

गरभ वास में बैठ्या सुकदेवजी[1]
राम रटे छ पद्मासन से
इन्दर को इन्द्रासण कांप्यो
कृष्ण विराजे सहसासण ।
ऐसा भक्त कौन हुवो म्हारो
कांप उठ्यो री इन्द्रासन ।

इन्द्र घबरा गया। क्योंकि उसके सिंहासन को खतरा पैदा हो गया था। शुकदेव की तपस्या उग्र थी, क्योंकि अन्तःकरण शुद्ध होने के कारण जहत् और अजहत् लक्षणों के द्वारा वे 'तत्' और 'त्वम्' के ऐक्य का ज्ञान प्राप्त कर रहे थे[2]। वे बाहिर निकलने से घबरा रहे थे, क्योंकि बाहर माया का आवरण बहुत घना था।[3]

---

(१) गरभ वास से यहाँ हाड़ौती प्रबन्धकारों का आशय शायद यह है कि जिस प्रकार गर्भवास में उलटे रहना पड़ता है, उसी प्रकार तपस्या में उल्टे लटक कर कठोर यातनाएं सहने से ही उद्देश्य प्राप्ति हो सकती है।

(२) छन्दोग्य ६-८-७

(३) बाहर तो यूं कैसे निकसूं
माया अपर बल लागी लाय।

शिव का त्रिशूल संहार का सूचक है। वे उस महाशून्य में हुंकारा देने वाले की खोज में निकल पड़े। जीव पूरे संसार में, त्रैलोक्य में घूम आया, परन्तु उसे सर्वत्र संसार ही संहार दृष्टिगोचर हुआ। उसे त्रिशूल अपने पीछे दिखता ही गया, उस जीव को किसी ने मरण के सम्मुख रोकने की धृष्टता नहीं की—

ले त्रिशूल तलाश करी जब
सूवा होकर भाग गया ।
तीन लोक फिर आयो सूवा
कोई न वा कूं बेस दियो ।

आखिर उस जीव ने वेद व्यास के घर में शरण ली। फलतः, जीव का उद्धार धार्मिक पवित्र कार्यों से अनुप्राणित होते हुए समस्त संसार पर मातृ स्वरूप सौन्दर्य बनकर छाये तभी जीव का उद्धार हो सकता—

वेद व्यास जी की नार सलपणी
विन के री घर में जाय घुस्यो

परन्तु मरण तो सर्वत्र तैयार है। विश्वव्यापी काल का प्रसार कहाँ नहीं है?

सुणो सुणो व्यासण जी बात हमारी
चोर हमारो कहाँ घुस्यो

आखिर जीव ने निश्चय किया कि यदि मुझे आवागमन के फंदे से निकलना है, मृत्यु को जीतना है तो तपस्या से ही वांछित उद्देश्य की सिद्धि हो सकती है—

गरभ वास में बैठ्या सुकदेवजी[1]
राम रटे छ पद्मासन से
इन्दर को इन्द्रासण कांप्यो
कृष्ण विराजे सहसासण ।
ऐसा भक्त कौन हुवो म्हारो
कांप उठ्यो री इन्द्रासन ।

इन्द्र घबरा गया। क्योंकि उसके सिंहासन को खतरा पैदा हो गया था। शुकदेव की तपस्या उग्र थी, क्योंकि अन्तःकरण शुद्ध होने के कारण जहत् और अजहत् लक्षणों के द्वारा वे 'तत्' और 'त्वम्' के ऐक्य का ज्ञान प्राप्त कर रहे थे[2]। वे बाहिर निकलने से घबरा रहे थे, क्योंकि बाहर माया का आवरण बहुत घना था।[3]

---

(१) गरभ वास से यहाँ हाड़ौती प्रबन्धकारों का आशय शायद यह है कि जिस प्रकार गर्भवास में उलटे रहना पड़ता है, उसी प्रकार तपस्या में उल्टे लटक कर कठोर यातनाएं सहने से ही उद्देश्य प्राप्ति हो सकती है।

(२) छान्दोग्य ६-८-७

(३) बाहर तो यूं कैसे निकसूं
माया अपर बल लागी लाय।

हरे राम कहो हरे कृष्ण कहो
राम नाम कहो हरे हरे
हरे मम् दोव, अंचल उपज्या
सो सो पांती आया है।

हाड़ौती जन-काव्य के सामने राम और कृष्ण का कोई द्वैत भाव नहीं है[1] और उसके पश्चात् वह गणेश राम आदि देवताओं का स्मरण करता है।[2]

इसके बाद मुख्य कथा प्रारम्भ होती है। पार्वती महादेव से तत्व ज्ञान का उपदेश सुनना चाहती है वह इसी चिन्ता में निमग्न है और साधक के लिये एकान्त स्थान की आवश्यकता रहती है फलस्वरूप महादेव और पार्वती दोनों वन में गये।[3]

शिवजी बोले संसार में तीन तत्व हैं 'क्षर, अक्षर और पुरुषोत्तम।' इस संसार के सभी जड़ पदार्थ 'क्षर' है। इसे ही अपरा प्रकृति, अधिभूत क्षेत्र, और अश्वत्थ कहते हैं[4] और इसी भाव को हाड़ौती में इस प्रकार बाँधा गया है—

शिव का त्रिशूल संहार का सूचक है। वे उस महाशून्य में हुंकारा देने वाले की खोज में निकल पड़े। जीव पूरे संसार में, त्रैलोक्य में घूम आया, परन्तु उसे सर्वत्र संसार ही संहार दृष्टिगोचर हुआ। उसे त्रिशूल अपने पीछे दिखता ही गया, उस जीव को किसी ने मरण के सम्मुख रोकने की धृष्ठता नहीं की—

ले त्रिशूल तलाश करी जब
सूवा होकर भाग गया।
तीन लोक फिर आयो सूवा
कोई न वा कूँ वेस दियो।

आख़िर उस जीव ने वेद व्यास के घर में शरण ली। फलतः, जीव का उद्धार धार्मिक पवित्र कार्यों से अनुप्राणित होते हुए समस्त संसार पर मातृ स्वरूप सौख्य बनकर छाये तभी जीव का उद्धार हो सकता—

वेद व्यास जी की नार सलपणी
विन के री घर में जाय घुस्यो

परन्तु मरण तो सर्वत्र तैयार है। विश्वव्यापी काल का प्रसार कहाँ नहीं है?

सुणो सुणो व्यासण जी बात हमारी
चोर हमारो कहाँ घुस्यो

आख़िर जीव ने निश्चय किया कि यदि मुझे आवागमन के फंदे से निकलना है, मृत्यु को जीतना है तो तपस्या से ही वांछित उद्देश्य की सिद्धि हो सकती है—

गरभ वास में बैठ्या सुकदेवजी[1]
राम रटे छ पद्मासन से
इन्दर को इन्द्रासण कांप्यो
कृष्ण विराजे सहसासण।
ऐसा भक्त कौन हुवो म्हारो
काँप उठ्यो री इन्द्रासन।

इन्द्र घबरा गया। क्योंकि उसके सिंहासन को खतरा पैदा हो गया था। शुकदेव की तपस्या उग्र थी, क्योंकि अन्तःकरण शुद्ध होने के कारण जहत् और अजहत् लक्षणों के द्वारा वे 'तत्' और 'त्वम्' के ऐक्य का ज्ञान प्राप्त कर रहे थे[2]। वे बाहिर निकलने से घबरा रहे थे, क्योंकि बाहर माया का आवरण बहुत घना था।[3]

---

(१) गरभ वास से यहाँ हाड़ौती प्रबन्धकारों का आशय शायद यह है कि जिस प्रकार गर्भवास में उल्टे रहना पड़ता है, उसी प्रकार तपस्या में उल्टे लटक कर कठोर यातनाएँ सहने से ही उद्देश्य प्राप्ति हो सकती है।

(२) छन्दोग्य ६-८-७

(३) बाहर तो यूँ कैसे निकसूँ
माया अपरम्पार लागी लाग।

वे 'अयम् आत्मा ब्रह्म'[1] को पूर्णतः साक्षात्कार कर चुके थे। मोह-फंदे से निवृत होने के कारण ही वे जन्म लेते ही वन में रवाना हो गये—

अमर माला पहर गले में
सुखदेव भाग्या नगा-धगा
पीछे से उनके पिता व्यासजी
मोह के मारे लारचा भिग्या।

यहां व्यासजी माया के प्रतीक हैं और शुकदेव 'त्याग' के। त्याग या वैराग्य माया से भागता है परन्तु माया बार बार उसे पुकार रही है—

खड़े रहो पुत्र ! मावड़े रहो तुम
खड़े खड़े तुम करलो ज्वाब।
उलट सुकदेव जी ने ज्वाब दिया
किसकी मां ! अर किसके बाप ?
मरण जीवण का कोई न साथी
मोह माया का फंदा रे
हरे राम कहो हरे राम कहो
हरे कृष्ण कहो हरे हरे।

अष्टम प्रकरण

हाड़ौती लोक-गीतों में प्रकृति-चित्रण

अष्टम प्रकरण

हाड़ौती लोक-गीतों में प्रकृति-चित्रण

गीतों में प्रकृति-चित्रण—

रूप से तो जितनी मानवेत्तर सृष्टि है, उसको ही हम प्रकृति कहते हैं'[1], परन्तु प्राचीन काल से ही प्रकृति दार्शनिक एवं वैज्ञानिक मान्यताओं का मूलाधार रही है।[2] इस 'दार्शनिक दृष्टिकोण से' हमारा शरीर और मन, उसकी ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि सूक्ष्म तत्त्व प्रकृति के अन्तर्भूत हैं।[3] 'भारतीय दृष्टि-कोण से मनुष्य भी व्यापक विराट् चेतना' का एक अंश-मात्र हैं, और यह विराट् चेतना भौतिक जगत में प्रकृति के जड़ और चेतन पदार्थों में देखी जा सकती हैं।[4]

प्रकृति और मानव का सदैव से ही घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है मानव की यह एक स्वाभाविक वृत्ति है, कि वह बाह्य वस्तु-जगत को अपनी कल्पना के द्वारा अपनी आकांक्षाओं के अनुरूप चित्रित करता हैं। प्रकृति के सभी उपकरण उसके लिये चेतनाशील हैं, सक्रिय हैं।[5] प्रारम्भ से ही मानव में चिर-सहचार से उद्भुत वासना अथवा संस्कार रूप में प्रकृति के प्रति आकर्षण की भावना विद्यमान है।[6] प्रकृति और पुरुष को हम अलग अलग करके देख ही नहीं सकते। प्रकृति की सत्ता मानव के पंच-भौतिक शरीर में आकर एक चैतन्य-स्वरूप धारण कर लेती है, जहाँ मन, बुद्धि और अहंकार की आधार-शिला पर मानव के अन्तर्जगत का निर्माण होकर वह अमूर्त लोक प्रतिष्ठित होता है, जो चर्म-चक्षुओं से अग्राह्य होकर भी नश्वर शरीर से परे अपनी शाश्वत सत्ता रखता है।[7] देवेन्द्र सत्यार्थी ने स्पष्टतः अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि लोक-गीत की शत-सह श्री-मौलिकता अनेक जन-पदों में युग-युगान्तर से गौरवान्वित होती रही है। इसकी कोई एक भाषा नहीं, कोई एक परम्परा नहीं—प्रत्येक भाषा में, प्रत्येक परम्परा में सुख-दुख की धड़कन-आशा-निराशा की प्रतिक्रियाएं, और सामाजिक समस्याओं के बहुमुखी आन्दोलन आप-ही आप प्रतिबिम्बत हो उठते हैं।[8] मानव के लिये प्रकृति 'अनुभूत्यात्मक अभिव्यंजना' रही हैं।[9] इसके नैसर्गिक सौन्दर्य के सामने कीट्स के हल्के पैर, गहरे नीले रंग की बनफसा-सी आँखे, काढ़े हुए बाल, मुलायम पतले हाथ, श्वेतकंठ और मलाईदार वक्ष पैदशावाली नायिका भी फीकी पड़ जाती है[10] और इसी प्रकृति के आंगन में माता की गोद के समान ही जब आदि-मानव ने जन्म लेकर अपने चर्म-चक्षुओं से

---

(१) हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण—डॉ० किरणकुमारी गुप्ता—पृष्ठ ६
(२) लोकायन—डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय—पृष्ठ ३८
(३) हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण—डॉ० किरणकुमारी गुप्ता—पृष्ठ ६
(४) लोकायन—डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय—पृष्ठ ३८
(५) परम्परा—'लोकगीत अंक'—पृष्ठ ७३
(६) हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण—डॉ० किरणकुमारी गुप्ता—पृष्ठ १०
(७) लोकायन—डॉ० चिन्तामणि—पृष्ठ ३९
(८) धीरे बहो गंगा—देवेन्द्र सत्यार्थी—पृष्ठ १६३
(९) भारतीय लोक साहित्य—श्याम परमार—पृष्ठ ११०
(१०) मैथिली लोकगीत—राम इकबालसिंह 'राकेश'—पृष्ठ ३६०

प्रकृति को देखा होगा।[1] अपनी अपनी मानवीय भावनाओं का पुट देकर वह प्रकृति को ठीक अपने ही समान समझने लगता है। वह प्रकृति में अपनी आत्मा की झाँकी देखता है, अपने स्वरूप का दर्शन पाता है। वह धरती को केवल धरती कह कर ही सन्तुष्ट नहीं होता, 'धरती माता' कहे विना उसके आन्तरिक शिशु-मन को ठीक से सान्त्वना नहीं मिलती।[2]

मानव अनादि-काल से इसके साथ तादात्म्य स्थापित करता आया है, क्योंकि इस प्रकार उसकी भावनाओं का उन्नयन और परिष्कार होता है।[3]

धीरे धीरे मानव प्रकृति के अधिकाधिक सम्पर्क में आया। उसने प्राची के क्षितिज पर गुलाबी रंगीन आभा देखी। उदीयमान सूर्य की स्वर्ण रश्मियों को जल के वक्ष पर लहरियों के साथ आंदोलित होते देखा, वायु के झाँकों से झूमती देख वृक्षों की डालियों पर स्वयँ की दोलत स्थिति का अनुभव हुआ।[4] वह 'प्रकृति को अपने प्रत्यक्ष व्यवहार में वरतता है। सीधे और सहज रूप में उससे काम लेता है।'[5] हिमाच्छादित पर्वतों के शिखरों ने नदी, नद, झरनों एवं अनन्त अगाध जल-राशि वाले महा-समुद्र ने भी उसे आश्चर्य-चकित किया। गगन-लोक की दृश्यात्मक प्रकाशमान सत्ता ने उसे आकर्षित किया। रात्रि के गहनतम सूचीभेद्य अंधकार की स्थिति में उसे भयाकुल भी होना पड़ा।[6] वह सोचता है कि प्रकृति उसकी कामनाओं को, उसकी आवश्यकताओं को पूरा करती है, उसके मन की वात को समझती है, उसका कहा मानती है।[7] सूर्य-चन्द्र एवं नक्षत्रों के दिव्य-लोक ने तथा गगन में अठखेलियाँ करने वाली श्याम घटाओं ने भी उसे विस्मित कर दिया। संपूर्ण भू-मण्डल एवं विराट् प्रकृति को कौतुहल भाव से देखकर उसके मन में उल्लास भावना का उदय हुआ।[8] और प्रकृति के उपयोगी और विश्लेषणात्मक रूप पर विचार करने वाला मानव वैज्ञानिक वना, और सौन्दर्य पर सुधि-बुधि खोने वाला मानव वना 'भावुक कवि'।[9] वस्तुतः मानव की स्व-चेतना (आत्म-चेतना) के विकास में सचेतन प्रकृति का योग है।[10] मानव ने इन्हें 'देव' संज्ञा से विभूषित किया, उनकी स्तुति की गई। उसने इन्द्र, वरुण, पर्जन्य आदि की स्तुतियाँ करनी शुरू की,

---

(१) लोकायन—डॉ० चिन्तामणि—पृष्ठ ३९
(२) साहित्य और समाज—विजयदान देथा—पृष्ठ ३९
(३) हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण—डॉ० किरणकुमारी गुप्ता—पृष्ठ १४
(४) लोकायन—डॉ० चिन्तामणि—पृष्ठ ३९
(५) परम्परा—'लोकगीत अंक'—पृष्ठ ७३
(६) लोकायन—डॉ० चिन्तामणि—पृष्ठ ४०
(७) साहित्य और समाज—विजयदान देथा पृष्ठ ४०
(८) लोकायन—डॉ० चिन्तामणि—पृष्ठ ४०
(९) हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण—डॉ० किरणकुमारी गुप्ता—पृष्ठ १५
(१०) प्रकृति और काव्य—डॉ० रघुवंश—पृष्ठ २०

उनसे अपने हृदय का तादात्म्य स्थापित किया। पर्याप्त वर्षा हो जाने पर उससे थमने के लिये प्रार्थना की जाती हैं—अब शान्त हो जाओ पर्जन्य, खूब बरस चुके तुम। देखो, तुम्हारे प्रसाद से निर्जन मरुदेश भी यात्रा के योग्य हो गये हैं। अन्नदान के लिये वनस्पतियाँ अंकुरित हो रही है। प्रजाजन सर्वत्र तुम्हारी प्रशंसा ही के गीत गा रहे हैं।[१] मानव अनादि-काल से इनके साथ तादात्म्य स्थापित करता आया है, क्योंकि इस प्रकार उनकी भावनाओं का उन्नयन और परिष्कार होता है। मनुष्य अहंभाव के संकुचित क्षेत्र से ऊपर उठकर पर-प्रत्यय की अवस्था तक पहुँचता है। वह प्रकृति के अनुराग से अनुरंजित होकर आत्म-विभोर हो उठता है। मानव-मन की यही दशा मुक्तावस्था कहलाती है, और यही मुक्तावस्था रस-दशा हैं।[२]

मनुष्य को 'प्रकृति के सौम्य, सुखद एवं मानव-जीवन के अस्तित्व में बाधा नहीं पहुँचाने वाले स्वरूप के साथ ही उसके संहार-कारी भयावह एवं रौद्र रूप का भी परिचय मिला।[३] प्रकृति के परिवर्तन-शील स्वरूप में मनुष्य ने 'देवत्व' की कल्पना कर अपनी आत्म-रक्षा के लिये विविध स्तवन एवं पूजोपचार का विधान भी रच लिया। इस प्रकार मानव ने अपनी चेतना के अनुभवजन्य आधार पर प्रकृति को समझने की चेष्टा की, और प्रकृति के विभिन्न व्यापार, क्रिया-कलाप एवं नाना-रूपों को अपने ही समान देखने और समझने की चेष्टा में भूल कर बैठा। ईश्वर को मानवीय रूप में स्वीकार करना, एवं अवतार-वाद की कल्पना भी इसी आधार पर विकसित हुई।[४] ऐसी स्थिति में मानव और प्रकृति इतने भिन्न नहीं, जितने समझे जाते हैं; वस्तुतः मानव को स्व-चेतना (आत्म-चेतना) के विकास में सचेतन प्रकृति का योग है।[५]

वात, वायु और मारुत वैदिक-काल में हवा, तूफान और अंधड़ के देवता थे, और आज दिन भी वे बहुत-कुछ इन्हीं अर्थों के लिये प्रयुक्त होते हैं।[६] ये प्रत्यक्षतः विभिन्न रूपों में दिखाई भी पड़ सकते हैं, किन्तु ये सब एक ही शक्ति—प्रकृति की सर्वव्यापक शक्ति के अंश है। प्राकृतिक तत्वों का स्वरूप बदल सकता है किन्तु शाश्वत गुण नहीं बदल सकते।[७]

प्रकृति सदैव परिवर्तनशील है, इसलिये नवीन है। 'प्रकृति तो सृष्टि विकास का एक चिर जीवित सत्य है।'[८] हिम का पिघलना भाप और बादल बनना,

---

(१) ऋग्वेद—पर्जन्य-सूक्त-मंडल ५।८३।१०
(२) हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण—डॉ० किरणकुमारी गुप्ता—पृष्ठ १४
(३) लोकायन—डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय—पृष्ठ ४०
(४) वही, पृष्ठ ४०—४१
(५) प्रकृति और काव्य—डॉ० रघुवंश—पृष्ठ २०
(६) परम्परा—लोकगीत अंक—पृष्ठ ७४
(७) The Riddle of The Universe Earnest Hackel Page—208
(८) लोकायन—डॉ० चिन्तामणि—पृष्ठ ४१

लकड़ी जल कर कोयला व राख बनना आदि हम नित्य ही देखते रहते हैं परन्तु कुछ परिवर्तन ऐसे भी होते हैं जो हम चर्म-चक्षुओं से नहीं देख पाते, किन्तु उसमें भी परिवर्तन तो होता ही रहता हैं, हमारे चारों ओर दृष्टिगत होने वाली प्रकृति में निरन्तर, कभी न रुकने वाला परिवर्तन होकर नवीन स्वरूप का निर्माण तो होता ही रहता है।[१] इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि संसार के परिवर्तन-शील एवं विकास-मान स्वरूप का सही ज्ञान हो जाने के पश्चात् मानव प्रकृति के परे किसी अन्य सत्ता के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता।

प्रकृति चित्रण—

मानव एवं प्रकृति को हम अलग अलग रूप में नहीं देख सकते। दोनों में से प्रत्येक एक दूसरे का पूरक है। जन्मकाल से ही मानव प्रकृति की गोद में पलता और बड़ा होता है। आरम्भ में प्रकृति मानव की सहजवृत्तियों का समाधान करती है, और अव्यक्त-रूप में मानव का उसके साथ सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।[२] उसका प्रकृति के साथ वैयक्तिक सम्बन्ध नहीं, अपितु सामूहिक सम्बन्ध रहता है। इसीलिये लोकगीतों में प्रकृति का चित्रण सामूहिक भावना का ही प्रतीक होता है, व्यक्ति की इच्छा, आंकाक्षा और रुचि का प्रवेश वहाँ संभव नहीं।[3]

मगर एक बात और यहाँ स्पष्ट कर देनी आवश्यक है। मानव आत्मवान स्वचेतनशील है। उसमें मानस की वह स्थिति हैं, जिसमें वह अपनी चेतना से स्वयं परिचित है।[४] सामने फैली हुई प्रकृति का दृश्यजगत उसकी अपनी दृष्टि की सीमा है। मानसिक विकास के साथ 'स्व' अधिक व्यापक होता जाता है, उसका क्षेत्र प्रत्यक्ष बोध से भावना और कल्पना में फैल जाता है।[५] यही भावना जब व्यापक प्रसार पाती है तो वह उच्चस्तर के जीवों में जाकर अभिव्यक्त होती है। मानव का विकास पशु-जगत से हुआ है, अतएव पशु-जगत एवं मानव की भावना और प्रवृत्तियों में साम्य एवं तादात्म्य होना स्वाभाविक ही है।[६] हम यदि इसी दृष्टिकोण से आगे बढ़े तो हम पायेंगे कि अचेतन जड़ सृष्टि से ही वनस्पति, पेड़-पौधे, जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, एवं मानव की सृष्टि का विकास हुआ है, अतः मानव अपनी भावनाओं का उद्रेक करने वाली वस्तुओं को फूल, पेड़-पौधे एवं पशु-पक्षी

---

(१) Chemistry & Human Affairs—Price & Bruce Page 15.

(२) हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण—डॉ० किरणकुमारी गुप्ता—पृ० १५

(३) परम्परा—लोकगीत अंक—पृष्ठ ७५

(४) प्रकृति और काव्य—डॉ० रघुवंश—पृष्ठ २४

(५) वही

(६) History of Modern Philosophy—Hoffding—Vol. II Page 180.

आदि में जहाँ कहीं भी देखेगा, उनकी ओर आकृष्ट हुए विना नहीं रह सकता;[१] क्योंकि मानव भी तो उसी प्रकृति का लाड़ला हैं।[२] मनुष्य की उस आदिम असहाय अवस्था में हरियाली ने ठीक मां के समान उसका पालन-पोषण किया था। मानव समाज का वह आदिम शैशव पूर्णरूप से अपनी 'धरती मां' पर ही निर्भर था;[३] फलतः लोक जीवन आज दिन भी मां हरियाली के स्नेह और प्यार को भूला नहीं है, वह अब भी उसी का पूत है मां की ममता को पहचानता है, पुत्र के कर्तव्य को पहिचानता है[४] और उसके जीवन के अणु-अणु में प्रकृति का ताना-वाना संगुंफित है। उन दोनों का एक दूसरे के प्रति आकर्षित होना स्वाभाविक है। क्योंकि उसकी भावनाओं का उस आकार-प्रकार-मयी, ध्वनि-नादों से समन्वित, गतिमान सृष्टि से—प्रकृति से परम्परा-प्राप्त एवं वंशानुगत वासना के रूप में सम्बन्ध निहित है।[५]

प्रकृति में दृश्य आदि माध्यमिक गुण होते हैं, जो मानवीय इन्द्रिय प्रत्यक्ष के आधार माने जाते हैं।[६] मानसिक चेतना की प्रत्येक स्थिति अपने प्रवाह में निरन्तर गतिशील है, उसका प्रत्यावर्तन भी संभव नहीं। प्रकृति में भी यही दिखाई देता है, उसमें आन्तरिक प्रवाह क्रिया-शील है, जिसमें प्रत्यावर्तन नहीं जान पड़ता। मानसिक चेतना में एक स्थिति दूसरी स्थिति को प्रभावित कर उससे एकाकार हो जाती है। प्रकृति में भी एक अवस्था दूसरी अवस्था से प्रभावित हो उसी से एकाकार हो जाती है, और सर्जन-क्रम की अगली स्थिति को प्रभावित करने लगती है।[७]

जिस प्रकार भौतिक प्रकृति गतिशील है, उसी तरह मन-मस्तिष्क की विचार-धाराएं भी प्रवहमान एवं विकासमय है। मानव मस्तिष्क की बनावट ही ऐसी है कि वह सोच सकता है, विश्लेषण कर सकता है।[८] मानसिक चेतना के समान प्रकृति में भी सहायक परिस्थितियों के उपस्थित होने पर निश्चित स्वभाव की प्रकृति दृष्टिगत होती है।[९] मनुष्य-अहंभाव के संकुचित क्षेत्र से ऊपर उठकर पर-प्रत्यय की अवस्था तक पहुँचता है, वह प्रकृति के अनुराग से अनुरंजित होकर आत्म-विभोर हो उठता है।[१०] प्रकृति का सचेतन मानव की स्वचेतना का

स्रोत है, और पूर्ण मनस् चेतना की ओर उसकी प्रगति—उसकी आदर्श भावना का रूप है। यही पूर्ण मनस् चेतना आध्यात्मिक क्षेत्र में ब्रह्म या ईश्वर आदि का प्रतीक ढूँढ़ लेती है।[१] और दूसरे शब्दों में इसे ही हम दार्शनिक परिभाषाओं में देखने का प्रयत्न करने लगते हैं।

साधारणत: प्रत्यक्ष ज्ञान के आधार पर हमारे पास दो जगत हैं—एक है अन्तर्जगत और दूसरा बहिर्जगत। मानव चेतना पर जब प्रकृति की चेतना का प्रभाव पड़ता है, वह अनुभूति के सहारे 'स्व' की ओर गतिशील होता है अत: प्रकृति की चेतना (सत्) को मानव-चेतना (सत् अंश) पहिचान लेती है, और जब उससे प्रतिबिम्बित होती है वह आत्म-चेतना के पथ पर आगे बढ़ती है।[२] अन्तर् (मन) का अनुकरण करती हुई प्रकृति ज्ञान के रूप में दिखाई देती है और प्रकृति का अनुकरण करता हुआ अन्तर् अनुभूतिशील हो उठता है।[३] रागात्मक प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर मनुष्य प्रकृति के सुन्दर स्वरूप की ओर आकर्षित अवश्य होता है, किन्तु शिवं का तत्व आज तक सौन्दर्य की भावना को दबाता चला आ रहा है। शिवं—हित करं की भावना धार्मिक रूढ़ि बनकर रह गई, और मनुष्य ने केवल अपने हित के लिये प्रकृति के सौन्दर्य को विनष्ट करने में कभी संकोच नहीं किया।[४] भावनाओं के स्पन्दन की चरमता में जब कभी मनुष्य के हृदय में 'सुन्दरम्' के प्रति सात्विक आकर्षण जाग जाता है, तब पशु-पक्षी एवं प्रकृति के अन्य उपादानों के प्रति कलात्मक दृष्टिकोण अपनाया जाता है।[५] प्रकृति मानव के ज्ञान का आधार तो है ही, साथ ही उसके अनुकरणात्मक प्रतिबिम्ब में मानव के सुख-दुख की भावना भी सन्निहित है।[६] सामाजिक वातावरण से ऊब कर या थक कर मानव अपने जीवन में प्रकृति के सम्पर्क से आज भी शान्ति चाहता है।[७] मानव की चेतन प्रकृति स्वभावत: सौन्दर्योन्मुखी है, सौन्दर्य के प्रति वह अपना मोह प्रदर्शित नहीं करेगा, यह असंभव है। प्रकृति के साथ साहचर्य जन्य वासना को वह दबा नहीं सकता। प्रकृति का व्यापक विस्तार और उसका नाना रूपात्मक सौन्दर्य मनुष्य की स्वानुभूति का विषय बन जाता है। परिवर्तन और गति की अनन्त चेतना में मग्न प्रकृति युगों में मानव जीवन से हिलमिल गई है। मानव उसकी क्रोड में विकसित हुआ हैं।[८] सौन्दर्य भावना मानव का आन्तरिक गुण हैं जन-मानस में यह सौन्दर्य भावना पहले जागृत हुई, और जड़-चेतन में भावनाओं

(१) प्रकृति और काव्य—डॉ० रघुवंश—पृष्ठ २७

का आदान-प्रदान कर प्रकृति को मनुष्य ने अपने सुख के साथ हँसाया, और दुःख के साथ अश्रुमय स्वरूप भी प्रदान किया। प्रकृति के मानवीकरण की भावना में मानवेतर सृष्टि के साथ ही वनस्पति-जगत, पशु-पक्षी एवं अन्य जीव-जन्तुओं में आचार एवं व्यवहार साम्य स्थापित हो जाता है। कवि जन-मानस की इसी सुखानुभूति की कल्पना की गंभीरता से सौन्दर्य के उच्च धरातल पर कलात्मक आनन्द की सृष्टि करता है।[1]

प्रकृति एवं भावों का सम्बन्ध

भय—

प्रकृति एवं भावों का पारस्परिक सम्बन्ध है। आदिम अवस्था में मानव के जीवन संरक्षण के लिये पलायन की प्रवृत्ति ने बाह्य जगत के प्रत्यक्ष बोध के साथ साथ उसमें भय की भावना भी उत्पन्न की।[2] वह प्रकृति के उपकरणों को कभी मानव रूप में ग्रहण करता है तो कभी उन्हें अपने पारिवारिक सम्बन्धी समझता है। धरती उसकी मां है, आकाश उसका पिता है, पुरवा उसकी बहिन है, सूरवा उसका भाई है।[3] अपने सामने जगत में प्रत्यक्ष बोधों को बिखरा कर उसके आकार-प्रकार, रंग-रूपों तथा नाद-ध्वनियों को समन्वित और स्पष्ट रूप-रेखाओं में वह नहीं समझ सका। इस कारण प्रकृति के प्रति उसको एक अज्ञात भय का भाव घेरे रहता था।[4]

क्रोध—

मानव जब कुछ संभला, तो जीवन यापन और संरक्षण की भावना आई जिसमें संघर्ष या युद्ध की सहज वृत्ति अन्तर्निहित है। इसी संघर्ष के मूल में क्रोध का भाव समन्वित है। बाह्य वस्तुओं और स्थितियों से उत्पन्न भय की भावना तथा कठिनाइयों के बोध का प्रति-क्रियात्मक भाव क्रोध कहा जा सकता है,[5] जो प्रकृति से समन्वित है।

सामाजिक भाव—

सामाजिक भाव के विकास में सहचरण तथा संग्रहेच्छा आदि अनेक सहजवृत्तियों की प्रेरणा रही है। व्यापक रूप से देखा जाय तो प्रकृति का एकाकीपन से कोई सम्वन्ध नहीं है, हाँ वह एकाकीपन और असहायावस्था दोनों को वातावरण तथा परिस्थिति का रूप अवश्य प्रदान करती हैं।[6] लोक जीवन का प्रकृति के प्रति वैयक्तिक नहीं, सामूहिक सम्वन्ध रहता है। इसीलिये लोकगीतों में प्रकृति

---

(१) लोकायन—डॉ० चिन्तामणि—पृष्ठ ४६
(२) प्रकृति और काव्य—डॉ० रघुवंश पृष्ठ ४०
(३) परम्परा—लोकगीत अंक—पृष्ठ ७७
(४) प्रकृति और काव्य—डॉ० रघुवंश पृष्ठ ४०
(५) वही
(६) वही—पृष्ठ ४१

का चित्रण भावना का ही प्रतीक होता है। व्यक्ति की इच्छा, आकांक्षा और रुचि का प्रवेश वहाँ संभव नहीं है। यही कारण है कि लोकगीतों में वैयक्तिक विकृतियों के लिये कोई मौका नहीं रहता।[१] वैयक्तिक विकृति काले, घने बादलों में केवल अपनी प्रेयसी की अलकों को निहारती है, चन्द्रमा में केवल अपनी प्रियतमा का मुख खोजा करती है, ऊषा की लालिमा का अपनी प्रेयसी के अरुण नयनों से मिलान करती है, बरसात को वियोगी के अश्रु-बिन्दु समझती हैं।[२] मानसिक विकास में मानव प्रकृति को भी एक स्थिति में सामाजिक भावों के सम्बन्ध में देखता है।[3]

आश्चर्य तथा अद्भुत भाव—

मानव के सामाजिक भावों के साथ साथ बोधात्मक विकास भी चल रहा था। बोधात्मक प्रत्यक्षों के अधिक स्पष्ट होने से आश्चर्य तथा अद्भुत भावों का विकास हुआ। भय से अलग, स्पष्ट आकार-प्रकार के बोध द्वारा यह भाव उत्पन्न माना जाता है, प्रकृति के आकार-प्रकार, रंग-रूप आदि की व्यापक सीमाएं एक प्रकार का अस्पष्ट संदिग्ध बोध कराती थी। यह मानव की चेतना पर बोझा था। धीरे धीरे प्रकृति का रूप, प्रत्यक्ष रूप-रेखाओं में तथा स्पष्ट कल्पना-रूपों में सम्बद्ध होकर आने लगा। पहले जो प्रकृति मानव को भय से आकुल करती थी, अब वह आश्चर्य से स्तब्ध करने लगी; इस प्रकार इस भाव का सम्बन्ध प्रकृति के सीधे रूप से हैं, और ज्ञान की प्रेरक शक्ति भी यह भाव है।[४]

अहंभाव—

मानव के विकास क्रम में अद्भुत भाव की प्रेरणा से ज्ञान का ज्यों ज्यों प्रसार होता गया, उसी प्रकार 'अहं' की भावना भी स्पष्ट और विकसित होती गई। आत्म भावना 'अहं' के रूप में शक्ति प्रदर्शन और उसी के प्रतिकूल आत्म-हीनता के रूप में प्रकट होती है।[५] प्रकृति के जिन रूपों को मानव विजित करता था, उनके प्रति वह अपने में महत्व का बोध अनुभव करता था, और प्रकृति के जिन रूपों के सामने वह अपने को पराजित तथा असहाय पाता था, उनके प्रति अपने में आत्म-हीनता की भावना पाता था। सहानुभूति के प्रसार में मानव प्रकृति को आत्म-भाव से युक्त पाता है, या अपने अहं के माध्यम से प्रकृति को देखता है।[६]

रतिभाव—

रतिभाव से जहाँ मानव का स्वाभाविक सम्बन्ध है, वहाँ वह प्रकृति में

(१) परम्परा—लोकगीत अंक—पृष्ठ ७५
(२) साहित्य और समाज—विजयदान देथा—पृष्ठ ४२
(३) प्रकृति और काव्य—डॉ० रघुवंश—पृष्ठ ४१
(४) वही
(५) वही—पृष्ठ ४२
(६) वही—पृष्ठ ४१

इसे सहज रूप में देखना चाहता है। वनस्पति-जगत इन रंग-रूपों से अपनी उत्पादन क्रिया में सहायता लेता है।

सौन्दर्यानुभूति और प्रकृति—

सौन्दर्य की भावना मनस् परक है, और प्रकृति का सौन्दर्य हमारी कलात्मक दृष्टि का परिणाम।[१] क्रोसे के अनुसार प्रकृति उसी व्यक्ति के लिये सुन्दर है, जो उसे कलाकार की दृष्टि से देखते हैं,.......प्रकृति कला की समता में मूक हैं, और मानव उसे जब तक वाणी नहीं देता, वह मूक है।[२] दूसरे विद्वान् के मत से प्रकृति तभी सुन्दर लगती है, जब हम उसे कलाकार की दृष्टि से देखते हैं, और एक सीमा तक हम सभी कलाकार हैं।[3] जिसको हम कलाकार कहते हैं, उसमें और साधारण व्यक्ति में प्रकृति की सौन्दर्यानुभूति विषय में केवल मात्रा का अन्तर होता है। कलाकार जिस दृश्य को देखता है उसके प्रत्यक्ष या पर-प्रत्यक्ष की प्रेरणा अभिव्यक्ति के रूप में प्रतिकृत होती है।[४] ई. एम. बटलेट के मतानुसार प्रत्येक व्यक्ति प्रकृति को सुन्दर कलाकार के समान नहीं बना देता, जैसा कलाकार कला को बनाता है। साधारण व्यक्ति तो प्रकृति के गुणों को सुन्दर तथा असुन्दर दोनों ही प्रकार से देख सकता है।[५]

सौन्दर्य को परखने के लिये हमें भाव और रूप दोनों की स्थिति को समझना होगा। वस्तुतः भाव और रूप का वैचित्र्य ही सौन्दर्य है।

भाव-पक्ष—संवेदनात्मकता :

भावनाओं का सीधा सम्बन्ध हमारे मनस् से होता है इसमें भी एक प्रभावशील भावना है, जो समष्टि रूप से इन्द्रियों के विभिन्न गुणों की संवेदनात्मकता पर आधारित है।[६] इसीलिये कई विद्वान् सौन्दर्य का सम्बन्ध मनस् प्रभावात्मकता को मानते हैं।

इसके यदि दूसरे चरण की ओर देखें, तो इसे सहचरण की सहानुभूति में भी स्वीकार किया जा सकता है। प्रकृति अपने क्रिया-व्यापारों में मानव जीवन के अनुरूप जान पड़ती है। साथ ही, प्रकृति मानवीय चेतना और भावों से युक्त भी उपस्थित होती है।[७] हमारी चेतना तथा हमारे प्राणों से सचेतन और सप्राण प्रकृति

(१) प्रकृति और काव्य—डॉ० रघुवंश—पृष्ठ ५५
(२) Aesthetics—E. F. Carriatt—Page 99
(३) Beauty and Other Forms of Value—Alexender Page 39.
(४) The Theory of Beauty—E. F. Carriatt—Page 39
(५) Types of Aesthetic Judgement—E. M. Bartlet—Page 218.
(६) प्रकृति और काव्य—डॉ० रघुवंश—पृष्ठ ५८
(७) वही

संकेतात्मक स्वरूप चित्रित किया जा सकता है। साथ ही आश्रय की स्थिति में भावों की व्यंजना उपस्थित कर प्रकृति का संकेतात्मक स्वरूप चित्रित किया जा सकता है। साथ ही, आश्रम की स्थिति में कवि उसमें अपनी चेतना तथा भाव स्थिति का प्रतिबिम्व भी प्रस्तुत करता हैं।[1] मनुष्य जड़-चेतन में आदान-प्रदान कर प्रकृति को सुख दुख में अपने साथ हँसाता व रुलाता भी है।[2] प्रकृति के इस आलम्बन रूप में विशेषता यह है कि इसमें आलम्बन तथा आश्रय की भावस्थिति एक सम पर उपस्थित होती है।

हाड़ौती लोकगीतों में जन-गायकों ने अधिकतर इसी भाव से प्रकृति का वर्णन किया है। वनस्पति जगत का हलके गहरे-रंगों का छायातप, पक्षियों का स्वर-लय तरंगित संगीत आदि का संश्लिष्ट वर्णन लोकगीतों के माध्यम से हुआ है। आकाश में मुक्त विचरण करते हुए पक्षी, सरिता का निरन्तर गतिशील प्रवाह गगन में फैली हुई ऊषा की अरुणिमा और रजनी का तारों से मुक्त नीलाकाश— यह समस्त प्रकृति का शृंगार मानव के मन के भावों को सौन्दर्य स्थिति प्रदान करता है। कवि अपनी अन्तर्दृष्टि से प्रकृति के[3] सौन्दर्य का अनुभव अधिक स्पष्ट करता है, और अपनी स्वानुभुति को काव्य की अभिव्यक्ति का रूप देता है।[4] हाड़ौती के एक लोकगीत में चांदनी का यथातथ्य-पूर्ण वर्णन हुआ है—

चांदणी राजा बिना, तेरा क्या काम
चांदणी सैयां बिना तेरा क्या काम
जब रे चांदणी कलसां पे श्राई
चांदणी न्हावण वाले गये परदेश
चांदणी राजा बिना तेरा क्या काम
चांदणी सैयां बिना तेरा क्या काम
जबरे चांदणी प्याले पे श्राई
चांदणी पीवण वाले गये परदेश
चांदणी राजा बिना तेरा क्या काम।
बाग पुराणां जी भंवर, कलियां नत नुई
कलियां चूंटे सासू जी का पूत
सोना की दुवाल्यां जी भंवरा

इसी प्रकार प्रकृति वर्णन के साथ साथ कुएँ, ताल आदि का आलम्बन रूप से वर्णन आया है—

कुश्रा पुराणां जी भंवरा
पणघट नत नुंश्रा

(१) प्रकृति और काव्य—डॉ० रघुवंश—पृष्ट ७१
(२) मालवी लोकगीत—डॉ० चिन्तामणि—पृष्ठ ३८६
(३) प्रकृति और काव्य—डॉ० रघुवंश—पृष्ठ ७१-७२
(४) वही

फूल्यो जी करेलो, लटपट छा रही बेल
इत मरवो उत मोगरो, गुल तुर रौर गुलाब
मदमाती म्हेलां चढी, पिय जांणे मेहताब,
प्यारा थांके आंगन जी, फूल्यो जी करेलो
लटपट छा रही बेल।
बागां जाओ सायबजी, नींबू लाज्यो चार
नारंगी मत ल्याजवो, सौकड़ल्या को सार
प्यारा थांके आंगन फूल्योजी करेलो,
लटपट छा रही बेल।

आनन्दानुभूति—आलम्बन की स्थिति में कवि की अनुभूति अधिक रहती है। प्रकृति का यह सौन्दर्य रूपात्मक नहीं वरन् भावात्मक साहचर्य के आधार पर ही स्थित है। इस प्रकृति के सौन्दर्य साहचर्य में कवि स्वयं अपने को सजग पाता है, और यह सजगता विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होती है[1]—

चांदा थारी चांदणी सी रात र
नणद भौजायां पाणी निसरी
गुड़ल्या तो मेल्या छै समदर तीर
नणद तो खेंचे छे भोजाई झेलरी
छूमकी तो टांकी छे बोरया भाड़ के
रमवा ने चाल्या चम्पा बाग में

आत्म-तल्लीनता की स्थिति में जन-गायक प्रकृति सौन्दर्य की चेतना भूल जाता है और उसके मन में यह सौन्दर्य आनन्द के रूप में स्वयं अभिव्यक्ति की प्रेरणा बन जाता है—

हरियाला आंबा क नीचे पालणों घलायो
हरियाला क नीम नीचे पालणू घलायो
चिड़ियां बोली चूं चूं चूं
सो ज्या नन्नो यूं यूं यूं
हरियाला रूंखा पै बैठी
चिड़ियां बोली च्यूं च्यूं च्यूं

भावना आश्रय की मनः स्थिति से सम्बन्धित है। इस प्रकार प्रकृति की उद्दीपन शक्ति उसके सौन्दर्य और साहचर्य के साथ परिस्थिति के संयोगों पर भी निर्भर है।[1]

उद्दीपन स्थिति में प्रकृति के माध्यम से उद्दीपनावस्था आ जाती है। संयोग में मलय समीर, शीतल चन्द्रिका आदि पारस्परिक आकर्षण को बढ़ाते हैं, किन्तु वियोग में प्रकृति की समस्त चेष्टायें विरही-जनों को कामोद्दीप्त तथा उन्मत्त बना देती हैं। हाड़ौती के एक लोकगीत में—

सावण की मस्ता घटा या उठवा लागी रे
सोला बरस की नार पिया ने लूटवा लागी रे
गोरी को जोबन ठेलमठेल, जस्यां पटक दिया म तेल
यो वीर मरद को खेल, फड़व सी कटवा लागी रे।
या सुई पड़ी छे नंगी
ईमें तागो चावे जंगी
म्हारी छात्यां पाकी नारंगी, पचकारी छूटवा लागी रे
म्हूं नार बण रयी छूं भोली
म्हारा बालम से नी बोली
म्हारा पायया श्राम चमेली
डालो टूटवा लागी रे।
अम्बर में तो चमके दासी

इधर पपैया बोल रहा हैं उधर वह अकेली डोल रही है परन्तु—

पपइयो बोल्यो ए
ए जी मूं बागां फिरूं अकेली
भंवर बागां में आज्यो जी
छैल बागां में आज्यो जी
बैरी पपइयो कूके, की थे
किण विध जीवूं जी
पपइयो बोल्यो ए
ए जी मूं बागां फिरूं अकेली
भंवर बागां में आज्यो जी।

हाड़ौती लोकगीत ऐसे सरस एवं उद्दीप्त चित्रों से सरोवार है, उनमें मधुर भावना, उद्दीप्तता एवं सांकेतिकता का माधुर्य कूट कूट कर भरा हुआ है।

अलंकार—

सौन्दर्य सभी के हृदय में चेतनता और स्फूर्ति का संचार कर देता है। अबोध शिशु भी ताम्र-खण्डों की अपेक्षा रजत के चमकते हुए टुकड़ों की ही ओर अधिक आकर्षित होता है। मानव प्रकृति ही सौन्दर्योन्मुखी है, सौन्दर्य के प्रति आकर्षण मनुष्य में स्वाभाविक रूप से विद्यमान है। सौन्दर्यानुभुति से प्रभावान्वित मानव अभिव्यक्ति-करण के लिये व्याकुल हो जाता है। वह अपनी सौन्दर्य भावना को इस प्रकार व्यक्त करना चाहता है कि अन्य व्यक्ति भी केवल श्रवण-मात्र से उस सौन्दर्य का अनुभव कर सके। अपनी इस सौन्दर्यमयी अभिव्यक्ति के लिये उसको विशेष उपकरणों की सहायता पड़ जाती है। उसका अनुभूति-पूर्ण हृदय रस-सिक्त तो होता ही है, किन्तु उस रस-सिक्त हृदय को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए उसे अलंकारों और शब्द-शक्तियों का सहारा लेना पड़ता है।[1]

रेत का तो खेत वणाया
पानी की गुलक्यारी
चांद सूरज का वैल वणाया
राम लगाया हाली

इसी प्रकार एक अन्य गीत में गोरी की उपमा गुलाव के फूल से दी है—

गोरी फूल गुलाव की जी
पड़्यो पलंग के बीच
कलियां छूटो भंवरूजी ज थें।
लाल नणद का वीर ।

उपरोक्त गीत में गुलाव का फूल, कलियां और भंवर का अलंकार के माध्यम से कितना सटीक वर्णन किया है, कहने की वात नहीं ।

हाड़ोती जन-साहित्य में कुछ प्रहेलिकाएं भी हैं जिनमें अलंकारों के माध्यम से प्रकृति को वताया गया है—

जी ऊंची ढाण चड़स का डोरा
लाग्यो चार पातला पाणत कर
गोरी फर फर जाय ।[1]
जी लम्बा नल की मोरड़ी
बैठी जाजम राल
जी आधो पगल्यो मालवो
आधो नागर चाल ।[2]

प्रकृति में मानवीकरण—

प्रकृति पर चेतन व्यक्तित्व का आरोप ही मानवीकरण है। यह प्रवृति वैदिक काल से चली आई है। सूर्य, चन्द्र, वायु, जल और मेघ आदि को देवत्व प्रदान करना ही मानवीकरण की प्रवृति को प्रकट करते हैं।

हाड़ौती लोकगीतों का अध्ययन करने से विदित होता है कि अधिकांश गीतों में सुन्दर मानवीकरण का प्रयोग हुआ है। उसने कुरजों से बातें की हैं, भाई ने वहिन के घर जाते समय वैलों से स्नेह भरी वातें कही हैं, विरहिणी ने दीपक से रात-रात भर अपनी दुख व्यथा सुनाई है—

एक ससुराल के कठघरे में वन्द वहू अपने समाचार तोते से कहती है—

उड़ रे सूवा तूं पचरंग्या
जाजे रे मार पीयर, थूं की छ आमलिया।
म्हारा दादाजी मले तो यूं की जे
थांकी वेट्यां बसे छै परदेस

---

(१) भैंस।
(२) हुक्का।

दो ही छे आमलिया
म्हारा बीराजी मले तो यूँ कीजे
थांकी बहन बसे छै परदेस
दो ही छै आमलिया

यही नहीं, तेजाजी ने तो सर्प तक से बातें की हैं—

धरमी धरम कर छै बासक राजा
धरम करया को प्राश्चत लागज्यो
थन तो वरी बच्यारी छे वासक राजा
म्हारी तो माता बाण जी तेज्यो ग्यो सासर
बाचा छे वासक राजा बाचा छे
बाचा सूके, तो ऊबा सूकां
गेल बतादो बाम्बी का राजा
गेल बतादो बासक राजा।

विरहिणी ऐसी दुखिनी होती है कि उसकी व्यथा से सारे जंगल की बेलें, वृक्ष एवं लताएँ भी झुरने लग जाती हैं, एक विरहिणी कुरजां को सन्देश देती हुई कहती है—

कुंजड़ी मारी वेनड़ी, पांक उदारिल्या
पीव मल्या उच्छव करां में भलकर पाछीन्दा
गगन उड़ा वेचुँगा अदविच बासिल्या
मैं परदेशी कुंजड़ा पाक कुणीन ददरा

यही नहीं, उन्होंने तो धूप तक को मानवीकरण किया है जो कि हाड़ौती लोक-जनगायकों की सूझ-बूझ का परिचय देता है—

तावड़ा मदरो सो पड़जे
तावड़ा धीरो सो पड़जे
सिरदार वनी सा रो मन घबराय
छाया सी कर जे.........
राजी सूरज थाने पूजता स कोई
भर भर मोतियन थाल
लाडली भर भर मोतियन थाल
आज वनी को मन घवरावे
छाया रज्यो राज।

एक भाई अपनी बहिन से मिलने के लिये जा रहा है, वह पशु को भी अपने समान समझता है, उससे तादात्म्य स्थापित करता है, और उसे जोश दिलाता हुआ कहता है—

चालो म्हारा वलद्या उतावला रे
म्हारी मां की जाई जोवे वाट

चालो म्हारा घोल्या उतावला रे
म्हारी जामण जाई जोवे वाट
गाडो तो रलकी रेत में रे वीरा-
हो गई गगनां—गोट
धलधां का चमक्या सींगड़ा रे
म्हारे वीराजी की पचरंग पाग।

यही नहीं उसने तुलसी के पौधे को परम पूजनीय माना है—

मू थने पूछूं ये मारी तुलसां
कुण थारा वड़ला चौप्या श्रो राम
कुण थारा वड़ला में ठंडा पाणी सींच्या श्रो राम
रामचन्द्र घर राधा-रूकमण
वाने म्हारा वड़ला चोप्या श्रो राम
मूं थना पूछूं ये म्हारी तुलसां
श्री कृष्ण वर पाया श्रो राम।

मनुष्य अपनी मानसिक अवस्था के अनुसार ही अन्य जनों के सुख-दुःख का अनुभव करता है। मानव की अपनी मनःस्थिति ही सब के हर्ष-विषाद का माप-दण्ड होती है।

इस प्रकार के मानवीकरण को रस्किन आदि आलोचकों ने हेत्वाभास (Pathetic Fallacy) कहा है, परन्तु इस प्रकार के प्रकृति वर्णन को हेत्वाभास कह कर नहीं टाल सकते, क्योंकि अनादिकाल से प्रकृति में सहचार रहने के कारण मानव अपना कष्ट-निवेदन और भावाभिव्यंजन प्रकृति से करता रहा है, और अपने उत्कट प्रेम के फलस्वरूप प्रकृति में प्रति-स्पन्दन का अनुभव करता रहा है।[1]

हाड़ौती जन-कवियों ने स्वरूप वर्णन में प्रकृति के सौन्दर्य की उपमानों के द्वारा स्वयं के अंग-प्रत्यंगों पर आरोपित भी किया है, जो कि उनकी मौलिक सूझ का परिचायक है—

उपमान	उपमेय
मूँगफली	आँगलियाँ
पीपल को पान	पेट
दाड़िम	दाँत
चम्पा की डाल	वाहु
गुलाव री पांखड़्यां	ओठ
आम्वा की फाँक	अँखियाँ
नारेल	शीश

इस प्रकार के कई उपमान उन भोले-भाले, सरल, सरस ग्रामीणों ने ढूँढ निकाले हैं जो कि तर्क-संगत, यथार्थ एवं श्री-युक्त हैं।

---

(१) हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण—डॉ० किरणकुमारी गुप्ता—पृष्ठ ६२

प्रकृति में परम-तत्व का आभास

रहस्यमय प्रकृति में जन-कवि परमतत्व के दर्शन करता है, और इस प्रकार प्रकृति विश्वात्मा के दर्शन का माध्यम बन जाती है। डॉ० रघुवंश ने तो स्पष्ट कहा है कि यह हमारी सर्व-चेतन भावना का परिणाम है, जो साधारण रूप से प्रकृति में व्यापक है। इसमें अभिव्यक्ति की भाव-गंभीरता में रहस्यानुभुति का भ्रम जान पड़ता है, परन्तु रहस्य की भावना में साधक अपने प्रिय की साधना करता है, और लौकिक प्रेम को व्यापक आधार देकर अपने अव्यक्त प्रिय से मिलन प्राप्त करना चाहता है। इस प्रेम को व्यापक आधार देने के लिये साधक प्रकृति की प्रसारित चेतना में अपने प्रेम के प्रतीक ढूँढ़ता है।[1] और इसी प्रकार प्रकृति आगे चलकर विश्वात्मा के दर्शन का माध्यम बन जाती है। इस भावना का आधार है सर्ववाद के दो रूप हैं, आत्मा और परमात्मा। आत्मा और परमात्मा की एकता में मनुष्य अपनी आत्मा और परम-तत्व में अद्वैत भावना का अनुभव करता है। परमात्मा और जगत की एकता में भी यही अद्वैत भावना है, यहाँ मानव-शरीर-व्यापिनी शक्ति ही परमात्मा का अंश नहीं, अपितु समस्त जगत ही उसका अंश है। एक चेतन-सत्ता सकल विश्व के जड़ और चेतन, चर और अचर, स्थावर और जंगम सब में व्याप्त है, जो समस्त सृष्टि का अस्तित्व बनाये हुए है। इस सर्ववाद की भावना से प्रकृति का प्रत्येक पदार्थ चेतन है, क्योंकि वह उसी परमतत्व से अनुप्राणित होती हैं जो सर्वदा चेतन हैं।[2]

इस रहस्य-भावना का उद्गम वेदों से है जिसका आभास यत्रतत्र सुगमता से प्राप्त होता है। वैदिक काल से ही मनुष्य ने प्रकृति में उसी परम-तत्व के दर्शन किये हैं। प्रकृति के प्रति वह आश्चर्यवान हुआ, उसे जिज्ञासा हुई, वह सूर्य की गति, ऋतुओं के परिवर्तन और दिन-रात के आवर्तन को आश्चर्यपूर्ण दृष्टि से देखता रहा—

क्व प्रेप्सन्ती युवती विरूपे अहो रात्रे द्रवतः संविदाने
यत्र प्रेप्स्यन्ती रमियन्त्याय: स्कम्भन्तः ब्रहि कतमःस्विदेवसः।[3]

(विपरीत रूपवाले, गौर और श्याम दिन रात कहाँ पहुँचने की अभिलाषा करके जा रहे हैं, ये सरिताएँ जहाँ पहुँचने की अभिलाषा से चली जा रही है उस परम आश्रय को बताओ, वह कौन है ?)

क्व प्रेप्सन् दीप्यत ऊर्ध्वो अग्निः क्व
प्रेप्सन् पवते मातरिश्वा।
यत् प्रेप्स्यन्ति रमियन्त्यायः एकम्भं
त ब्रहि कतमः स्विदेव सः।[4]

---

(1) प्रकृति और काव्य—डॉ० रघुवंश पृष्ठ—७८-७९
(2) हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण—डॉ० किरणकुमारी गुप्ता—पृ० ६७
(3) अथर्ववेद १०।३।६
(4) अथर्ववेद १०।३।४

(यह सूर्य किस अभिलाषा में दीप्तिमान है ? यह पवन कहाँ पहुँचने की इच्छा से निरन्तर बहता है ? यह सब जहाँ पहुँचने की इच्छा से जा रहे हैं, उस आश्रय को बताओ वह कौन-सा पदार्थ हैं ?)

और निरन्तर जिज्ञासा एवं खोज के फल-स्वरूप उस परम-तत्व को पाने में सफल भी हो गया—

यस्य सूर्यश्चक्षु चन्द्राधाश्च पुनर्णवः
अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाम ब्रह्णं नमः ।[1]

(सूर्य और पुनः पुनः नवीन रूप में उदित होने वाला चन्द्रमा जिसकी दो आँखें हैं, जो अग्नि को अपने मुख के समान बनाये हुए है, उस परम-तत्व को नमन है ।)

यही परम्परा आगे चलती हुई कबीर के 'लाली मेरे लालकी जित देखों तित लाल' रूप में निःसृत हुई, जहाँ तक उस बूढ़े फक्कड़ की दृष्टि जाती है, उन्हें विश्वात्मा ही सौन्दर्य दृष्टिगोचार होता है ।

हाड़ौती का एक दुर्लभ गीत है—'शुकदेव जन्म', जिसमें रहस्यात्मकता का इतना गहरा विवेचन हुआ है कि इन ग्रामीणों के हृदय में व्याप्त रहस्यों का खाका स्पष्ट खिंच जाता है । सहज एवं प्राकृतिक रूप से जो इस गीत का निर्माण है वह एकदम अलौकिक है—

राम कहे री एक सहस मुख्यासी
फण पर धरणी अधर धरी ।
राम कहे री एक सुरसत गणपत
राम कहे री गंगाधार पड़ी ।

× × ×

शुकदेव जा रहे हैं निर्लिप्त, निर्विकार परमतत्व के चिन्तन में लीन । वैराग्य का साक्षात-स्वरूप उस सर्वात्मा के दर्शन को चल पड़ा है और गृहस्थ उसके पीछे पुकारता हुआ कह रहा है—

खड़े रहो पुत्र ! मावड़े रहो तुम
खड़े खड़े तुम करलो ज्वार ।
उलट सुकदेव जी ने जवाब दिया
अब किसकी मां ? अर किसके बाप ?

और वैराग्य की एक ही पंक्ति ने गृहस्थ की आँखें खोल दी । उसके हृदय पटल में नूतन प्रकाश भर गया । शुकदेव ने स्पष्ट कहा—

मरण जीवण का कोई न साथी
मोह माया का फन्दा रे ।
हरे राम कहो हरे राम कहो
हरे कृष्ण कहो, हरे, हरे ।

---

(१) अथर्ववेद—१०।७।३३

इसी प्रकार से एक गीत है—'शिकार गीत', जिसमें शिकार के माध्यम से लोगों को परम-तत्त्व की याद दिलाई है—

अठीन डूंगर अठीन मारवर
अध विच घेरो घाल्यो राज
चारों तरफ सूं घेरचो राज
छोड़ छोड़ रे सपन सुरंगा
कई हठ लाग्यो रे ।

(इधर मोह-ममता का फन्दा है, तो इधर माया ने अपनी हाट सजा दी है और बीच में भोला मानव दिग्भ्रमित-सा चक्कर लगा रहा है, उसके चारों तरफ घेरा डाला हुआ है। ऐ मानव, उठ ! निन्द्रा को त्याग। इन सुनहरे स्वप्नों को भूल जा, ज्यादा हठ ठीक नहीं है।)

जहाँ इन गीतों में आध्यात्मिकता की गंगा प्रवाहित हुई है, वहाँ मीराँ-सी तन्मयता भी है। पचरंग चोला प्रेम-माधुर्य से भींज रहा है—

काली काली बादली में
बिजली चमके रे ।
मेघां मेघां झरमर झरमर
मेवलो बरसे रे ।
भींजे म्हारी नुंई नुंई कोर
डुंगरिया में बोले छै मोर
उजली चादर राखूं ज्यूं की त्यूं
रेण अंधेरी बिजली झपके रे
काली काली बादली में
बिजली चमके रे ।

तो प्राप्त होता ही है, ये घर-आंगन और वन-प्रान्तों की शोभा बढ़ाकर सुन्दरम् और शिवम् की सृष्टि भी करते हैं।[१]

रस्किन का एक कथन है—यह विचार भी ईश्वर का कितना महान् था जब उसने वृक्ष की कल्पना की। हरे जगत के इस अद्भुत और विशाल रसोई घर ही से हम सभी प्राणियों को भोजन मिलता है। सांस के लिये ताज़ी हवा मिलती है[२]। मनुष्य की उस आदिम असहाय अवस्था में हरियाली ने ही माँ के समान उसका पालन-पोषण किया था। मानव समाज का वह आदिम शैशव पूर्ण-रूप से अपनी धरती माँ पर ही निर्भर था। माँ हरियाली उसे खाने को फल-फूल देती थी। खराब मौसम से उसको बचाती थी। आदिम मानव को खाने-योग्य पशुओं का शिकार इस हरे जंगल ही से मिला करता था।[३]

लोक-जीवन आज दिन भी माँ हरियाली के स्नेह और प्यार को भूला नहीं है। वह अब भी उसी का पूत है। माँ की ममता को पहचानता है। पुत्र के कर्त्तव्य को पहचानता है। गुठली की जगह हरे पौधे के उगते अंकुर को देखकर वह उसे दूध-मलाई से सींचने की लालसा प्रकट करता है। लोक-जीवन थोथे आडम्बर में सुख खोजने की व्यर्थ चेष्टा नहीं कर सकता। हरियाली से बढ़कर अन्य कोई भी भौतिक तत्व उसे सुख प्रदान नहीं कर सकता। उसके लिये न अपार धन सुख का प्रतीक है और न कोई पद ही उसे सुख पहुँचाने की क्षमता रखता है।[४]

हाड़ौती लोक-गीतों में तो लोक-नायक स्पष्ट रूप से कहता है मेरे आंगन में तुलसी का पौधा है, पिछवाड़े मरवा है। इससे अधिक मुझे सुख और क्या चाहिये। इस हरियाली के कारण मेरा घर सदा सुहावना लगता है :

म्हारे आंगन तुलसी पिछोकड़ मरवो
ओ घर सदा सुआवणों

ऐ मालिन, वर के लिये लाओ तो सुन्दर सुन्दर पुष्प लाना। पुष्प श्री के परिचायक हैं, सौन्दर्य के आगार हैं, प्रफुल्लता के प्रतीक हैं—

चम्पा चमेली, मरवो मोगरो ए मालणी
और गुलडार रा फूल फूला मालणी
और गुल जावरी रा फूला गेंदा मालणी
सेहरा में चार रंग लावजो ए मालणी

और नागर-बेल तो सारे आंगन में छा रही है परन्तु मेरा हृदय तो दिनों दिन सूना पड़ता जा रहा है—कैसे करूं ? क्या करूं ?

---

(१) मालवी लोकगीत—डॉ० चिन्तामणि—पृ० ३९८
(२) Ibid—Page 24
(३) परम्परा—लोकगीत अंक—पृष्ठ ८३
(४) साहित्य और समाज—विजयदान देथा—पृ० ६०

लटपट छाई रे नागर बेल करेलवा
बागां में छाई अमर बेल ओ करेलवा
ओ आंगन बऊं एलची, ढोला कुमले नागर बेल
बातां रे मिस आवजो, म्हारो मुजरो लीजो झेल
हो करेलवा ···

और तुरन्त आना, मैं तो आपको बागों में मिलूंगी। देव नहीं रहे हो, कैसी ऋतु है, पपैया बोल रहा है—

भंवर म्हारा बागां आज्यो जी
मूं बागां फिरूं अकेली पपियो बोल्यो रे।

और मैं तो आम के वृक्ष के नीचे पालना बाँधूंगी, मुझे तो उसी की छाया सुन्दर लगती है—

हरियाला आंबा के नीचे
पालणो घलायो
हरियाला रे नीम नीचे
पालणो घलायो
सोवगा जी फूटरलो ओ थांरे ई उणियार
हरियाला आंबा के नीचे
पालणो घलायो।

हाड़ौती लोक-जीवन प्रकृति-मय है। प्रकृति की प्रत्येक वस्तु पदार्थ में अपनी चेतना का अनुभव करना—उनके प्रति वैसा ही वर्ताव करना यही आदिम मानव का व्यवहारिक जीवन है, यही उसका धर्म है और यही उनका विज्ञान है।[1]

पशु पक्षी

वनस्पति और पशु जगत माँ धरती के दो स्तन के समान थे। आदिम मानव को अपने पैरों पर खड़ा होने के लिए इन दोनों का भरपूर सहयोग मिला था। वनस्पति जगत से उसे फल-फूल, कन्द-मूल-पत्ते और बीज खाने को मिलते थे, और पशु जगत से उसे खाने को पौष्टिक स्वास्थ्य-वर्धक मांस मिला करता था। अपने प्राण गंवाकर उसने मनुष्य के शरीर को सबल बनाया, खुद कष्ट सहकर मनुष्य के लिये हल खींचा उसे वर्बर-युग से कृपि-युग में ला पटका। वास्तव में पशु उसका सदा से अभिन्न सहचर रहा है।[2]

हाड़ौती लोकगीतों में इनका प्रचुरता से प्रयोग हुआ है। मनुष्यों ने संदेश-वाहन का काम पक्षियों को सौंपा। यह काम कुरजां, काग, कोयल, सुआ, पपइया, हँस, सारस, सोन चिड़कली के जिम्मे रहा है और वे अपनी जिम्मेदारी आज तक सफलता-पूर्वक निभाते चले आ रहे हैं। पत्नी को अपने पति के पास संदेश भिजवाना हुआ, तो उसने इसमें से जो भी पक्षी सामने देखा, उसे अपने समाचार बतला दिये। घर की मेड़ी पर बैठे काग ने लोक-जीवन में आज तक कितना मिठास संचित किया है, कोई पार ही नहीं, कोई लेखा-जोखा ही नहीं है। मनोदशा के संदेश-वाहक इन पक्षियों को बदले में कितनी बार गुड़, घी, खांड का थाल परोस कर भोजन कराया गया है, कितनी बार और कितनी तरह के घूघरे इनके पैरों में बाँधे गये हैं, कितनी बार मिसरी की डलिया इन्हें प्यार के साथ चुगाई गई है, कितनी बार इनकी चोंचों को हिंगलू से लाल रँगा गया है, और कितनी बार कितनी तरह के पिंजरे इनके लिये बनाये गये हैं[3] कोई पार ही नहीं है—फिर भी जन-मानस सौजन्य का प्रतीक हैं। इनके काम करवाने के तरीके में भी हुक्म और आदेश का स्वर नहीं—प्रार्थना, प्यार और भाई-चारे की स्नेहभरी विनय है, आपसी समता है और है मानवीय संवेदना।

पति परदेश में है, पत्नी उसके आने की प्रतीक्षा में है, वह कौए से प्रार्थना करती है—उड़ जा रे भाई! प्रीतम को जाकर साथ ही लेते आना। कह देना, सोलह वरस की उमर भी क्या हद होती है, तन दुश्मन की तरह गरणा रहा है, मदन गिन गिन कर वाण मार रहा है। जरा इधर भी तो नजर डाल—अंग अंग में आलस भर गया है, आम और अनार पक गये हैं—और

---

(१) परम्परा—लोकगीत अंक—पृष्ठ ९२

(२) वही पृष्ठ ९३

(३) साहित्य और समाज—विजयदान देथा—पृष्ठ ७१

उड़ जा रे कागला, प्रीतम कद आवगा रे
म्हाने वरस सोलवों लाग्यो, तन वेरी ज्यूं गरणायो
वाण मदन का लाग्यो, जोवन रीतो जाव रे ।
छाई अंग अंग में भार, पाग्या सजनवा आम अनार
मूं तो रे जाऊं मन-मार मरोड़ा खाव उबासी रे
करे भाइल्या घणी ठठोली, म्हारे हिवड़े लागे गोली
केर्‌यां पाकी घणी रसीली, रसड़ो सूख्यो जावे रे ।

आम, अनार, और केरियो की सांकेतिकता से उसने कितना गहरा अर्थ व्यंजित कर दिया है इसमें कहने की बात नहीं ।

यही नहीं उसकी सहेली कबूतरी भी है, वह उसकी चोंच पर ओलमे लिख कर भेजती है, उसके पंखों पर सात सलाम जड़ती है, परन्तु—

कबूतरी री, म्हारा भंवर न मला दीजे री
कबूतरी, चूंच पे थारे लिख दूं ओलमा
थारा पांख्या प सात सलाम कबूतरी री ।
कबूतरी री, मूं तो सूती छी रंग महल री
आयो जाल जंजाल कबूतरी री ।

वह सुबह उठती है, उसे पपीहे की पिउ '' पिउ''''रट कटीली लगती है, वह प्रिय को बागों में आने का निमंत्रण देती है—

पपिहो बोल्यो रे
ए जी मूं बागां फिरूं अकेली ।
पपैयो बोल्यो रे ।
भंवर बागां में आज्यो जी
छैल बागां में आज्यो जी थांरी सुन्दर बाट निहारे
पपैयो बोल्यो रे ।

जहाँ पक्षियों का वर्णन हाड़ौती-लोक-गीतों में प्रचुरता से हुआ है, वहाँ पशु भी पीछे नहीं रहे । विवाह के अवसर पर घोड़ी को वधू की तरह सिणगारा जाता है ।

घोड़ी ने तुररा री झड़प उड़ाय
केसरियो लाडो परणीजा ने जाय
घोड़ी ने नौरांग नागर पांन
केसरियो बीरो परणीजा ने जाय ।

गाय उसके परिवार की मुख्य सदस्या है, एक लोकगीत 'शरुश जी' में इनकी त्वरता का भी वर्णन हुआ है—

साथीड़ा म्हारा, गायां ने बेगी छोड़ रे
हां रे रंग मरदानां
गायां मे बेगी छोड़ो रे
दनड़ो ऊगी आयो रे

सायीड़ा म्हारा गायां ने थोड़ी ढावो रे,
हां रे रंग मरदानां
गायां ने थोड़ी ढावो रे ।

गाय जहाँ उसकी मातृ-स्वरूपा है, तो बैल उसके भाई हैं, सुख-दुख के साथी, हिम्मत बँधाने वाले, अकाल और कष्ट से पार लगाने वाले फिर लोक-गायक क्या उन्हें भुल सकते हैं—देरी हो रही है, भाई को बहिन के घर जाना है; कहीं देर न हो जाय, कहीं बहिन कुछ और न सोच ले, वह बैलों को शीघ्रता से चलने के लिये प्रोत्साहित करता है—

चालो म्हारा बलमां उतावला रे
म्हारी मां क जाई म्हारे बाट
चालो म्हारा धोल्यां उतावला रे
म्हारी जांमण जाई जोवे बाट
गाड़ी तो रल की रेत में रे वीरा
हो रही गगनां गोट
बलदां वीरां का चमक्या सींगड़ा रे
म्हारे वीरा जी की पचरंगी पाग।

हाड़ौती लोकगीतों में एक दुर्लभ गीत 'शिकार गीत' भी मिलता है जिससे उनकी ओजस्विता, वीरता का पता चलता है—

राजा सिघा न मत छेड़
करूं मूं बीनती
ऐ री सूता सेर निसंग पहाड़ में
जद जागे जद मारू
जगा ब सिंघ न
ए री थारा खाविन्द को
पंजो चाले रजपूतां को हाथ
जगा द सिंघ न।

निष्कर्षतः लोक-जीवन प्रकृति-मय है। आज के सभ्य मानव की दृष्टि में, सर्वथा हेय और तुच्छ समझा जाने वाला लोक-जीवन तो पशु-पक्षियों के बीच उठता बैठता हुआ भी मनुष्य कहलाने का अधिकारी है। पशुओं के साथ रह कर भी वह मनुष्य बना हुआ है। परन्तु सभ्य शहरों के सभ्य मनुष्य, रात-दिन मनुष्यों की अपार भीड़ के बीच किलबिलाते हुए भी दिन ब दिन पशु बनते जा रहे हैं। मनुष्य पर मनुष्य का विश्वास नहीं। मनुष्य को मनुष्य का भरोसा नहीं। सर्वत्र अविश्वास धोखा और फरेब। देह के अन्यथा वह सब कुछ पशु है, और पशुओं के साथ युगों से जिन्दगी बिताते आ रहे लोक-जीवन में आज भी मनुष्यता शेष है, और शेष रहेगी। मानव-समाज का भविष्य इसी मनुष्यता के हाथों सुरक्षित रह सकेगा।

गांव, खेत, खलिहान, नदी, सरोवर—

भारतीय जीवन कृषि प्रधान है, यहां प्रकृति का मुक्त रूप देखा जा सकता है। भारत के विभिन्न गाँवों की तरह हाड़ौती ग्रामों का भी एक अनोखा आकर्षण है। इन गीतों में खेत-खलिहान, नदी-नाले, पग-डंडियाँ, कच्चे रास्ते, गाड़ी-गड़ार, कुएं, सरवरिया री पाल तथा उद्यानों आदि का सहज वर्णन हुआ है। हाड़ौती जन-जीवन सामान्य जीवन है। पति खेत में हल चला रहा है, स्वयं बैलों को हांक रहा है[१]। स्त्री रोटियां और छाछ लाई है।[२] स्त्री गांव के किनारे पर स्थित सरोवर जाती है, 'समदर तलाव' से घड़ा भर कर लाती है।[३] उसका काकड़ वाला खेत है[४] जहाँ उसका पति हल चलाता है। वह खुश है अपने पति और बड़े भाई के प्रति आभार प्रदर्शन करती हुई कहती है, हे भाई! धन्यवाद है। तुमने ठीक किया, जो हाली-सा बहनोई चुना। हे पिता! तुम ने भले ही परणाई इस घर में, अच्छा जवांई ढूंढ़ा है :

भला हो जणी छी री म्हारी
राता देयड़ माय
भलो ही हालीड़ो वर हेर्‌यो
भला ही परणाई र म्हारा जरमर जामो बाप
खान कंवर वीर, भला ही हालीड़ो वर हेरियो।

उसे इससे ज्यादा चाहिए क्या? सुखी जीवन है, ग्राम है, स्वयं का निर्मित मकान है, सुन्दर पति है, खेत है, खलिहान है, उसका पति हल चलाता है, वह खाना पहुँचाती है और दोनों मिलकर हँस-हँस कर खाते हैं, इससे ज्यादा सुख उसे चाहिये ही क्या?

घर लिपे-पुते हैं, जिसमें गोबर और पीली मिट्टी होती है।[५] वह अपनी झोंपड़ी को ही स्वर्ग समझती है, विशाल महलों के समकक्ष मानती है।[६] उसके महलों के वजर किवाड़ हैं।[७] उसके रंगमहल की ऊँचाई इतनी ऊँची है कि

(१) मूं हल हांकूं ए गोरी आपगू, दौड़ घड़ी भर ल्याव।
(२) माथ हो लीन्हों जी हाली भस की डाल, हाथ रोट्‌यां अर छाछ
(३) झड़ झड़ झडया छै हालण का मोर, दौड़ी गई कुवा बावड़ी
देख्या देख्या समद तलाब।
(४) कस्यो ओ दीखे री बाई थारों काकड़ हालो खेत
तो वो हल हांके री थारा घर धणी
(५) या तो गोबर पीली की कीच मची
म्हारो घर लीप्यो ई जाय।
(६) ओ तो भंवर म्हारे मेलां आज्यो जी
ऊँची अटाड़ी दिवलो बले
(७) तोड़या जी तोड़या बजर किवाड़।

वह चढ़ते चढ़ते ही थक जाती है ।[१] ऊपर चढ़कर वह अपने पति की बाट जोहती है, झरोखे से झांकती है।[२] घर उसका लीपा-पोता होता है, केसर और कूंकू की गार डाली जाती है और चंदण चौक पूरा जाता है ।[३]

हाड़ौती के कई लोक-गीतों में बाजार, गलियों, दुकानों आदि का वर्णन भी आया है ।[४] प्रत्येक गृह में वृक्ष का होना शुभ माना गया है । विशेषतः केले का वर्णन रहा है ।[५]

ग्राम-मार्गों पर दौड़ती हुई बैलगाड़ियों का सौन्दर्य-वर्णन गीतों में बड़ी ही स्वाभाविकता से उतारा गया है । मायके की ओर जाने वाली गाड़ी की उड़ती धूल तो उसे केसर और कुंकुम से भी ज्यादा सुहावनी लगती है ।[६]

हाड़ौती लोक-गीत प्रकृति-चित्रण से ओत-प्रोत है । प्रकृति के प्रत्येक छोटे से छोटे वर्णन को, दृश्य को, अथवा क्षण को इतनी तन्मयता, स्वाभाविकता एवं मर्मस्पर्शिता से ढाला गया है कि उन भोले भाले अज्ञात अनाम जन-गायकों के प्रति श्रद्धा से हमारे मस्तक झुक जाते हैं जिन्होंने ग्राम्य-संस्कृति को, हाड़ौती लोक-संस्कृति को सदा के लिये गीतों में बाँध कर अक्षुण्ण बना दिया है ।

---

(१) थांको तो थांको बना रंग जी ओ मेल,
चढ़ता उतरतां थांकी म्हारा राज ।
(२) मेलां चढ़ी ने जोवूं राज री ओ बाट ।
(३) केसर कंकू की गार घुलाऊं चन्दण चौक पुराऊं ।
(४) कोटा रे बाजार से थे पाटणा घड़ाइजो....... ।
(५) सूरज सांमी म्हारो राज री पोल आंगणिये
में केल झवूकिया जी खाय ।
(६) म्हारे पीयरिये री गाड़ी झीणी उड़े रे गुलाल
झीणो केसर कुआर माता जी थे आगल खोल ज्यो ।

नवम प्रकरण

हाड़ौती लोक-गीतों में जीवन, लोकाचार, सभ्यता और संस्कृति

नवम प्रकरण

हाड़ौती लोक-गीतों में जीवन, लोकाचार सभ्यता और संस्कृति

लोक-गीत और जीवन—

नहीं पड़ता । मानवता की एकता का विलक्षण तत्व लोक-गीतों की अपनी विशेषता है ।[१]

यह एकता बुद्धि की आधार-भूमि पर चिरस्थायिनी नहीं रह सकती। अतः इसके लिये विशुद्ध हृदय की—श्रद्धा की भाव-भूमि तैयार होती है लोक-गीतों में। तब सम्पूर्ण मानव जाति एक सूत्र में पिरोई हुई मणिमाला-सी बन जाती है। भगवान बुद्ध का कथन है—

किन्तु हासः किमानन्दः नित्यं प्रज्वलिते सति।
अन्धकार वनद्धाः किं प्रदीपं न गवेषयः ।[३]

वैयक्तिक हास व आनन्द को गर्हित कहा गया है, तथा अन्धकार में प्रकाश दिखाने वाले दीपक की खोज के लिये प्रेरणा दी गई है। लोक-गीतों में भी वैयक्तिक भावनाओं—सुख-दुःखों के लिये कोई स्थान नहीं है, क्योंकि संसार तो दुःख-प्राय है। इसका निदान यह खोजा गया है कि व्यक्ति की वेदना विश्व-वेदना में खो जाय, और विश्व के सुख को अपने माध्यम से खोजे। लोक-गीतों में जीवन के प्रति यही दृष्टिकोण रक्खा गया है[४], यही कारण है कि लोक-गीत गाते समय सबके मनों में समान अनुभुति होती है। हाड़ौती गीत—

उड़ जाऊँगी री मां पांख लगा र
चार दिनां की पाहूणी ।

को छोटी छोटी बच्चियों के मुख से सुनकर कौन द्रवित होकर आँखों के मार्ग से न बरस पड़ेगा।

हाड़ौती लोक-साहित्य में समस्त जीवनोपयोगी बातों को अनुभूति व अभिव्यक्ति का अंग बनाया गया है। फलस्वरूप, जीवन के प्रति गीतों में व्यापक व उदार दृष्टिकोण आ सका है।

हाड़ौती लोकगीत और आचार व संस्कार—

भारत में आचार को अत्यधिक महत्व दिया गया है। यहाँ तक कि उसे परमधर्म[५] तक कहा गया है। आचार सब प्रकार के तपों का मूल है।[६] आचार दो प्रकार के माने गये हैं—श्रोत (वैदिक) व स्मार्त (स्मृति सम्बन्धी)।[७] पराधीनता

---

(१) नारायणसिंह भाटी—लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन—परम्परा (जोधपुर) लोकगीत विशेषांक—चैत्र सं० २०१३

(२) डॉ० देवराज उपाध्याय—लोकायन की भूमिका—पृष्ठ 'ख'

(३) धम्मपद

(४) म्हूं दुखियो म्हारो मन दुखियो, दुखियो के संसार।
कण कण सुखी तो म्हू सुखियो, सुखियो छै घरबार।।

(५) मनुस्मृति १।१०८

(६) वही १।११०

(७) वही १।१०८

की शताब्दियों का तो कहना ही क्या ? जब भारत में व्यापक रूप से शिक्षा के प्रचार की सुविधाएं रही होंगी, तब भी सारे लोगों के लिये वेदादि के सिद्धान्तों के आधार पर सामयिक स्मृतियों में आचार की व्यवस्था हुई, उसी प्रकार लोगों ने जीवन के उत्तरदायित्वों को अनुभव करते हुए उनका व्यवहारिक रूप स्वेच्छया ग्रहण किया होगा। यह सर्वमान्य व्यवहार्य मार्ग, मध्यम मार्ग ही हो सकता है, जिसे सनातन धर्म की संज्ञा मिल गई है। इस प्रकार की व्यवहार्य मान्यताओं को स्थायित्व देने के लिये लोक-गीतों का आश्रय लिया गया। व्रतोत्सवादि पर ये लोक-गीत सुनाये जाते हैं। पुराणादि की कथाएं गेय व अगेय रूप में लोक में प्रचलित हो गई हैं। महाकवि भी अपनी रचनाओं को लोक संपृक्त करने के लिए विशेष शैलियों का आश्रय लिया करते थे। बाल्मीकि ने रामायण को आख्यान काव्य[1] के रूप में रचा था, जिसका पठन, गान और अभिनय हो सकता था।[2]

वस्तुतः समाज-शास्त्र के परिपार्श्व में इन गीतों की महत्ता सर्वोपरि है। माता के हृदय में अपने बालक के प्रति उठने वाली सुहावनी लोरियाँ, प्रियतम के विरह में व्यथित नव-वधू की तड़फन, विधवा की कसम, कन्या का हास्य, झूले की बहार, पति पत्नी की कथा, उलाहने, पहेलियां आदि इनमें ओतप्रोत है। मानव की इन गीतों में जन्म से मृत्यु पर्यन्त तक की कथा गुंफित है। जन्म पर सोहर[3] और जच्चा[4] के गीत, विवाह पर बन्ना-बन्नी[5] हल्दी आदि के गीत, जनेऊ के गीत[6], परदेश-गमन पर के गीत[7], आगमन पर गीत[8] और यहाँ तक कि मृत्यु

चूंकि ये गीत विशेषकर सामाजिक उत्सवों, जनेऊ, विवाह, गौना, विदाई पर ही गाये जाते हैं, इन संस्कारों से सम्बन्ध रखने वाली कई बातों का वर्णन इनमें पाया जाता है। ननद तथा भोजाई का शाश्वत विरोध और झगड़ा[1], सास तथा बहू का दैनिक कलह[2], परदे की प्रथा का अभाव[3], विधवा की दयनीय दशा[4] का मार्मिक चित्रण, पुत्री के जन्म की निन्दा[5] तथा उसके साथ किया जाने वाला कटु व्यवहार आदि विषयों की झाँकी इन गीतों में सहज की प्राप्त हो जाती है।

लोक-गीत—प्रकृति के उद्गार—तड़क भड़क से दूर, पारदर्शी शीशे की तरह स्वच्छ हैं। सरलता, रस, माधुर्य और लय इनके गुण हैं। प्रकृति के इन उद्गारों को सजाने में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का हाथ अधिक रहा है। करुण, हास्य, शृंगार आदि रसों से भरे हुए ये गीत कण्ठों से फूट फूट कर युग-युगों से कण्ठों पर ही खेलते चले आ रहे हैं।

लोक-गीत सामूहिक चेतना को व्यक्त करते हैं। व्रतोत्सवादि[6] के गीतों में सहयोग की भावना का उल्लेख तो मिलता ही है, सेवा, भक्ति[7], तप, त्याग[8] आदि के आदर्श सोदाहरण गीतों में मिलेंगे। युगानुरूप समाज सुधार के विचार भी हाड़ौती लोकगीतों में पर्याप्त रूप में प्राप्त हैं—

दारूड़ा को दागो म्हारी रखड़ी ऊपर लाग्यो सा
दारू छोड़ दो बालम वा थारी चाकर रहस्यू सा
×　　　　×　　　　×
नैन्या ने इस्कूले पढ़वा मेलो म्हाका भरतार
नैन्या ने पढ़ायो उन्ने टीटी गार्ड बणादो
मैं तो रेलां बैठी जासू पीयर राज।

---

(१) देखिये—इसी शोध निबन्ध का परिच्छेद, हाड़ौती लोकगीतों में नारी
(२) वहीं
(३) वही
(४) वही
(५) वही
(६) माथा न भंवर घड़ावज्यो जी, ढोला साहेबा जी, रखड़ी रतन जड़ाय
साहेबा जी तीज सुंण्यां घर आय
साहेबा जी तीजां को बड़ो छे तोवार।
(७) सासू जी म्हारा तीरथ गंगा जी को
सुसरा जी जांगा पिरियाग
सास-सुसरा री सेवा करूं हाँ जी सायबा।
(८) मन्ने पीयर मती मेलो जी लसकरिया
थांरे पसीने रीं जागा नवल बना
म्हारो बहाद्यो खून
थांरे कारज आयग्यी म्हारी
सरगी सारी जून।

के केन्द्र बन कर पूजा के अधिकारी बन गए, और पीपल वटादि वृक्ष भी। देवताओं के अतिरिक्त इन सभी की पूजा के गीत आज भी हाड़ौती में गाये जाते हैं।

हाड़ौती के आचार सम्बन्धी गीत कहीं आदर्श प्रस्तुत करते हैं—

ऐड़े चेड़े मत जावजो जी सायबा
मीठा तो बोलो जो वैंण।
परदेसण सूं नैणां मती लड़ावजो जी सायब
याद करीज्यो मने रैंण।

तो कहीं कठोर सामाजिक बन्धनों के प्रति व्यंग्योक्तियों के द्वारा रोष व्यंजित करते हुए अधिक उदार नियमों की आकांक्षा व विवेचन प्रस्तुत करते हैं—

होय पंखे उड़ मिलूँ था ने
पंख काट्या घर बार ओ बालमा
नाडो होय तो राखल्यूँ ए
पण समदर न राख्यो जाय।

आदर्श जीवन की सच्ची व उदार व्याख्या[1] लोक-गीतों के अतिरिक्त साहित्य में कठिनाई से ही प्राप्त होगी।

हाड़ौती गीतों में संस्कृति व सभ्यता—

संस्कारों का समन्वित रूप ही 'संस्कृति' है। मनुष्य प्रकृति का संस्कार करके संस्कृति को जन्म देता है। संस्कृत पुरुष का मानसिक विकास उसकी संस्कृति का स्वरूप प्रस्तुत करता है, और वह विकास जिस रूप में बाह्य साधनों द्वारा प्रकट होता है, उसे उसकी सभ्यता कहा जा सकता है। वे सभी रूप अथवा पहलू जिन्हें संस्थाबद्ध व्यापार कहा जाता है, एवं जिनसे विश्व गतिमान रहता है, सभ्यता के उपकरण कहे जायेंगे, एवं वह स्थिति जिससे मानव पूर्णतः पशुत्व से मुक्ति पाकर मनुष्यत्व के क्षेत्र में प्रवेश करता है, संस्कृति का क्षेत्र कहा जाता है।[2] लोक-गीत सभ्यता व संस्कृति के यथार्थ व्याख्याता हैं। प्रातिभ साहित्य व्यक्ति की प्रतिभा की देन होता है, अतः व्यक्ति के मान्यता का ही उसमें प्रकाशन हो पाता है, यद्यपि इस मान्यता के पीछे सामाजिक पृष्ठभूमि भी होती है। लोक-गीत समाज के सामान्य वर्ग से सम्बन्ध रखते हैं, अतः समाज की सांस्कृतिक

---

(१) धरती डगे तो भल डगे
पण थें मत डगज्यो ओ।
परदेसां री कांमणी सूं
वचके रइज्यो ओ।

मीण कैज्यो वैण हियो मत सालज्यो, धीमा रेज्यो आप, म्हने चितारज्यो।

(२) संस्कृति और सभ्यता—नारायणदत्त श्रीमाली—प्रेरणा (जोधपुर) जुलाई १९६४—पृष्ठ १४

चेतना को यथार्थ रूप में व्यक्त करने में सफल होते हैं।[1] लोक-गीतों के माध्यम से ही इस बात पर विश्वास जमता है, कि केवल शरीर संस्थान की दृष्टि से ही नहीं, सांस्कृतिक पार्श्वभूमि में भी विश्व के मानव एक हैं।[2] उनके खण्ड खण्ड कर के खण्डित-संस्कृति की कल्पना करना बौद्धिक ईमानदारी की भावना के विरुद्ध है।[3] लोक-साहित्य के अमर वैतालिक सांस्कृतिक समता की घोषणा मानवीय शाश्वत भावनाओं की आदिम अभिव्यक्ति के रूप में करते ही रहते हैं, और कहते हैं, कि हम सब प्रकृतितः एक है।[4]

वस्तुतः ग्राम्य जीवन की, हाड़ौती जन-समाज की उसकी प्रकृति एवं संस्कृति का सही एवं सच्चा प्रतिविम्ब हमें इन गीतों में प्राप्त होता है। इन गीतों के अध्ययन से पता चलता है कि इनमें स्त्रियों का चरित्र बड़ा ही उदात्त, शुद्ध एवं पवित्र रूप में चित्रित किया गया है। किस प्रकार स्त्रियों ने मुगलों से अपने सतीत्व की रक्षा की। एक देवर जब भौजाई से कुत्सित प्रस्ताव रखता है, तो वह तड़फ कर कह उठती है, कि हे देवर ! मैं तेरी बाँहे कटा कर आँखों में मिर्चें भरवा दूंगी। यही नहीं, अपितु एक हरिणी अपने पति की मृत हड्डियों को लेकर सती होने के लिये तत्पर दिखाई देती है। कितना आदर्श एवं कर्त्तव्य-परायणता भरी पड़ी है इन गीतों में। वास्तव में हाड़ौती लोक-गीत यहाँ के सांस्कृतिक इतिहास के सच्चे प्रतिनिधि हैं।

लोक-गीतों में लोक-जीवन का स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है। उनमें जीवनोपयोगी जिन जिन वस्तुओं का उल्लेख मिलता है, साधन-सामग्री का आख्यान किया जाता है, उनसे सभ्यता पर व्यापक रूप से प्रकाश पड़ता है; और जीवन के प्रति जिस दृष्टिकोण का दिग्दर्शन वे कराते है, वह लोकगीतों में व्याख्यात संस्कृति है। लोक-धर्म की प्रतिष्ठा लोक-गीतों द्वारा व्याख्यात सभ्यता व संस्कृति परम्पराओं द्वारा ही होना संभव है।

वर्तमान समय में लोक-गीतों का अध्ययन समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से भी किया जाता है। इससे मानव संस्कृति के विकास के सोपानों का उद्‌घाटन होने की संभावना है।

---

(१) इन्दर राजा में बरसाय
करां निनाण, धरती माता सूं
सोनो मांगा रे हरसाय
इन्दर राजा में बरसाय।

(२) कुण छोटो कुण मोटो, उण मायत रे रजवाड़ा में
कीड़ी कुंजर दोऊ समान उण मायत रे रजवाड़ा में
चोंच दियां तो चुगो दिवाय उण मायत रे रजवाड़ा में।

(३) बद्रीप्रसाद पंचोली—वैदिक संस्कृति और नारी—वेदवाणी (बनारस) वर्ष १६

(४) डॉ० देवराज उपाध्याय—लोकायन की भूमिका—पृष्ठ 'ग'

हाड़ौती लोकगीत और युगधर्म—

संसार परिवर्तनशील है। उसमें रहने वाले प्राणियों पर भी इस परिवर्तन-शीलता का प्रभाव पड़ता है। लोगों की मान्यताएं क्षण प्रति क्षण बदलती रहती हैं।[1] इस चलाचल संसार में धर्म को निश्चल माना जाता है, परन्तु मानव जाति की धर्म विषयक मान्यताएं भी परिवर्तित होती रही है।[2] भिन्न भिन्न समय पर रचित स्मृति-ग्रंथ समाज की परिवर्तित मान्यताओं व परम्पराओं पर प्रकाश डालते हैं। लोक-गीत भी अपने युग की मान्यताओं के अनुसार ही ढलते रहते हैं। उनमें स्थायी तत्व है, उनकी ढाल या लय। उस लय पर शब्दों का चोला चढ़ता रहता है। लय रागात्मक तत्व में कोई अन्तर नहीं आने देती, और समाज की जीवित परम्पराएं लोक-गीतों के कलापक्ष में भी अन्तर नहीं आने देती। बुद्धि तत्व पर आधारित विचार परिवर्तनमान है।

किसी लोक-गीत की लय प्राचीनतम युग की हो सकती है, और उसके कुछ भाव भी उतने ही प्राचीन हो सकते हैं। यह भी संभव है कि उन भावों को सुरक्षित रखने के लिये ही उन्हें गेय रूप में समाज की पूर्व-पीढ़ी उत्तर-पीढ़ी को सौंपती चली आ रही हो, परन्तु लोक-गीतों का कुछ वैचारिक अंश अवश्य ही परिवर्तित होता रहता है। यह परिवर्तित अंश अपने युग-धर्म को व्यंजित करता है। मध्य-युग-धर्म ही सनातन-धर्म से संयुक्त होकर मानव समाज को युगानुकूल दृष्टि प्रदान करता है।

---

(१) सकरो नी लेणो सगे दायजो
बेटा ने बेचो क्यूं पढाय
सकरो नी लेणो समधी दायजो।

(२) देव नी मन्दर में मायां
देव नीं मगरा में जायां
देव तो खेतां में हरखे
देव पसीना सूं वे टपके
देव नीं मन्दर में मायां।

दशम प्रकरण

हाड़ौती लोक-गीतों में नारी

दशम प्रकरण

हाड़ौती लोक-गीतों में नारी

नारी की ऐतिहासिक स्थिति—

इतिहास अतीत के सभ्य-युग में किये मानव-प्रयास की अनुक्रमिक कथा है[1] जो कि इस प्रकार से गुंफित है कि उसे सहज ही विच्छिन्न कर के नहीं देखा जा सकता, फिर भी उसे भली-भाँति समझने के लिये काल प्रसार में वितरित किया जाता है।

इतिहास की दृष्टि, अतीत के जिस सुदूर तक झांक सकती है, उसका अधिकांश अंधकार-मय माना जा सकता है[2], क्योंकि अतीत अनादि है उसका अधिकतर सुदूर भाग अज्ञात है[3]। अतः इस काल की नारी की सही स्थिति जानना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है, फिर भी भारत में मातृ-सत्ता दृढ़ होकर बहुत समय तक चली थी[4]। सामूहिक विवाह प्रथा में अकेली माता ही निश्चित रूप से पहिचानी जा सकती थी[5]। यूथ-विवाहों में माता के जनकत्व को ही पहचाना जा सकता था, और यज्ञ आदि व्यवस्था में अपनी प्रमुखता के कारण वह परिवार की स्वामिनी होती थी इसलिये मातृ-परम्परा के अनुसार पीढ़ियाँ चलती थी[6]; किन्तु ऋग्वैदिक-कालीन आर्यों ने मातृ-सत्ता के पूजन की प्रथा द्राविड़ों से सीखी थी— (लोकायन-डॉ० चिन्तामणि पृष्ठ ७९)

कालान्तर में समाज परिवर्तन के फलस्वरूप मातृ-सत्तात्मक स्थिति पितृ-सत्तात्मक युग में बदल गई[7]। स्वयं नारी नर की दासी हो गई, और वह पुरुष के भोग की एक साधन बन गई, निष्कर्षतः भारत में आदिम नारी की ऐतिहासिक स्थिति सन्तोषजनक थी। मातृ-युग में वह स्वामिनी, बलवती एवं सम्मानिता थी

---

(१) भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेपण—डॉ० भगवतशरण उपाध्याय—पृष्ठ १

(२) हिन्दी महाकाव्यों में नारी चित्रण—डॉ० श्यामसुन्दर व्यास पृष्ठ—२०

(३) भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेपण—डॉ० भगवतशरण उपाध्याय—पृष्ठ १

(४) भारत—श्रीपाद अमृत डांगे—अनु० आदित्य मिश्र—पृष्ठ ८५

(५) नारी विवाह और सदाचार—पाहिद प्रवीन—अनु० आनन्दप्रकाश जैन—पृष्ठ २४

(६) भारत—श्रीपाद अमृत डांगे—पृष्ठ ८४

(७) भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेपण—डॉ० भगवतशरण—पृष्ठ २९७

और पितृसत्तात्मक युग में भी उसकी अवस्था दयनीय नहीं हो पाई थी ।[१] वैदिक युग का इतिहास भारतीय नारी का स्वर्णयुग था, वैदिक समाज में स्त्रियों की स्थिति जितनी ऊँची थी, उतनी बाद में कभी नहीं रही।[२] वे समर भूमि में शूरता दिखाती, विद्याध्ययन करती व सामाजिक समारोहों में खुलकर भाग लेती थी। पिता की सम्पत्ति में उसका भी हिस्सा था। ऋग्वेद की कई ऋचाओं की वह निर्मात्री है।[३] वास्तव में, नारी का सौन्दर्य और व्यक्तित्व वेदकालीन मस्तिष्क को अनिवार्यतः आकर्षित करता है—वैदिक वेदी का ढाचा भी स्त्री के रूप पर ही ढाला गया था। वेदी पश्चिम में चौड़ी हो, मध्य में कृश और पूर्व में पुनः चौड़ी क्योंकि इसी बनावट के कारण स्त्री की प्रशंसा की जाती है।[४]

उपनिषद्-काल से नारी की स्थिति में अन्तर आने लगा और कर्मकाण्ड की जटिलता के कारण स्त्रियाँ पतियों के साथ बैठकर समूची यज्ञ-क्रिया नहीं कर सकती थी।[५] वे यज्ञोपवित धारण करती थी। मैत्रेयी, गार्गी आदि विदुषी स्त्रियाँ शास्त्रार्थ करने की सामर्थ्य रखती थी, परन्तु अनुलोभ प्रथा से स्त्रियों के पद को हानि पहुँची तथा तपस्या के बढ़ते प्रभाव के कारण स्त्रियों से विमुखता भी एक गुण मानी जाने लगी। वैदिक युग में उसने जो ऊँचाई प्राप्त की थी, वह धीरे धीरे कम होने लगी। भारतीय नारी की अधोगति का आरम्भ वहीं से समझना चाहिये।[६]

वीर-काव्य-काल में भी नारी की स्थिति वही रही, जो इसके पूर्व थी।[७] बहु-विवाह एवं बाल-विवाह की प्रथा का प्रचलन हो गया था।[८] अब उसका मुख्य कर्त्तव्य घर का प्रबन्ध करना ही था, जिसमें आय की रक्षा और व्यय भी शामिल थे।[९] पर्दे की प्रथा का सूत्रपात भी इसी युग में हो गया था, मगर घोर पर्दा प्रथा न थी। वीर-काव्य-काल सारे भू-मंडल पर नारी-पतन का घंटा नाद है।[१] प्रतीत होता है कि इस काल तक आते-आते नारी के सम्मान में अन्तर आने लगा

(१) हिन्दी महाकाव्यों में नारी चित्रण—डॉ० श्यामसुन्दर व्यास—पृष्ठ २१
(२) भारत का सांस्कृतिक इतिहास—हरिदत्त वेदालंकार—पृ० ५१
(३) हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता—डॉ० बेनीप्रसाद—पृ० ३७
(४) वही—पृष्ठ ३७
(५) आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना—शैलकुमार—भूमिका—पृष्ठ १
(६) भारत का सांस्कृतिक इतिहास—हरिदत्त वेदालंकार—पृष्ठ ५४
(७) हिन्दी महाकाव्यों में नारी चित्रण—डॉ० श्यामसुन्दर व्यास—पृष्ठ १३
(८) भारत का सांस्कृतिक इतिहास—हरीदत्त वेदालंकार—पृष्ठ ६९
(९) भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास—डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार—पृष्ठ १७१
(१०) हिन्दू सभ्यता—डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी—अनु० वासुदेवशरण अग्रवाल—पृष्ठ १६३

गया था, और उसे चारों ओर से जकड़ने एवं उसके अधिकारों को कम करने के प्रयास शुरू हो गये थे।

बौद्ध-युग में स्त्रियों की स्थिति सन्तोषजनक थी। लिच्छवी लोग स्त्रियों का आदर करते थे और उनमें स्त्रियों का सतीत्व पूर्णतया सुरक्षित था।[२] फिर भी उसके व्यक्तित्व के विकास की सीमा गृह और परिवार तक ही सीमित थी।[3]

मौर्य-गुप्त एवं उत्तर-हिन्दू-काल तक आते-आते स्त्रियों की स्थिति में थोड़ा सुधार हुआ। कुछ अवस्थाओं में वे तलाक दे सकती थीं और पुर्नविवाह भी कर सकती थीं। विधवा-विवाह भी प्रचलित था, फिर भी स्त्रियों की उन्नति में घुन लग गया था। मेगस्थनीज ने स्त्रियों के खरीदने और बेचने की बात लिखी है।[४] मौर्य-काल में स्त्रियाँ पर्दे में रहती थीं। गुप्त-काल में स्त्रियों को कला और साहित्य की शिक्षा दी जाती रही है। इस युग में शील, भट्टारिका आदि कई विदुषियाँ कवयित्रियाँ व लेखिकाएँ हुईं। इन्द्रलेखा, विज्जिका, शीला, समुद्रा आदि कवयित्रियों की रचनाएँ उनकी प्रतिभा का प्रमाण है। इस समय यह सिद्धान्त सर्वमान्य-सा था कि सभी सदैव परतन्त्र रहनी चाहिए, उसे दुःशील और कामुक पति की भी सेवा करनी चाहिए।

राजपूत-काल तक आते-आते कन्या का जन्म अमंगल का द्योतक समझा जाने लगा, तथा मध्य तथा पश्चिमी भारत के राजपूतों, जाटों, मेवातों में कन्या का जन्म होते ही उसे अफ़ीम आदि देकर मार दिया जाता था, ताकि कन्या के विवाह के समय दहेज आदि के कारण जो अपमान सहना पड़ता है तथा परेशान होना पड़ता है, उससे मुक्ति मिल जाय। सती प्रथा भी जोर पकड़ बैठी। पर्दा प्रथा भी बढ़ी, स्त्रियों की पराधीनता बढ़ती ही गई। बाल-विवाह का प्रचलन और स्त्रियों को वेदाध्ययन का अधिकार न होने से शूद्रों के समान समझा जाना इस दुरावस्था के प्रधान कारण थे।[५]

मुस्लिम-युग में तो नारी की अवस्था और कारुणिक हो गई। पर्दा प्रथा, बाल-विवाह और सती-प्रथा ने जोर पकड़ा। मुसलमानों के भय के कारण मार-मार कर और चिता से जबरदस्ती बाँध कर स्त्रियों को सती करने का प्रचलन बढ़ा। साधारणतः स्त्रियों का जीवन नारकीय बन गया। नारी की उन्नति के सारे मार्ग अवरुद्ध हो गये।[६] स्त्रियों की दशा को

हीन बनाने के दुष्कार्य के जिम्मेदार सबसे पहले इस्लाम के घोर असामाजिक और कट्टर आस्तिक लोग थे।[१] इस काल में उसके अधिकारों का अपहरण ही नहीं हुआ, अपितु जीने के लिये उसे शुद्ध प्राण-वायु भी मिलना कठिन हो गई। युग के स्वार्थ ने उसके विकास को अफ़ीम, आग और अनैतिकता का खिलौना बना डाला। नारी के प्रति बरता गया ऐसा घिनौना दृष्टिकोण इसी काल में संभव हो सका और संभवतः भारतीय नारी के विकास के इतिहास का सबसे काला पृष्ठ यही काल है।[२]

आधुनिक-काल में आते-आते नारी की स्थिति में भी अन्तर आया। दिसम्बर १८२८ से सती-प्रथा बन्द हो गई। १९२९ में बाल-विवाह निषेधक कानून पास हुआ। सन् १९३५ के शासन-विधान द्वारा भी प्रान्तीय तथा केन्द्रीय परिषदों में भी स्त्रियों के लिए स्थान सुरक्षित रखे गये। वर्तमान-शासन विधान के अनुसार लिंग-भेद समाप्त हो गया है, वे विदेशों में राजदूत, देश में मंत्री-पद प्राप्त करने व भारतीय शासन की परीक्षाओं में बैठने की भी हकदार बन गई हैं। संयुक्त-राष्ट्र-संघ की सर्व-प्रथम महिला अध्यक्षा बनने का श्रेय भी भारतीय नारी को प्राप्त है।[३] मध्य-युगीन अंधकार वीथियों से निकल कर वह अब समानता के राज-पथ पर साँस ले रही है। उसकी स्थिति में अद्भुत परिवर्तन आया है और सैद्धान्तिक रूप में उसका दर्जा किसी भी प्रकार कम नहीं है।

मनोविज्ञान और नारी—

मनोविज्ञान का शाब्दिक अर्थ है, जीवन की साँस का विज्ञान। शताब्दियों से इसकी परिभाषा आत्मा का विज्ञान अथवा दर्शन के रूप में दी जाती रही है।[४] मनुष्य के मन की चेतन अवचेतन ग्रन्थियों को सुलझाना, मन के भीतरी स्तरों का अध्ययन करना इसका सर्व-प्रमुख उद्देश्य है। मनोविज्ञान का सम्बन्ध अपर-जनों से भी है। अतः इसका सामाजिक पक्ष भी है, जो कि व्यक्तियों के समूहों एवं समाज की गुत्थियों को सुलझाना चाहता है।[५] इसका क्षेत्र जीवन की वे गूढ़ और रहस्यमयी प्रवृत्तियाँ हैं जो मानव-समाज की सभ्यता और संस्कृति में सहायक होती हैं।[६]

नारी जीवन के मनोवैज्ञानिक अध्ययन के विकास को स्पष्टतः देखना चाहें तो प्रतीत होता है कि इसका साँगोपाँग अध्ययन ईसा पूर्व सदियों से शुरू हो गया था। ईसा की पहली या दूसरी शताब्दि में वात्स्यायन ने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ 'काम-सूत्र' लिखा।[७] काम-सूत्र के अनुसार महादेवजी के अनुचर नन्दी ने सर्व

(१) भारतीय और इस्लामी सभ्यता का अध्ययन—ले० खुदाबक्स
(२) हिन्दी महाकाव्यों में नारी चित्रण—डॉ० श्यामसुन्दर व्यास—पृष्ठ २७
(३) वही—पृष्ठ ३०
(४) Phychology—R. S. Wordsworth—Page 20
(५) शिक्षा शास्त्र—डॉ० सीताराम जायसवाल—पृष्ठ १९६
(६) वही—पृष्ठ १९८
(७) हिन्दी साहित्य की भूमिका—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी—पृष्ठ १६४

प्रथम एक हजार अध्याय में 'काम-सूत्र' की रचना की[१], तब से यह अवश्य कहा जा सकता है कि यौन मनोविज्ञान की दृष्टि से नारी उनके अध्ययन का केन्द्र विन्दु थी।[२] स्वयं वात्स्यायन ने सैकड़ों वर्षों पूर्व काम को एक प्रवृत्ति ही माना था। कला का ज्ञान ही यौन भावनाओं को बढ़ावा देता है और एक तरह का वातावरण बनाने में समर्थ होता है। यही वातावरण नारी मन को भी विचलित कर सकता है क्योंकि कलाओं में चतुर, वाचाल, चाटुकार मनुष्य बिना जान-पहिचान के भी स्त्रियों के चित्त को हर लेता है।[३]

स्त्रियां भावुक अधिक होती है, संवेगात्मक आवेगों के वशीभूत वे शीघ्र ही हो जाती है और इसी संवेगावेग के फलस्वरूप उसकी तर्क-शक्ति का ह्रास होकर वह नर के आश्रित होने में अपना गौरव अनुभव करती है।

फ्रायड के पूर्व भी कई पाश्चात्य विद्वानों ने इस पर विचार प्रस्तुत किया है। गाल (Gall) के अनुसार पुरुषों की यौनेच्छा स्त्रियों से कहीं अधिक बलवती होती है[४] और वेनेट (Venette) ने जहाँ पुरुषों को स्त्रियों के सामने बच्चे ठहराया है, वहाँ मांटेग ने कहा है कि प्रेम स्त्रियों का वह अनुशासन है, जो उनकी शिराओं में उत्पन्न होता है।[५]

सत्रहवीं शताब्दि में जाकर इस विषय में और स्पष्टता आई। उलन के मतानुसार स्त्री की प्रेम प्रवृत्ति मौन होकर भी अधिक बलवती होती है।[६] फ्रायड का दृष्टिकोण इस विषय में अत्यन्त सुलझा हुआ है उसके अनुसार मनुष्य की मूल-शक्ति काम शक्ति है, इसके सुचारु रूप से प्रकाशन करने पर ही मनुष्य स्वस्थ रहता है। इसके प्रकाशन में बाधा होने से विक्षिप्तता तथा अन्य मानसिक रोगों की उत्पत्ति होती है। कामशक्ति के प्रकाशन की चार अवस्थाएं हैं—आत्म-प्रेम, माता-पिता का प्रेम, समलिंगी-प्रेम एवं विषम-लिंगी-प्रेम।[७] विकृत प्रेम भावना ही रोग है।[८] विकृतियों के कारण यौन उद्देश्य सक्रिय एवं निष्क्रिय रूपों में मिलता है[९] कुछ स्त्रियां में पुरुषत्व भाव की प्रधानता के कारण वे व्यवहार में मर्दानगी का प्रदर्शन

---

(१) काम-सूत्र—वात्स्यायन—जय मंगल टीका—पृष्ठ १।१।८

(२) हिन्दी महाकाव्यों में नारी चित्रण—डॉ० श्यामसुन्दर व्यास—पृष्ठ ३२

(३) काम-सूत्र-वात्स्यायन—जय मंगल टीका—पृष्ठ १।३।२१

(४) Studies in Phychology in Sex—Vol. II—Hevelock Ellis—Page 194-95.

(५) The same-Page 198.

(६) The same-Page 200.

(७) आधुनिक मनोविज्ञान—लालजीराम शुक्ल—पृष्ठ १०८

(८) वही—पृष्ठ ११३

(९) Psychology of Women—Vol. I.—Helen Dents—Page 258

करने में अपना गौरव अनुभव करती हैं । उनकी कण्ठ ध्वनि, बालों का उगना अथवा उरोजों का अविकसित रह जाना इसके उदाहरण हैं[1] । मर्दानगी के प्रदर्शन द्वारा ये स्त्रियाँ अपनी लैंगिक-हीनता को दबाने का प्रयत्न करती हैं ।[2]

उक्त विवेचन को स्पष्टतः देखे तो प्रतीत होगा कि नारी की मनोवैज्ञानिक विकास-परम्परा वात्स्यायन से लेकर फ्रायड तक एक-सूत्रित रही है। मनोविश्लेषण द्वारा उसकी कई गुत्थियाँ सुलझ चुकी है, नारी-हीनता की परम्परागत धारणा, परम्परागत विश्वास मात्र ही है, वैज्ञानिक सत्य नहीं। आज की नारी उचित शिक्षा-दीक्षा के फलस्वरूप पुरानी मान्यताओं व विश्वासों को उखाड़ फेंकने में समर्थ हुई है और वह पुरुष से कन्धे से कन्धा मिलाकर प्रत्येक प्रकार के कार्य को सुचारु रूप से करने में अपने को समर्थ व्यक्त करती है।

सामाजिक विकास (समाज और नारी)

नारी के सामाजिक विकास का अध्ययन करने से पूर्व हमारा ध्यान उसके केन्द्र बिन्दु परिवार पर जाता है। परिवार ही पति-पत्नी के जीवन की धुरी है। जो पुरुष है, वही स्त्री है, और स्त्री वृत्त का व्यास है, और पुरुष उसकी परिधि है। जिस प्रकार वृत्त के व्यास को तिगुना करके परिधि बनती है, उसी प्रकार स्त्री के जीवन से गुणित होकर पुरुष का जीवन बनता है । यही पति-पत्नी या गृहस्थ के जीवन का साज-संगीत है।[3]

हिन्दू परिवार को समझने के लिये यह आवश्यक है कि हम स्त्री के उत्तरोत्तर विकास को समझें। कन्या, बालिका, युवती, प्रौढ़ा, वृद्धा आदि उसकी उत्तरोत्तर सीढ़ियाँ है। हिन्दू समाज की रीढ़ विवाह है जिस पर परिवार का सारा बोझ रहता है। परिवार में स्त्रियों का काफ़ी सम्मान रहता है—यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।[4] मगर उसे यह स्थिति प्राप्त करने में काफ़ी समय तक संघर्ष करना पड़ा। संघर्ष का मूल कारण था पति के अधिकारों को व्यापकता देना[5] और इसका अन्य मुख्य कारण था पुरुष द्वारा सामाजिक नियमों में स्त्री की स्वतन्त्रता को जकड़ देना। न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति[6]। स्त्री बाल्य-काल में पिता, युवावस्था में पति और पति के मर जाने के पश्चात् पुत्र के अधीन होकर रहे।[7] स्त्री के लिये अलग किसी

---

(१) हिन्दी महाकाव्यों में नारी चित्रण—डॉ० श्यामसुन्दर व्यास—पृष्ठ ३७

(२) Psychology of Women—Vol. I.—Helen Dents—Pagr 258

(३) हिन्दू परिवार मीमांसा की भूमिका—ले० हरीदत्त वेदालंकार—पृष्ठ २५

(४) मनुस्मृति—सं० पं० रामतेज पाण्डे ३।५६

(५) हिन्दू परिवार मीमांसा—हरिदत्त वेदालंकार—पृष्ठ ८८

(६) मनुस्मृति—सं० पं० रामतेज पाण्डे ९।३

(७) वही ९।३

यज्ञ, व्रत तथा उपवास का विधान नहीं है, केवल पति-सेवा से ही वह स्वर्गलोक तक आदर पाती है।[१]

माता का स्थान हिन्दू-परिवार में सदैव से ही पूजनीय रहा है। पतित पिता छोड़ा जा सकता है, किन्तु पतित माता नहीं छोड़ी जा सकती।[२] चाहे वह कितनी ही कुलटा हो पुत्र का कर्त्तव्य है कि वह उसका उचित भरण-पोषण करे। 'मातृदेवो भव' जैसे वाक्य माता की देवता के समान पूजा करने के आदर्श देते हैं।[3] माता को दक्षिणाग्नि एवं मातृ-भक्ति को भूलोक की प्राप्ति का कारण बताया गया है।[४] स्पष्ट है कि माता की गरिमा की प्रशंसा सर्वत्र की गई है। 'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति'[५] जैसे वाक्य उसकी श्रेष्ठता के सबल प्रमाण हैं।

कन्या की स्थिति वैदिक काल में हर्ष की सूचक नहीं थी। धर्म-सूत्रों के काल से ही कन्या को उत्तराधिकार के अधिकार से चाहे वह परिवार की एक मात्र संतान हो वंचित कर दिया गया।[६] फिर भी कन्या की स्थिति दयनीय नहीं थी। उसे सर्वांग सुन्दर कुल और शील में उत्कृष्ट एवं रूपवान वर मिलने पर विवाह के योग्य न होने पर भी कन्या का विधिवत विवाह करने की सलाह मनु महाराज देते हैं।[७] परन्तु धीरे धीरे उसकी स्थिति में अन्तर आया। कालान्तर में कन्या चिन्ता का विषय बन गई। योग्य वर का ढूँढना, दहेज जुटाना, उसकी तनिक असावधानी के कारण परिवार की अपकीर्ति का भय और श्वसुर कुल में उसके भावी सुखमय जीवन की आशंका ज्यों ज्यों बढ़ती गई, त्यों त्यों कन्या की स्थिति गिरती चली गई, कालान्तर में कन्यावध जैसा नृशंस कार्य भी होने लगा और दहेज के बढ़ते अभिशाप ने उसकी पारिवारिक स्थिति को और भी खराब कर डाला।[८]

भारतीय नवोत्थान की लहर से स्त्री की सामाजिक स्थिति में भी परिवर्तन आया। भारत में नवोत्थान परम्परा और अपने विश्वासों का त्याग नहीं, प्रत्युतः यूरोप की विशिष्टताओं के साथ उसका सामंजस्य बिठाना था।[९] इसने नवोत्थान में और प्रबल वेग दिया। लाला लाजपतराय ने कहा था—"स्त्रियों का प्रश्न पुरुषों का प्रश्न है क्योंकि दोनों का एक दूसरे पर असर पड़ता है। चाहे भूतकाल हो या भविष्य,

पुरुषों की स्थिति बहुत कुछ स्त्रियों की उन्नति पर निर्भर है। उन स्त्रियों से आप निश्चय ही वास्तविक नर पैदा करने की आशा नहीं कर सकते जो कि गुलामी की जंजीरों से जकड़ी हुई हैं और प्रायः सभी बातों में पराश्रित हैं। इसलिये पुरुषों से मैं कहता हूँ कि तुम स्त्रियों को अपने दासत्व से पूर्णतः मुक्त होने दो, उन्हें अपने बराबर समझो।"[१]

गांधीजी ने स्पष्टतः घोषणा की, "स्त्री पुरुष की सहगामिनी है। वह बुद्धि में पुरुष से तुच्छ नहीं है। उसे पुरुष के छोटे छोटे कार्यों में भाग लेने का अधिकार है। उसे पुरुष की भाँति स्वाधीनता और स्वतन्त्रता पाने का अधिकार है।"[२] मार्क्सवाद ने उसे समानता की भित्ति पर ला खड़ा किया। मार्क्सवादी विचार-धारा के अनुसार स्त्री और पुरुष समान है। स्त्री के कन्धों पर भी समाज का उतना ही दायित्व है जितना पुरुष के कन्धों पर। समाज की उन्नति और वृद्धि के लिये स्त्रियों के मानसिक और शारीरिक विकास तथा समाज में उन्हें भी पैदावार के कार्य में भाग लेकर उसका फल पाने का समान अवसर होना चाहिये।[3] मार्क्सवाद स्त्री और पुरुष के सम्बन्ध को पुरुष की सम्पत्ति और धर्म के भय से जकड़ देने के पक्ष में नहीं। स्त्री पुरुष को विवाह के सम्बन्ध में मार्क्सवाद समाज के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के विचार से पूर्ण स्वतन्त्रता देता है, परन्तु उच्छृंखलता और भोग का पेशा बना लेने और इसके साथ अपनी वासना के लिये दूसरे व्यक्तियों तथा समाज की जीवन-व्यवस्था में अड़चन डालने को वह भयंकर अपराध समझता है।[४]

मार्क्सवाद की विचारधारा के फलस्वरूप नारी की स्थिति में काफी परिवर्तन आया है और उसमें गांधी-वाद के योग से स्त्रियों की दशा में बहुत सुधार आया है। वह कुसंस्कारों एवं पाशविकता के दुर्गन्ध भरे वातावरण को छोड़ समानता एवं स्वतन्त्रता की मुक्त वायु में सांस लेने में समर्थ हुई है और उसका अग्रिम पथ स्पष्ट व सरल है इसमें संदेह नहीं।

हाड़ौती लोकगीतों में नारी—

आदि-मानव ने जब गुफाओं के मस्त एवं भयंकर वातावरण से मुक्त वायु में क्षण भर सांस लेकर हृदय में उठी भावनाओं को विकृत स्वर से अलापा, तभी से संभवतः गीतों का जन्म हुआ है। पेरी के शब्दों में आदि-मानव का उल्लासमय संगीत ही लोकगीतों की आधार शिला है। ये हृदय के वास्तविक उद्गार है, एवं हृदय-ग्राही। ये लोकगीत स्वाभाविक, सरल एवं स्वच्छन्द हैं।

---

(१) हिन्दुस्तान की समस्याएं—नेहरू—पृष्ठ २१६
(२) आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना—शैलकुमारी—पृष्ठ ४१-४२
(३) मार्क्सवाद—यशपाल—पृष्ठ ८६
(४) वही—पृष्ठ ६०

भारत-वासियों का जीवन सदैव से संगीतमय रहा है, शायद कोई अन्य ऐसी जाति होगी जिसके जीवन पर संगीत का इतना प्रचुर प्रभाव पड़ा हो। ये गीत उनके हृदय के अन्तस्तल से स्वाभाविक रूप से निकले हुए हैं। इनमें देश की यथार्थ दशा वर्णित है। यहां की संस्कृति इनमें सुरक्षित है। सभ्यता तो वाह्य आडम्बर है, कल तुर्की की थी; आज अंग्रेजी की है—इन गानों में हम मनुष्य के जीवन के प्रत्येक दृश्य को देखते हैं, कन्या के ससुराल चले जाने पर माता के करुण स्वर सुनते हैं। पुत्र के जन्म पर माता के आनन्द की ध्वनि पाते हैं। खेतों के बह जाने पर हताश किसान के क्रन्दन, व्याह के अवसर पर बधाई के गान, गृहिणी के विरह की व्यथा, सन्तान की असामयिक मृत्यु पर मूक वेदना अर्थात् मानविक जीवन की नैसर्गिक कविता[1] का रसास्वादन करते हैं। स्त्री पुरुष ने छक कर इसके माधुर्य में अपनी थकान मिटाई है, इसकी ध्वनि में बालक सोये हैं, जवानों में प्रेम की मस्ती आई है, वृद्धों ने मन बहलाये हैं, वैरागियों ने उपदेशों का पान कराया है, विरही युवकों ने मन की कसक मिटाई है, विधवाओं ने अपने एकाकी जीवन में रस पाया है, पथिकों ने थकावट दूर की हैं, किसानों ने अपने बड़े बड़े खेत जोते हैं, मजदूरों ने विशाल भवनों पर पत्थर चढ़ाए हैं और भोजियों ने चुटकले छोड़े हैं।[2]

इन लोकगीतों को कभी किसी ने लिखने की कोशिश नहीं की, ये तो स्वतः कंठ पर चढ़ने वाले हैं। लोकगीत की एक एक बहू के चित्रण पर रीतिकाल की सौ सौ मुग्धाएं और खण्डिताएं तथा धीराएं निछावर की जा सकती हैं क्योंकि ये निरलंकार होने पर भी प्राणमयी है और वे अलंकारों से लदी होकर भी निष्प्राण हैं। ये अपने जीवन के लिये किसी शास्त्र विशेष की मुखापेक्षी नहीं हैं और अपने आप में परिपूर्ण हैं।[3]

ये गीत वैदिक युग से जन-समाज में प्रचलित रहे हैं। विवाह के अवसर पर गाथा गाये जाने का स्पष्ट उल्लेख मिलता है,[4] इसके साथ ही साथ सीमन्तोन्नयन के शुभावसर पर वीणा पर गीत गाये जाते थे।[5] रामायण तथा महाभारत के युग में तो इन लोकगीतों का प्रचलत बहुत बढ़ गया था। दुष्यन्त-पुत्र भरत के सम्बन्ध में अनेक गीत हैं।[6] इसके आगे बौद्ध-कालीन भारत में इसकी परम्परा अक्षुण्ण रही है और विक्रम की तृतीय शताब्दी में प्राकृत के लोकगीतों के सफल एवं मार्मिक गीत यत्र-तत्र बिखरे मिलते हैं। विरहिणी नायिका, जिसका प्रियतम आज गया है, आज गया है, आज गया है—इस प्रकार पति के जाने के दिनों को गिनने वाली

(१) मैथिली लोकगीत भूमिका—अमरनाथ झा—पृष्ठ ७
(२) भारतीय लोक साहित्य – श्याम परमार—पृष्ठ ५३
(३) हिन्दी साहित्य की भूमिका—पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी—पृ० १३०
(४) मैत्रायणी संहिता—३।७।३
(५) पारस्कर गृह्य सूत्र १ काण्ड, ७ कण्डिका
(६) महाभारत आदि पर्व ७४ अ, ११०-११३

विरहिणी ने दिन के पहले अर्ध भाग में ही दीवाली (कुडप) की रेखा खींचकर चित्रित कर दिया है[1] यह परम्परा आगे भी अक्षुण्ण रही है। देश का सच्चा इतिहास और उसका नैतिक और सामाजिक आदर्श इन गीतों में सुरक्षित है कि इनका नाश हमारे लिए दुर्भाग्य की बात होगी।[2]

भारतीय समाज के विकृत एवं श्रेष्ठ दोनों प्रकार के चित्र हमें इन गीतों में उपलब्ध होते हैं। ग्रामीण कवि ने समाज को जैसे देखा उसी भांति उसे चित्रित कर दिया इसमें न अतिशयोक्ति है और न अत्युक्ति। इन गीतों में हमें जहाँ हाड़ौती जन समाज के असंस्कृत एवं अशिक्षित सामाजिक जीवन के चित्र मिलते हैं, वहाँ अनुकरणात्मक आदर्श का भी उल्लेख है। पुत्र-जन्म का उछाह और पुत्री-जन्म के साथ की विषम वेदना व दुख का वर्णन तथा बाल विवाह आदि का वर्णन मिलता है, वहीं हमें भाई और बहिन का सहज सरल स्नेह, स्वाभाविक एवं अकृत्रिम प्रेम की दिव्य झांकी भी इन गीतों में यत्र-तत्र बिखरी मिल जाती है। नारी जीवन की वेदना, हास्य, उमंग, शृंगार, अभिक्षरण, चांचल्य, रागद्वेष, कुढ़न, घृणा आदि सभी गीतों की पंक्तियों में एक एक कर प्रकट हुए हैं; नारी ने रीति-रिवाजों, उत्सवों, प्रथाओं और त्यौहारों के निमित जो गाया है उसमें अनजाने ही उसके मानस के विभिन्न भावों की गति मिल गई है।[3]

हाड़ौती लोक-गीतों में हमें नारी के दो विभिन्न रूप स्पष्टतः दृष्टिगोचर होते हैं। एक ओर तो नारी चतुर गृहिणी, आज्ञाकारिणी पत्नी, सुन्दर भावना प्रधान गृहलक्ष्मी एवं योग्य प्रियतमा है, तो दूसरी ओर कर्कशा, निन्दक, फूहड़, अत्याचारिणी, जलने वाली, ईर्ष्या-प्रधान एवं अयोग्य पत्नी है। हाड़ौती लोकगीतों में कन्या का जन्म शुभ नहीं माना है। यहाँ एक कहावत भी प्रचलित है कि पुत्री जन्म से पृथ्वी तीन अंगुल नीचे दब जाती है। किसी स्त्री का महत्व पुत्र या पुत्री पैदा करने से ही कूता जाता है। पुत्र जन्म होने पर जहाँ जच्चा को उत्तम भांति के व्यंजन मिलते हैं, वहाँ पुत्री उत्पन्न होने पर साधारण-सा खाना खाने को दिया जाता है। कमरे से निकलते समय सुन्दरी पत्नी को भी पति यह कहता है—प्रिय! पुत्र उत्पन्न करना, पुत्री उत्पन्न किया तो तुम्हें पीहर भिजवा दूँगा और इमली के लड्डू खाने को मिलेंगे; और यदि तुमने पुत्र को जन्म दिया तो वह दादा जी का वंश बढ़ायेगा, तुम्हारी प्रशंसा मैं स्वयं करूँगा, तुम्हारे लिये अच्छे घी के, सूंठ के लड्डू बनवाऊँगा। तुम्हारे लिये मिसरा (कीमती वस्त्र विशेष) का पर्दा तनवा कर महल में खाट बिछवाऊँगा। हे सुन्दरी! तुम्हें बधाई मैं स्वयं दूँगा।

---

(१) अज्जं गओति अज्जं गओति अज्जं गओति गणरिए।
पढ़म व्विअ दिअहद्धे कुड्डो रेहाहि चितलिओ। गाथा सप्त-सती ३.८

(२) कविता कौमुदी भाग ५—श्री रामनरेश त्रिपाठी—पृष्ठ ७७

(३) भारतीय लोक साहित्य—श्यामपरमार—पृष्ठ १२५

हँस हँस बांधी पागड़ी जी
काई झटक संभाल्यो पेच
या लो सुन्दर ओंवरो जी
जो घर जन्मी जी डावड़ी जी
थां ने दांगा जी पीर खंदाय
वधाई सुन्दर कुण करे जी
थां के अमल्यों का लाडू वंधाय
वधाई या का बाप करे जी
जो था जन्मी जी डावड़ी जी।

दादाजी को वंश बढ़ाय, वधाई सुन्दर म्हें करां जी
थां ने सूंठ का लाडू वंधाय, वधाई सुन्दर म्हें करां जी
वधाई सुन्दर म्हें करां जी।

कन्या ज्यों ज्यों बड़ी होती जाती है, पिता की चिन्ता भी त्यों त्यों उग्र होती जाती है। संस्कृत के एक कवि ने भी कन्या जन्म को अतीव दुखदायी माना है। उसका पिता कहलाना भी एक कष्टदायक गाली है।[१]

बहिन की कितनी अन्तर्व्यथा उस समय सजीव हो उठती है, जब वह ससुराल विदा होते समय अपने भाई से कहती है—भाई, मेरी डोली छोड़ो मुझे जाने दो: तुम्हारे घर नौकर-चाकर, भाई-भावज आदि सभी के खाने के लिये रोटियाँ है, सिर्फ मैं ही भार-स्वरूपा हूँ।

छोड़ो भइया म्हारी डोलकी
थारे घर भावज, भाई वीर
थारे घर नौकर चाकर हीर
सब सारू थं्ये रसोवड़े
मा सारू सूनो घर की खूणली
छोड़ो भइया म्हारी डोलकी।

विवाह—

की तरह धार्मिक भावना का उभार भय पर ही आधारित है। विवाह के मांगलिक अवसर पर विघ्न और आशंका के निवारणार्थ[1] विवाह के प्रसंग में विनायक को छोड़कर सुख-सम्पत्ति, वैभव और कला के अधिष्ठातृ देवताओं का पूजन प्रायः किया ही नहीं जाता। सामान्य जन-मानस अनिष्ट की आशंका से कितना त्रस्त एवम् भयभीत है। यह उसका जीवित उदाहरण है। भारतीय परम्परा की सर्वमान्य देवी लक्ष्मी और सरस्वती तक को इस अवसर पर भुला दी जाती हैं।[2] सर्व प्रथम गणेश जी को मनाना तो आवश्यक ही है, चारों तरफ नगारों एवं शहनाइयों की धूम जो मच रही है और कन्या का पिता गणेश जी को लेकर ज्योतिषी के पास मुहूर्त दिखाने को जाता है :

कोटा के छाजा पे नौबत बजे
नौबत बाजे, नगाड़ा भी बाजे
तो पड़े छे नगाड़ा री धूम, गजानन आया पावणा।
कोटा के छाजा पे नौबत बाजे
चालो गजानन ज्योतिषी के चालां
आछा आछा सावा दिखावां गजानन आया पावणा।
कोटा के छाजा पे नौबत बाजे।

और फिर धीरे धीरे गणेश जी को पंसारी के पास ले जाते हैं। बजाज, स्वर्णकार और कुम्हार के पास ले जाते हैं और अन्त में वह अपने गणेश जी को समधी के पास ले जाता है, क्योंकि—

चालो गजानन साजनियां के चालां
आछी आछी वनणीं ल्यावां गजानन आया पावणा।
कोटा के छाजा पे नौबत बाजे।

और फिर एक अन्य गीत में गणेश जी से प्रार्थना की जाती है कि वह ऋद्धि-सिद्धि से उसके भण्डार को अक्षय कर दे, विवाह शांति-पूर्वक निवट जाय, किसी भी प्रकार विघ्न उपस्थित नहीं हो। कितनी कातर एवं आतुर प्रार्थना है कन्या के पिता की—

पहाड़ फोड़ ऊँकार विराज्या
बद्रीनाथ स्वामी
गऊ मुख पड़े सहेस धारा जी
गऊ मुख पड़े सहेस धारा
धारा धारा कांई करो छो
कटे पाप सारा, गजानन
करो आनन्द सारी।
गजानन करो सम्पत सारी जी गजानन करो सिद्ध सारी।

---

(१) An Introduction to Social Psychology—M. Dougall—Page 265.
(२) लोकायन—डॉ० चिन्तामणि—पृष्ठ ७८

फिर मालिन से फूल लाने को कहा जाता है—मालिन, सेहरे के लिये चार प्रकार के—चम्पा, चमेली, मरवा तथा मोगरा के पुष्प लाना इसके अतिरिक्त गुलडार फूल भी लाना। 'सेहरा' नामक गीत में यह भाव कितनी अच्छी तरह से व्यक्त किये गये हैं—

सेहरा में चार रंग लावजो ए मालणी
चम्पा चमेली, मरवो, मोगरो ए मालणी
और गुलडार री डार फूल फूला मालणी
सेहरा में चार रंग लावजो ए मालणी।

कन्या का विवाह पिता के लिए एक कठिन समस्या खड़ी कर देता है। न मालूम किस समय कौन-सा समधी रूठ जाय या दूल्हा ही रूठ जाय, तो क्या पता? दूल्हे का घर आना और किसी कारण-वश उसका वापिस चले जाना वधू के पिता के सिर पर अपयश का एक भारी टीका माना जाता है। वे येन-केन-प्रकारेण उन्हें मनाते हैं, समझाते हैं, बुझाते हैं। इस गीत में हाड़ौती जन-समाज ने इस भाव को बड़ी सफलता-पूर्वक व्यंजित किया है:

प्रिय दूल्हे, तुम्हारे लिए पगड़ी भेजी है इसे पहिनते क्यों नहीं जाते? तुम्हारे लिये मोतियों की कंठी भेजी है, इसे पहिनते क्यों नहीं जाते? हे रंगीले एवं छवीले दूल्हे, इसे पहिनते क्यों नहीं जाते? झरोखे में सरदार बनी बैठी है उससे बोलते क्यों नहीं जाते?

हे तन के तारे, अपने हृदय पटल खोलते क्यों नहीं जाते? महल में सरदार बनी बैठी है, उससे बोलते क्यों नहीं? तुम्हारे लिये अंगूठी, जामा, जूतियाँ भेजी है, इसे पहनते क्यों नहीं हो? तुम्हारे लिये बनी सजाकर रक्खी है, इससे विवाह क्यों नहीं करते हो? हे रंगीले बैठिये, बैठते क्यों नहीं?

चीरां थां ने भेजूं बनासा पेरता क्यूं न जावो जी।
मोती थां ने भेजूं बनासा पेरता क्यूं न जावो जी
कंठ्या थां ने भेजूं बनासा पेरता क्यूं न जावो जी।
वागा थां ने भेजूं बनासा
पेरता क्यूं न जावो जी।
छाजा बैठी सिरदार बनी सा
बतराता क्यूं न जावो जी।
महलां बैठी उमराव बनी सा यें बोलता क्यूं न जावो जी
तन का तारा मन की कूंची खोलता क्यूं न जावो जी
खोलो रंगीला खोलो छबीला, खोलता क्यूं न जावो जी
महलां बैठी सिरदार बनी सा
यें बोलता क्यूं न जावो जी।
कंडलां थां ने भेजूं बनासा
पेरता क्यूं न जावो सा।

बटियां थां ने भेजूं बनासा पेरता क्यूं न जावो सा।
जामो थां ने भेजूं बनासा पेरता क्यूं न जावो जी।
जूत्यां थां ने भेजूं बनासा पेरता क्यूं न जावो सा।
बन्नी थां ने भेजूं बनासा
ब्याहता क्यूं न जावो जी।
परणो रंगीली, परणो छबीली,
परणता क्यूं न जावो जी।

अंतिम पंक्तियों में पिता की दर्दनाक व्यथा एवं हृदय-स्तल की वेदना सजीव हो उठी है—दूल्हे ! ऐसी भी क्या बात है वधू को शृंगार-प्रसाधन करा के बिठाई है, वह रंगीली है, छबीली है, उससे शादी क्यों नहीं करते ? उससे शादी करिये, अपना गठबन्धन जोड़ने की अनुमति दीजिये।

विवाह के पश्चात् गृहस्थ जीवन में—

विवाह के पश्चात् स्त्री गृहस्थ जीवन में प्रवेश करती है। पति की सहधर्मिणी होने के नाते उसके भी वे सभी अधिकार और कर्त्तव्य होते हैं जो उसके पति के होते हैं। ससुराल में नवागता वधू के आते ही उसे चारों ओर से शुभाशीर्वाद, प्रेम एवं स्नेह की अजस्र वर्षा-सी होने लग जाती है, चारों तरफ शील एवं सौम्यता, सौख्य एवं स्निग्धता की बौछार-सी होने लगती है। वधू सास के स्नेह को देख कर कहती है—

ई कलजुग में दोई भला
इक माय दूजी सास।
माय ने जण जनम दिया
सासू ने दिया घर बार
ई कलजुग में दोई भला
इक सुसराजी दूजा बाप
दादाजी दरब लुटाइयो
सुसराजी लाया दल जोड़
ई कलजुग में दोई भला
इक राजन दूजा वीर।
वीर उढ़ावे वाला चूंदड़ी
सायब जी रो अछवल राज
सायब जी रो दूनो डोडो राज।

'इस कलि-काल में तो दो ही भले हैं पहली मां, जिसने जन्म दिया और दूसरी सासू, जिसने घरबार दिया। इस कलियुग में दो ही भले हैं, पहले सुसराजी, दूसरे पिताजी। पिताजी ने द्रव्य लुटाया है और सुसराजी विवाह करवा के लाये हैं। इस कलियुग में दो ही भले हैं, पहले राजन (पतिदेव) और दूसरा भाई। भाई चूंदड़ी उढ़ाता है, और पतिदेव की छत्रछाया में मैं राज करती हूँ।'

उपर्युक्त पंक्तियों में नवागता वधू ने किस खूबी से अपने मायके और ससुराल की तुलना करते हुए दोनों को समकक्ष ठहराया है।

शास्त्रकारों ने स्त्री को 'धर्म-पत्नी' की संज्ञा दी है। वह सभी धार्मिक कार्यों में भाग लेती है। हाड़ौती जन-समाज में धार्मिक कार्यों में स्त्री एवं पुरुष को समानाधिकार प्राप्त है। यज्ञोपवीत, विवाह और अन्य धार्मिक कृत्यों के शुभावसर पर वह पुरुष के बाँई ओर बैठकर विविध कृत्यों का सम्पादन करती है। अकेला पुरुष कन्यादान करने का भी अधिकारी नहीं है। यहाँ तक कि एकादशी आदि व्रत कथाओं के समय भी पत्नी को साथ लेना आवश्यक है, इस प्रकार धार्मिक कार्यों में अभी तक स्त्री के समानाधिकार प्राप्त है।

हाड़ौती लोकगीतों के अध्ययन से विदित होता है कि पारिवारिक जीवन में भी स्त्री को स्वतन्त्रता प्राप्त है, वह गृह-स्वामिनी है। घर के द्रव्य पर उसका भी उतना ही अधिकार है, जितना पति का।

इतना होते हुए भी इस चित्र का एक अन्धकार-मय पक्ष भी है। पत्नी पर पति का पूर्ण हक माना जाता है, उसके बिना आज्ञा के वह कुछ भी कार्य करने में स्वतन्त्र नहीं है। उसे यदा-कदा पति की ताड़ना एवं मारपीट भी सहनी पड़ती हैं, यही नहीं उसकी सास भी उसे जला-कटा सुनाने से बाज नहीं आती।

सुसरा रे घर ना जावूँ जी
सुसरा में मिलेला लात-धमूका
पीहर में मिले मीठी बात
सुसरा रे घर ना जावूँ जी।

कन्या कितनी व्यथा भरे शब्दों में अपनी माँ से स्पष्ट कहती है कि मैं सुसराल नहीं जाऊँगी वहाँ मुझे मार खाने को मिलती है; इससे तो कहीं अच्छा मेरा पीहर है जहाँ मुझे मीठी बातें सुनने को मिलती हैं, मैं ससुराल नहीं जाऊँगी।

हाड़ौती जन-समाज में वधू आर्थिक दृष्टि से पूर्णतया पराधीन होते हुए निरक्षर भी है। विशेष पढ़ी-लिखी न होने के कारण वह उदरोपार्जन के लिये पूर्णतः पति पर आश्रित है। जब पति परदेश चला जाता है तो वह दूसरों से पति को पत्र लिखाती हैं; परन्तु साथ ही मन की गोपनीय बातें लिखाते हुए इसलिये हिचकिचाती है कि कहीं बात दूसरों के सम्मुख उजागर न हो जाय।

कुरजां एवं अन्य पक्षियों के साथ संदेश देने की प्रथा तो यहाँ की पुरानी विशेषता है जो लोकगीतों में भली-भाँति चित्रित हुई है—

कुरजां म्हारी बेनड़ी
एक संदेशो कहियाव ।
मारू ने आवण रो कहयाव ।

ऐ कुरजां ! तू मेरी बहिन है एक काम तो कर। मेरा एक गोपनीय संदेश,

जरा प्रियतम को तो दे आ; मैं किससे कहूँ, जरा मेरा संदेश मेरे पति को तो कह आ।

इससे स्त्री के अन्तस्तल के उमड़ते भावों को स्पष्ट करने की अन्तर्व्यथा का स्पष्ट आभास मिलता है।

हाड़ौती नारी का प्रधान आभूषण है लज्जा। पीहर में लज्जा के मारे वह पति को देख भी नहीं सकती, न उससे बातचीत करती है। मुंह पर लम्बा-सा घूंघट निकाल कर चलना वहाँ शील एवं सौम्यता का प्रतीक होता है। वह हृदय में भले ही पति के आने की बाट जोहती रही हो, भले ही वह यदा-कदा दासी को अपनी अन्तर्व्यथा कहती रही हो, मगर जब पति आता है तो वह जी भर कर देख भी नहीं सकती—

ऊंची चढ़ी ने जोवती, म्हेलां चढ़ी ने देखती।
जवांई आया राज जी, नणदोई आया राज।
बाई म्हारी करो न सिणगार, पौढ़ां म्हेल में
सिणगार करयोन जाय जी, आवे म्हांने बाबासा री लाज
आवे म्हांने दादा जी री लाज, आवे म्हांने काकाजी री लाज
आवे म्हाने वीरा जी री लाज, छोरी दासी कही न सिरदार
दासी छोरी कही न उमराव, पौढ़े एकला।

दासी कहती है—बाई-सा तुम महल पर चढ़ कर जिन्हें देखती थी, वे ही हमारे नणदोई व जंवाई आ गये हैं, अब तुम अपना शृंगार करो तथा महल में आराम करने के लिये तैयार हो जाओ। किन्तु लोक लज्जा के कारण उससे शृंगार नहीं किया जाता क्योंकि उसे बाबाजी, दादाजी, काकाजी और भाई की लाज आती है। परिवार के इन निकटतम परिजनों के होते हुए वह कैसे उनके साथ महल में रह सकती है। हे दासी, तुम उनसे अवश्य कहो कि वे आज की रात अकेले ही पौढ़े।

गहनों के प्रति मोह—

नारी आभूषणों के प्रति सदैव से लालायित रही है, आभूषण उसके गौरव का प्रतीक है। प्रत्येक सामाजिक पर्व पर और त्यौहार पर वह अपने आभूषणों को पहिन कर अपने मान और प्रतिष्ठा का प्रदर्शन करने में अपना गौरव अनुभव करती है। गहनों के लिये वह पति को कई तरह से समझाती हैं, उनसे रूठ जाती है, उसके हाथ जोड़ती है और जब उसके पति गहने बनवाने की स्वीकृति दे देते हैं और फिर कोई इस बीच व्यवधान डालता है तो वह उसे सह्य नहीं होता। इसी प्रकार एक स्त्री के लिये पति जब गहने बनवाने को तैयार होता है तो उसके नणदोई मना कर देते हैं, इस पर वह गुस्से से नणद को उपालम्भ देती है—

भंवर घड़ावे जी बाई सा थां का वीर, बरजे छै प्यारा नणदोई
झाल घड़ावे जी बाई सा थां का वीर, बरजे छै प्यारा नणदोई
बरजे छै प्यारा नणदोई।

वेसर घड़ावे जी वाई सा थां का वीर,
वरजे छै प्यारा नणदोई।
हांस घड़ावे जी वाई सा थां का वीर,
वरजे छै प्यारो नणदोई।
भावच रात्यों ही लागां समझाय,
सेजां पर दांगा ओलमो जी।
चुड़लो चिरावे जी वाईसा थां का वीर,
वरजे छै प्यारा नणदोई।
पटोली सिवांवे जी वाई सा थां का वीर,
वरजे छे प्यारा नणदोई।
केसरया रंगावे जी वाई सा थां का वीर,
वरजे छै प्यारा नणदोई।
पायलां घड़ावे जी वाई सा था का वीर,
वरजे छे प्यारा नणदोई।
विछिया घड़ावे जी वाई सा थां का वीर,
वरजे छे प्यारा नणदोई।
भावज जी करो मन पछताव,
सेजां पर दांगा ओलमो जी।
कियो मानो जी हजारी ढोला केत
अरजी मानों जी सांवलिया सिरदार
म्हारी भावज दे छै ओलमो जी।
अरजी मानों जी छेला सिरदार
म्हां की भावज दे छे ओलमो जी।

ननद से शिकायत करती हुई स्त्री कहती है तुम्हारे भाई (मेरे पतिदेव) मेरे लिये भंवर घड़वा रहे हैं, लेकिन तुम्हारे पति और मेरे नणदोई उन्हें इसके लिये मना करके मेरे आभूषण वनने के मार्ग में रुकावट डाल रहे हैं; इस पर ननद कहती है कि भाभी। कोई वात नहीं मैं इन्हें समझा दूंगी और शयन के समय उन्हें उपालम्भ दूंगी।

वाईसा, तुम्हारे भैया मेरे लिये पटौली मिलवा रहे हैं, और उसे केशरिया रंग रहे हैं साथ ही वे पायल और विछिया घड़वा रहे हैं, मगर नणदोई जी उन्हें मना कर रहे हैं।

नणद कहती है—भाभी, तुम किसी वात की चिन्ता मत करो, मैं आज रात को ही उन्हें उपालम्भ दूंगी। उसी रात वह अपने पतिदेव से कहती है, कि मैं आपको मना करती हूँ कि आप मेरी भाभी के आभूषण वनवाने के मार्ग में रुकावट नहीं डालें, वह मुझे उपालम्भ देती है। हठीले सरदार, मेरी भाभी मुझे ओलमा देती है।

जरा प्रियतम को तो दे आ; मैं किससे कहूँ, जरा मेरा संदेश मेरे पति को तो कह आ।

इससे स्त्री के अन्तस्तल के उमड़ते भावों को स्पष्ट करने की अन्तर्व्यथा का स्पष्ट आभास मिलता है।

हाड़ौती नारी का प्रधान आभूषण है लज्जा। पीहर में लज्जा के मारे वह पति को देख भी नहीं सकती, न उससे बातचीत करती है। मुंह पर लम्बा-सा घूंघट निकाल कर चलना वहाँ शील एवं सौम्यता का प्रतीक होता है। वह हृदय में भले ही पति के आने की बाट जोहती रही हो, भले ही वह यदा-कदा दासी को अपनी अन्तर्व्यथा कहती रही हो, मगर जब पति आता है तो वह जी भर कर देख भी नहीं सकती—

ऊँची चढ़ी ने जोवती, म्हेलां चढ़ी ने देखती।
जवांई आया राज जी, नणदोई आया राज।
बाई म्हारी करो न सिणगार, पौढ़ां म्हेल में
सिणगार करयोन जाय जी, आवे म्हांने बाबासा री लाज
आवे म्हांने दादा जी री लाज, आवे म्हांने काकाजी री लाज
आवे म्हाने वीरा जी री लाज, छोरी दासी कही न सिरदार
दासी छोरी कही न उमराव, पौढ़े एकला।

दासी कहती है—बाई-सा तुम महल पर चढ़ कर जिन्हें देखती थी, वे ही हमारे नणदोई व जंवाई आ गये हैं, अब तुम अपना शृंगार करो तथा महल में आराम करने के लिये तैयार हो जाओ। किन्तु लोक लज्जा के कारण उससे शृंगार नहीं किया जाता क्योंकि उसे बाबाजी, दादाजी, काकाजी और भाई की लाज आती है। परिवार के इन निकटतम परिजनों के होते हुए वह कैसे उनके साथ महल में रह सकती है। हे दासी, तुम उनसे अवश्य कहो कि वे आज की रात अकेले ही पौढ़े।

गहनों के प्रति मोह—

नारी आभूषणों के प्रति सदैव से लालायित रही है, आभूषण उसके गौरव का प्रतीक है। प्रत्येक सामाजिक पर्व पर और त्यौहार पर वह अपने आभूषणों को पहिन कर अपने मान और प्रतिष्ठा का प्रदर्शन करने में अपना गौरव अनुभव करती है। गहनों के लिये वह पति को कई तरह से समझाती हैं, उनसे रूठ जाती है, उनके हाथ जोड़ती है और जब उसके पति गहने बनवाने को स्वीकृति दे देते हैं और फिर कोई इस बीच व्यवधान डालता है तो वह उसे सह्य नहीं होता। इसी प्रकार एक स्त्री के लिये पति जब गहने बनवाने को तैयार होता है तो उसके नणदोई मना कर देते हैं, इस पर वह गुस्से से नणद को उपालम्भ देती है—

भंवर घड़ावे जी बाई सा थां का बीर, बरजे छै प्यारा नणदोई
भाल घड़ावे जी बाई सा थां का बीर, बरजे छै प्यारा नणदोई
बरजे छै प्यारा नणदोई।

आभूषण स्त्रियों को परम प्रिय हैं, कितने ही घरों में तो पति-पत्नी की शान्ति इसी गहने के पीछे हो जाती है। विभिन्न अंगों में पहने जाने वाले विभिन्न गहनों का वर्णन भी इन गीतों में प्राप्त होता है—

आभूषण का नाम	अंग का नाम
१—नथ	नाक
२—टीको (मांग)	मांग
३—झूलनी	नाक
४—हार	गला
५—तिमणियां	गला
६—कंठी	गला
७—चूड़ा	भुजा
८—वाजूबन्द	बांह का मध्यभाग
९—वाजू लूम्ब	बांह का मध्यभाग
१०—चूंण	दांत
११—बंगड़ी	हाथ
१२—गोखरू	कलाई
१३—नूपुर	पैर
१४—कड़े	पैर
१५—कन्दोरा	कमर
१६—अंगूठी	हाथ पैर की अंगुलियां
१७—पायजेव	पैर

इनमें से अधिकतर गहने स्वर्ण-निर्मित होते हैं, कुछ गहने जैसे कमर व पैरों के गहने चांदी के बने होते हैं। अलग अलग अंगों पर अलग अलग गहने जो पहिने जाते हैं उनका हृदय-ग्राही वर्णन 'गणगोर' शीर्षक गीत में देखिये—

माथा ने भंवर घड़ाव जो जी,
रखड़ी रतन जड़ाय, गोरी का सायवजी
या रत मानो जो गणगोर
काना ने झाल घड़ाव जो जी न झुटणा झेल दिवाय
मूखड़ा ने वेसर घड़ावजो जी, मोतीड़ा फेर गंठाय
गोरी का सायवा जो।
हिवड़ा ने हांस घड़ाव जो जी
तमन्यो पाट पुराय।
बांइया ने चुड़लो चिराव जो जी,
गजरा रतन जड़ाय।
कड़्यां ने पटोलो सिवाय जो जी

हाड़ौती लोकगीतों में पुत्र-प्राप्ति के लिये अनेक आकुल प्रार्थनाएँ यत्र-तत्र बिखरी मिलती हैं, इन गीतों में वन्ध्या स्त्री का सजीव चित्र अंकित हुआ है। पुत्र के बिना उसकी आधीरता, व्याकुलता, आतुरता, दीनता एवं वेदना के शत-शत भाव इन गीतों में चित्रित है, करूणा एवं टीस से भरे इन गीतों में इतना विषाद फैला हुआ हैं कि बरबस श्रोता के नेत्रों से जलधार बहने लगती है।

एक विधवा स्त्री भवानी माता से खड़ी खड़ी प्रार्थना कर रही है। पार्वती पूछती हैं—तुम एक पैर पर क्यों खड़ी हो, क्या चाहिये ?

काय के कारण सेवक दीनी थां ने ढोक
काय के कारण पाछा बावड़्यां ए मांय

वह उत्तर देती है—मां सिर्फ एक बात। न तो मुझे धन चाहिये, न अन्य वस्तु, मुझे सिर्फ एक पुत्र दे दे मैं उसके लिये तरस रही हूँ—

बेटां रे कारण मांई जो दीनी थां ने ढोक
पूतड़ल्या रे कारण पाछा बावड़्यां ए मांय।

माता जी प्रसन्न होकर उसे अगले साल ही झूला बंधवा देने का आश्वासन देकर भेजती हैं—

अन धन रे सेवक लछमी को वास
पालणो बँधाद्यूँ सामी साल में ए मांय।

इसी प्रकार एक दूसरे गीत में वह माता जी की षोडश प्रकार से पूजा करने के बाद प्रार्थना करती है—मां ! जिस तरह से मैं आपकी सेवा कर रही हूँ, उसी प्रकार आप भी मुझ पर प्रसन्न होकर मेरी सेवा करने वाला (पुत्र) दीजिये—

जूँ मन राख्यो देवी आपको ए माई जो
जूँ ई थां का सेवगा ने जूँ ई थां का
बालूड़ा ने एक तो सेवक्यो मन्ने
देनी मारी मांय।
रखड़ी झुटणां की लागी जगा जोत ए आनन्दी मांय।

एक और अन्य गीत में एक स्त्री माता जी से याचना करती हुई कहती है— माता जी रोटी की तो पूरी डलिया भरी पड़ी है, लेकिन रोटी मांगने वाला और दीजिये। माता जी, आप पधारिये। झुगल्या (कुर्ता) तथा टोपी तो मेरेपास बहुत है किन्तु उन्हें पहनने वाला दीजिये। माता जी, आप पधारिये।

रोटी को टाबो म्हारी माई संग भरयो
रोटी को मांगन वारो दे श्रो म्हारी श्राद भवानी !
पाट पधारो म्हारी माई जो जनम सुधारो।
झुगल्या तो टोपी म्हारी माई जो श्रठी घणां
झुगल्या को पेरण वालो दे श्री म्हारी श्राद भवानी !
पाट पधारो म्हारे माई जो, जनम सुधारो।

सती प्रथा—

भारतीय इतिहास के राजपूत काल में सती-प्रथा अपने चरमोत्कर्ष पर थी। पति चाहे जितनी शादियाँ कर सकता था, परन्तु स्त्री केवल-मात्र एक पुरुष से ही विवाह कर सकती थी और यदि उसकी मृत्यु हो जाय, तो स्त्रियों को भी जलती आग में अपने आपको भस्म कर देना पड़ता था। राजपूती समय में हँसते हुए सैंकड़ों स्त्रियां का धधकती ज्वाला में प्रवेश कर अपने आपको भस्म कर देना और जौहर करना इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में अंकित है। राजा राममोहन राय के सत्प्रयत्नों एवं ब्रिटिश-राज्य में कानूनों के कारण इस भीषण प्रथा का अन्त हुआ।

इस प्राचीन सती-प्रथा के चित्र भी इन लोकगीतों में-यत्र तत्र बिखरे मिल जाते हैं। एक बहिन चितारोहण के समय अपने भाई से आभूषण मँगवा कर शृंगार करने की इच्छा व्यक्त करती है—

भाई! अपनी सती (स्वयं) को झालर तथा भंवर चाहिये। भाई! आप रखड़ी तथा झुटणां जल्दी मँगवाइये। पतिदेव की चकडोल चन्दन के वृक्ष के नीचे खड़ी हुई है। अपनी सती बेसर तथा हांसज पहिनती है, हे भाई, मोती को दोहड़े कर के पुरवाइये। पतिदेव की चकडोल चन्दन के वृक्ष के नीचे खड़ी हुई है। अपनी सती बाजरी, चूड़ा तथा पटोली पहिनती है। हे भाई, बाजरी लाने में भूल न हो, पतिदेव की अर्थी चन्दन के पेड़ के नीचे खड़ी है। मुझे बिछिया पसन्द हैं, अनवट तथा घुंघरूओं से बने घमस जल्दी ने दिलवाइये। मुझे तो भाई टीकी और मेंहदी पसन्द है। हे भाई, सुरमा शीघ्रातिशीघ्र मँगवाइये। अपनी सती आरतिया पहिनती है। हे भाई, सांसर गजरा शीघ्रातिशीघ्र मँगवाइये। पतिदेव की चकडोल चन्दन के वृक्ष की छाया में खड़ी है। यह पेड़ उपवन के मध्य में स्थित है। पतिदेव की अर्थी चन्दन के वृक्ष के नीचे खड़ी है—

अपणीं सती के भंवर सोवे
अपणी सती के झालर सोवे
रखड़ी, झुटणां वेग मुलावो, वीरा जी
सायब को डोलो चंदण नीचे ऊबो।
अपणी सती के वेसर सोवे
अपणी सती के हांसज सोवे
मोती रा, दुलरी पाट पुवाओ वीरा जी
सायब को डोलो चन्दण नीचे ऊबो।
अपणी सती के गजरा भी सोवे
अपणी सती के पटोली भी सोवे
... सती ...

सती प्रथा—

भारतीय इतिहास के राजपूत काल में सती-प्रथा अपने चरमोत्कर्ष पर थी। पति चाहे जितनी शादियाँ कर सकता था, परन्तु स्त्री केवल-मात्र एक पुरुष से ही विवाह कर सकती थी और यदि उसकी मृत्यु हो जाय, तो स्त्रियों को भी जलती आग में अपने आपको भस्म कर देना पड़ता था। राजपूती समय में हँसते हुए सैंकड़ों स्त्रियां का धधकती ज्वाला में प्रवेश कर अपने आपको भस्म कर देना और जौहर करना इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में अंकित है। राजा राममोहन राय के सत्प्रयत्नों एवं ब्रिटिश-राज्य में कानूनों के कारण इस भीषण प्रथा का अन्त हुआ।

इस प्राचीन सती-प्रथा के चित्र भी इन लोकगीतों में-यत्र तत्र बिखरे मिल जाते हैं। एक बहिन चितारोहण के समय अपने भाई से आभूषण मँगवा कर शृंगार करने की इच्छा व्यक्त करती है—

भाई! अपनी सती (स्वयं) को झालर तथा भंवर चाहिये। भाई! आप रखड़ी तथा झुटणां जल्दी मँगवाइये। पतिदेव की चकडोल चन्दन के वृक्ष के नीचे खड़ी हुई है। अपनी सती वेसर तथा हांसज पहिनती है, हे भाई, मोती को दोहड़े कर के पुरवाइये। पतिदेव की चकडोल चन्दन के वृक्ष के नीचे खड़ी हुई है। अपनी सती बाजरी, चूड़ा तथा पटोली पहिनती है। हे भाई, बाजरी लाने में भूल न हो, पतिदेव की अर्थी चन्दन के पेड़ के नीचे खड़ी है। मुझे बिछिया पसन्द हैं, अनवट तथा घुंघरूओं से बने घमस जल्दी ने दिलवाइये। मुझे तो भाई टीकी और मेंहदी पसन्द है। हे भाई, सुरमा शीघ्रातिशीघ्र मँगवाइये। अपनी सती आरतिया पहिनती है। हे भाई, सांसर गजरा शीघ्रातिशीघ्र मँगवाइये। पतिदेव की चकडोल चन्दन के वृक्ष की छाया में खड़ी है। यह पेड़ उपवन के मध्य में स्थित है। पतिदेव की अर्थी चन्दन के वृक्ष के नीचे खड़ी है—

अपणी सती के भंवर सोवे
अपणी सती के झालर सोवे
रखड़ी, झुटणां वेग मुलावो, वीरा जी
सायब को डोलो चंदण नीचे ऊबो।
अपणी सती के वेसर सोवे
अपणी सती के हांसज सोवे
मोती रा, दुलरी पाट पुवाओ वीरा जी
सायब को डोलो चन्दण नीचे ऊबो।
अपणी सती के गजरा भी सोवे
अपणी सती के पटोलो भी सोवे
अपणी सती के चुड़लो भी सोवे
गजरां की टोल न होय हो वीरा जी।
म्हांने तो वीरा जी पायल सोवे

म्हांने तो भाई सा बिछिया सोवे
अनवट घुंघरा घमस दिराश्रो वीरा जी
आपणी सती के टीकी मेंदी सोवे
सुरमा बिड़ला वेग मंगाओ वीरा जी
आपणी सती के आरत्यो भी सोवे
सोसर गजरा वेग मंगाओ वीरा जी
सायब को डोलो चन्दण नीचे ऊबो।
चन्दण नीचे ऊबो, बागां बीच ऊबो
सायब को डोलो चन्दन नीचे ऊबो।

सती होने के लिये उद्यत स्त्री अपना पूर्ण शृंगार करके ही चिता में प्रवेश करती है, वह अपना मंगल-सूत्र भी जला देती है, इसी पुरातन प्रथा का उल्लेख उपर्युक्त गीत में हुआ है।

पारिवारिक जीवन—

लोकगीतों में पारिवारिक जीवन बड़ी ही स्पष्टता एवं भव्यता के साथ व्यंजित हुआ है। भाई बहिन का निश्छल स्नेह, मां और पुत्री का सरल स्निग्ध प्रेम और पति और पत्नी के दाम्पत्य सौख्य के विविध चित्र हमें इन लोकगीतों के माध्यम से मिलते हैं।

हाड़ौती गीतों का अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि कुछ सम्बन्ध रुचिकर हैं तो कुछ अरुचिकर। रुचिकर सम्बन्ध वह है जिसका परिणाम सुन्दर और शोभन है; अरुचिकर सम्बन्धों का फल अन्त में अच्छा नहीं होता। वर्णन की[1] सुविधा के लिये हम इनका वर्गीकरण इस प्रकार कर सकते हैं :

१—रुचिकर सम्बन्ध—

अ—भाई और बहिन
ब—माता और बेटी
स—पति और पत्नी
द—देवर और भौजाई
क—माता और पुत्र आदि।

२—अरुचिकर सम्बन्ध—

क—सास और बहू।
ख—नणद और भौजाई
ग—सौत और सौत
घ—ससुर और बहू आदि।

१—रुचिकर सम्बन्ध—

माता और पुत्र—

किसी स्त्री को सर्वाधिक प्रसन्नता उस समय होती है जब वह मां बन जाती है। पुत्र घर का प्रकाश है। अंधेरे घर का उजाला है। उसके होने पर हर तरफ से उसे बधाई मिलती है—

पांच बधावा म्हारे ये भल आया
लीना छै आंचल ओड़ जी।
प'लो बधावो म्हारा बाप बड़ा को
दूजो सुसराजी दरबार जी।
अगन्यो बधावो म्हारा बीर बड़ा को
चौथो जेठ दरबार जी।
पांचवो बधावो म्हारे मेल बड़ा को
पोढ़े भोली बाइसा का वीर जी।
छठो बधावो धन री कूंख बड़ी को
जाया छे लाड़यो ने पूत जी
सातमो बधावो धन रा चौक बड़ा को
बैठे म्हारा देवर जेठ जी।

एक अन्य गीत में वह दियाड़ी माता से बारम्बार प्रार्थना करती है कि वह उनके पुत्र की रक्षा करे—

देदूं सूतो ए मा दियाड़ी माता
ओ पड्या थांके दरबार म्हारी मायड़ी
ओ पड्यो थांके आंगणे ए मायड़ी
थाड़ी तो खींचू माता आपकी ए
कुशल करो परवार।

और दाहिने नेत्र है। पुत्री के विवाह के अवसर पर चाहे उसे कितना ही कष्ट उठाना क्यों न पड़े, वह इसकी परवाह नहीं करती, और सभी विघ्न बाधाओं को ढकेलती हुई पुत्री के लिए सब कुछ करने को तैयार रहती है।

माता और पुत्री के लिये वह क्षण सर्वाधिक कष्ट कर एवं करुणा-द्रावक होता है जब पुत्री ससुराल रवाना होती है। कण्व जैसे ऋषि भी पुत्री की विदाई के समय फूट फूट कर रो पड़े थे[२], तो फिर साधारण गृहस्थियों की तो बात ही क्या है? कन्या तो एक कुलंग पक्षी है, जिसके भाग्य में भी जन्म भूमि में रहना बदा नहीं[१] और उस बछिया की तरह है जिधर चलाई जाय, उसी तरफ चली जाती है।[३]

पुत्री को ससुराल में कष्ट होता है तो वह घुटन अपने अन्दर ही अन्दर छिपाये रखती है। किसके आगे जाकर वह अपनी व्यथा कहे? कौन सुने उसकी मनोव्यथा? और जब वह पीहर आती है तो दौड़ती हुई मां की गोदी में गिर जाती है—मां तुमने मुझे वहां क्यों ब्याहा, मुझे बचपन में ही मार क्यों न दिया? क्या घर के आगे कोई कुआं नहीं था, जिसमें जाकर मैं गिर जाती? क्या तुम्हारे पास जरा-सा भी अमल नहीं था, जो मुझे दे देती? और यदि कुछ नहीं था तो मेरे गले पर नख तो दे ही सकती थी। मां तुमने मुझे ससुराल में क्यों भेजा?

क्यूं परणाई उत म्हारी मां
म्हाने जनमती ने जेर क्यूं नी पायो ऐ मां
घर रे आगे कुई क्यूं नी खिणाई ऐ मां
रमती तो उणमे जा पड़ती
म्हारे गले नख क्यूं नी दियो ए मां
क्यूं परणाई उत म्हारी ए मां।

भाई और बहिन—

जन-समाज में सबसे स्नेहिल एवं पावन सम्बन्ध भाई और बहिन का है। यह प्रेम का एक आदर्श स्वरूप है। बहिन के हृदय में जहाँ भाई के लिए प्रगाढ़ स्नेह भरा होता है, वहाँ भाई भी लाखों कष्ट सह कर बहिन की प्रत्येक विपति को दूर करने के लिए प्रत्येक क्षण तत्पर रहता है।

एक गीत में बहिन अपने भाई से आभूषणों की माँग करती है, मगर साथ ही वह भाई को चेतावनी भी देती जाती है कि वह भौजाई से छिपाकर मुझे दे; नहीं तो, वह मुझे देने नहीं देगी—

माथा ने भंवर घड़ाम्रो म्हारा वीरा जी भावज छाने रखड़ी लावजो
कानां ने झाल घड़ाम्रो म्हारा वीरा जी
भावज छाने झुटणां लावजो
मुखड़ा ने वेसर घड़ाम्रो म्हारा वीरा जी
भावज छाने मोतीड़ा गंसावजो।
हिवड़ा ने हांस घड़ाम्रो म्हारा वीरा जी
भावज छाने तिमण्यां लावजो
कण्यां ने पटोली सिवावो म्हारा वीरा जी
भावज छाने चूंदड़ लावजो।
बायां ने चुड़लो चिराम्रो म्हारा वीरा जी
भावज छाने गजरा लावजो।
पगल्या ने पायल घड़ाम्रो म्हारा वीरा जी
भावज छाने घुंघरा घमावजो
म्रतरी होय तो म्राजो म्हारा वीरा जी

ऐ वीरा, सारां सारां रे पेली नोतो दीनो
अवांरा क्यूं आयो ।
ए बैणां, थारी भावज के भंवर घड़ायो
थारे सारूं रखड़ी ल्यायो ।
ए बैणां, थारी भावज के झाल घड़ायो
थारे सारूं झूटणां ल्यायो ।
ऐ बैणां, थारी भावज के हांम घड़ायो
इण कारण मोड़ो आयो ।

एक अन्य 'तिलक' नामक गीत में तो भाई और बहिन का प्रेम बहुत ही गहन एवं विचित्र ढंग से व्यंजित हुआ है—

मैं त सूं पूछूं म्हाका वन का सोयटड़ा
वन का सोयटड़ा
की ने थारे तलक मोत्यां जड्यो ?
की ने थारी चूंच चुगां भरी ?

नोमो जो मास गोरी घन लाग्यो
आवरिये मन जाय, हालरिये मन जाय
भंवर केला लावजो जी ।

पति स्पष्ट उत्तर देता है—

बांगा जो बांगा म्हें फिरया जी
कहियन पायो केला रूंख
सुन्दर हठ छोड़ दो जी
कहियन पायो केला रूंख
मारूणी हठ छोड़ दो जी

इस पर पत्नी सलाह देती हुई कहती है—पतिदेव ! आप चुपके से शाख को झुका लीजियेगा और सबों की नजर बचाकर चार केले लाइये । उन केलों को अपने दुपट्टे के पल्ले में बांध कर बगल में छिपा लेना । हे भंवर, केले लाना—

चुपके से डाल नवांव जो जी
छाने से तोड़ो केला चार
भंवर केला लावजो जी ।
दुपटा के पल्ले बांव जो जी
लीजो बगल में छिपाय, भंवर केला लावजो जी ।

एक अन्य लोक गीत में पति अपनी प्रसूता पत्नी से पूछता है—गोरी, तुझे क्या मनिक्क लगता है—

ऊभा ऊभा सायब जी अरज करे छे

और नव-विवाहिता वधू पुत्र-जन्म के बाद लड्डू बनाते समय पति को चेतावनी देती जाती है—पतिदेव, गोंद के फूले पड़ गये है, उन्हें परात में रख लीजिये, मोटे मोटे लड्डू बाँधिये, लोग देखेंगे। पतिदेव, भगोनी में भरकर उन्हें कोठी में रख दीजिये, और ऊपर से मटकी ढांक दीजिये, नहीं तो लोग देखेंगे—

घर दो कढ़ाई र पूर दीयो घीयड़ो
दोई मिल फूलां पाड़ा हो पिया
छमको लोग सुणेला
पड़ गया फूला वां ने मेलो परातां
मोटा मोटा लाड्ड़ा बांधा ही पिया जी
कोई लोग देखेगा
भरदो भगोणां में मेलो कोठी में
ऊपर मायणी ढाको हो पिया जी

म्हां का मन की हो गई, म्हें तीनों ही होगी वांझ
सासू जी ओढ़े चूंदरी, बाई सा ने ओढ्यो घांट
म्हां ने थां को कांई विगड्यो म्हें ई ओढ़ा टाट
सासू जी की फट गई चूंदगी, बाई सा को फटग्यो घांट
म्हा का मन की हो गई, म्हें तीनों ई ओढ़ा टाट
सांवलिया हो, सांवलिया जी सुणो म्हां के मन की बात।

एक अन्य गीत के अध्ययन से तो यह स्पष्ट लगता है कि बहू को यह भी विश्वास नहीं कि उसके बच्चा होते समय सास आयेगी भी, या दाई को आने देगी इसलिये वह पति को संबोधन कर सकती है कि आप जाकर पीहर से मेरी मां तथा दाई को बुलवा लीजिये, मेरा शरीर तकलीफ पा रहा है। तुम्हारी मां तो शायद ही आवे—

थां की तो दाई पिया कदियन आवे
थां की तो माता पिया कदियन आवे
म्हारा पीयरिया सूं जाय दोई लाओ
जी थें जाओ पिया।
म्हारे पीयरिया सूं जायर मां ने लाओ
जी थें जाओ पिया
लाल पलंग पर गेरी पीड़ा आवे
गेरी पीड़ा आवे, गुलाबी पीड़ा आवे
चन्द्र वदन म्हांकी, सांवरी सूरत कुमलावे
जी थें जाओ पिया।

एक नव-विवाहिता वधू अपनी वड़ी से नम्र शब्दों में जो बात कहती है, वही इस सम्बन्ध का मूलाधार है और उससे ही स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि सौत की ईर्ष्या का मुख्य प्रयोजन क्या होता है ।

थे मोटा म्हें छोटा, म्हारा जीजा बाई थां की होड़ न होय
थां की होड़ न होय म्हारा जीजा बाई, थां की होड़ न होय
केशरिया दरबार पधारिया महलां झगड़ो होय
महलां झगड़ो होय म्हारा जीजाबाई सेजां झगड़ो होय
माथां मेल्या भंवर म्हारा जीजाबाई वां में बांटो होय
कानां मेल्या कुंडल म्हारा जीजाबाई वां में बांटो होय
केशरिया दरबार पधारया महलां झगड़ो होय
म्हारा जीजाबाई सेजां झगड़ो होय ।

जीजीबाई, तुम वड़ी हो, मैं छोटी हूँ । तुम्हारी बराबरी नहीं हो सकती । जीजीबाई महल में पतिदेव के लिये झगड़ा होता है, सेजों पर झगड़ा होता है। माथा, कान और अन्य गहनों के बँटवारे पर झगड़ा होता है। जीजी बाई, तुम वड़ी हो, मैं छोटी हूँ । तुम्हारी बराबरी नहीं हो सकती ।

उपर्युक्त गीत के माध्यम से हमें सौतिया-डाह की सूक्ष्म परन्तु स्पष्ट सी झांकी मिल जाती है और धीरे धीरे यह डाह इतना असह्य हो जाता है कि स्त्रियां आत्म-हत्या तक कर डालती है। कैसा भयंकर विकल्प और अन्त है ! इसी प्रकार के सौतिया-डाह के अनेक वर्णन लोकगीतों में उपलब्ध हैं ।

उपर्युक्त गीतों के अध्ययन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि हाड़ौती लोक-गीतों का भण्डार समृद्ध है । उसमें नारी-जीवन के विविध एवं बहुरंगी चित्र है और नारी के विविध रूपों का मर्मस्पर्शी चित्रण यत्र-तत्र बिखरा हुआ इन गीतों में मिल जाता है । ये हाड़ौती जन-समाज के सही मायने में दर्पण है। ये संस्कृति की धरोहर हैं । सही मायने में ये ही भारतीय समाज एवं जनजीवन के यथार्थ एवं स्पष्ट चित्र हैं ।

एकादश प्रकरण

हाड़ौती एवं अन्य भाषायी लोकगीतों में भावसाम्य

एकादश प्रकरण

हाड़ौती एवं अन्य भाषायी लोकगीतों में भावसाम्य

लोकगीत केवल अशिक्षित लोगों को ही प्रिय नहीं हैं, अपितु साहित्य के मर्मज्ञ विद्वानों तथा अन्य समस्त व्यक्तियों के लिये भी आकर्षण की वस्तु हैं। स्पष्ट है कि जब जनता की वाणी हृदय-रस से सिक्त होकर स्वाभाविक सरसता के साथ प्रवाहित होने लगती हैं तो स्वभावतः ही वह आकर्षण की वस्तु बन जाती है। इसीलिये तो मैथिल-कोकिल विद्यापति तक को कहना पड़ा था कि लोकवाणी अपनी मिठास के लिये सभी लोगों को प्रिय लगती है।[१] भारत जैसे विशाल देश की भिन्न-भिन्न भाषा और बोलियों में ये गीत प्रवाहित होकर जन-हृदय को रस-सिक्त, प्रकृत एवं संस्कारित करते हैं। सभी प्रदेशों के लोकगीतों की अन्तर्धारा में इन गीतों के तत्व एक से मिले हुए है। यदि संपूर्ण भारत को सांस्कृतिक इकाई में कोई बाँध सकता है तो निस्सन्देह ये लोकगीत ही है; क्योंकि लोकगीतों में आकर जनमानस का उर्मिल स्वरूप अधिक पूर्णता एवं स्पष्टता के साथ निखरता है, एवं गीतों के सौम्य तथा आर्द्र स्वरों में मिल मानव को भाव-संकुल बना रस-स्निग्ध बना देता है।

अन्य भारतीय भाषाओं के लोकगीतों की तरह हाड़ौती लोकगीतों का प्रकृत स्वरूप भी अन्तर में गूढ़ तत्व छिपाये हुए है। हाड़ौती क्षेत्र पर गुजरात, राजस्थान एवं मालव क्षेत्रों का प्रभाव पड़ता है। हाड़ौती, गुजराती एवं राजस्थानी के प्रभाव से जहाँ इन गीतों में स्निग्धता एवं सरसता का पुट आया है, वहाँ मालवी के प्रभाव से इन गीतों में स्पष्टता का अंकन अधिक सूक्ष्मता के साथ हुआ है। गुजराती, राजस्थानी एवं मालवी लोकगीतों के सांस्कृतिक हृदय की स्पन्दन-शीलता से विलग कर हाड़ौती लोकगीतों का अध्ययन करना संभव भी नहीं है; क्योंकि भाव, भाषा, लोकाचार, संस्कृति एवं जन-परम्पराओं के इन सब में अधिकाधिक साम्य है। फलस्वरूप हाड़ौती लोकगीतों की संस्कृति एवं जनमानसता तथा लोकाचार का अध्ययन करने के लिये यह आवश्यक है कि उक्त चारों प्रदेशों के लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाये।

हाड़ौती का लोक-साहित्य भाव, भाषा एवं सांस्कृतिक तत्वों की दृष्टि से प्राचीन काल के काफ़ी समृद्ध रहा है, परन्तु अभी तक इसका सांगोपांग अध्ययन न होने के कारण विद्वद्जनों के समक्ष प्रकाश में नहीं आ सका है। हाड़ौती लोक-गीतों का प्रभाव अन्य निकटवर्ती क्षेत्रों के लोकगीतों एवं निकटवर्ती जन-पदों का हाड़ौती लोकगीतों पर प्रभाव पड़ा है।

---

(१) कीर्तिलता—विद्यापति—१।१६।२२

१ : ऋतु उत्सव के गीत

हाड़ौती में एक गीत है, जिसमें अन्नपूर्णा माता का नख-शिख-वर्णन किया है—

सीस माता रो वागड़ियो नारेल
हो वागड़ियो नारेल
चोटी ज्यूँ वासक नाग जे
आख्यां माता री जांणे नीम्बुआ री फांक
दांत दाड़म रा बीज अे
बायां तो बायां जांणे चम्पा री डाल
आंगल्यां जांणे ज्यां मूंगफली ।

करीब करीब यही भाव-साम्य हमें मालवी लोकगीतों में भी मिलता है, देखिये—

सीस बागड़ियो नारेल ओ माता
सीस बागड़ियो नारेल
चोटी माता वासग रमीरचा
पाटी चांद पवासिया ए माय
आंख्या आम्बारी फांक ओ माता
भांपण भमरा भमीरचा ए माय
नाक सुआ री चोंच ओ माता
होठ पनवाडयां छईरया ओ माय
दांत दाड़म रा बीज माता
जीभ कमल की पांखड़ी ए माय
बायां चम्पा केरी डाल
मूंगफली सी आंगल्या ए माय
पेट पीयर की पान माता
हिवड़ो संचे ढालिया ए माय
जाघां देवरा रा थम्म माता
पींडलियाँ बैलण बेलिया ए माय
पांव रूपा री खान माता
एड़ी संचे ढालिया ए माय ।[1]

हाड़ौती गीत का भावसाम्य मालवी से ही नहीं, सान्निध्य के कारण मारवाड़ी से भी है । इसी गीत से भाव साम्य देखिये—

हे गवरल रूड़ो है नजारो
तीखो है नैण रो
सीस है नारेला गवरल सारियो

(१) मालवी लोकगीत—डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय—पृष्ठ ४२४–४२५

हो जी वैं री वैणी छे वासग नाग
भंवारे ही भंवरो गवरल है फरे
लिलवट आंगल चार
आंखड़ियां रतने जड़ी
वैंरी नाक सुआ के री चूंच
मिसरायां चुनी जड़ी
जेरा दांत दाड़म के रा बीज
हिवड़े संचे ढालियो
वैंरी छाती वजर किवाड़
मूमफली सी गवरल आंगली
वैंरी बांय चम्पा के री डाल
पिंडलियों रोमालियाँ
वैंरी जांघ देवल के री थांम
एड़ी चमके गवरल आरती।[१]

हाड़ौती में एक गीत है गणगोर—

भंवर म्हाने पूजण दो गणगोर
मुखड़ा न वैसर काना न झालर
वइयां न चूड़लो लावज्यो
भंवर म्हांने खेलण दो गणगोर।
ऊजी म्हारो सइया नाले छै वाट
कै दन की गणगोर गौरी म्हारी
कै दन की गणगौर
सोला दन की गणगोर
भाइली सतरा दन को हरख उछाल
भंवर म्हारा पगल्यां न पायल लावजो
भंवर म्हाने पूजण दो गणगोर।

और इसी का भाव-साम्य गीत हमें राजस्थानी में भी उपलब्ध होता है—

भंवर म्हांने खेलण दो गणगौर
म्हारी सैया जोवे वाट
ओ भंवर म्हाँने खेलण दो गणगौर
कै दिन री गणगौर
जी थांने कतरा दिन रो चाव
ओ भंवर म्हांने खेलण दो गणगौर।
दस दिन री गणगौर ओ भंवर

---

(१) राजस्थान के लोकगीत—पृष्ठ ३९–३१

म्हारे दस दिन री गणगौर
जी म्हांने सोला दिन रो चाव
ओ जी भंवर म्हाने खेलण दो गणगौर
नहीं जावा दां सारी रात ओ सुन्दर
गैणा अदक घड़ाव
जी म्हारा मेलां री रखवाल
सुन्दर थांने नहीं जावा दां सारी रात।[1]

२ : परम्परा एवं त्यौहार के गीत

हाड़ौती क्षेत्र गुजरात, मालवा एवं राजस्थान के अन्य भागों से प्रभावित है, फलस्वरूप इनकी परम्परा का सूत्र, इनके विचार रस्म-रिवाज, त्यौहार उत्सव करीब करीब एक से हैं और इन त्यौहारों से सम्बन्धित तथा उस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में भी परस्पर काफ़ी भाव-साम्य स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है। उदाहरणार्थ—पुत्र जन्म के अवसर पर बधावा गाया जाता है। हाड़ौती गीत में इस बधावे के शुभावसर पर हाड़ौती चतुर-स्त्री अपने कुल के सम्बन्धियों को कितनी चतुरता एवं उपमा-परक सम्बोधनों से स्मरण करती है, देखिये—

कंवरे ऊबी कुल बहूजी
वां के चाले कमर मांही पीर, चिन्ता वाकी कूण करे जी
सुसरा जी म्हांके चौधरी जी
सासूजी अरथ भण्डार
जेठ जी म्हांरा बाजूबंद
जेठांणी बाजूबंद री लूंब
चिन्ता म्हांरी वे करे जी
धीयड़ म्हांकी मूंदड़ो जी
जंवाई मूंदड़ा मेल्या काच
पूत म्हाको हीवड़ो जी
कुल बहू हिवड़ा में को हार।[2]

इसी गीत का प्रभाव मारवाड़ी पर भी पड़ा है, राजस्थानी में इस गीत के भाव-साम्य का लोकगीत देखिये—

म्हारो सुसरो जी गढवा राजवी
सासुजी म्हारा जेठजी बाजूबन्द बांकड़ा
जेठानी म्हारी बाजूबंह री लूम्ब
म्हांरो देवर चुड़लो दांत रो
देराणी म्हारी चुड़ला री मजीठ

(१) राजस्थानी लोकगीत—रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत—पृष्ठ ३२
(२) मैं धरती राजस्थान की—स्व० लक्ष्मीसहाय माथुर—पृष्ठ १८

सात सहेल्यां क भूमके पणिहारी जी श्रो राज
पाणी ने चली रे तलाब वाला जी
बाला जी सुना रूपा को म्हांको बेवड़ो
मोत्यां की म्हांकी छूमली
रेशम की छे म्हांकी डोर
पणिहारी जी श्रो राज।

इसी गीत का प्रभाव राजस्थानी में भी दिखाई देता है—

कालो रे कलायण ऊमडी ए पणिहारी हैलो
छोटोड़ो छांटा रो बरसे मेह सैणां लो
आज धराऊ धूधलो ए पणिहारी हैलो
मोटोड़ो छांटारो बरसे मेह सैणां लो
भर नाडा भर नाडिया ए पणिहारी हैलो
भरियो भरियो समंद तलाब सेणां लो
किण जी खुणायो नाडा नाडिया पणिहारी हैलो
किण जी खुणायो भीम तलाब सैणां लो
सासु जी खुणाया नाडा नाडिया ए पणिहारी हैलो
सुसरे जी खुणायो भीम तलाब सैणां लो
किण सूं बंधावो नाडा नाडिया ए पणिहारी हैलो
नालेरा बंधावां नाडा नाडिया ए पणिहारी हैलो
मोतीड़ा बंधावा भीम तलाब सैणां लो
सात सहेल्याँ रे झूलरो ए पणिहारी हैलो
पांणी ने चालो रे तलाब सैणां लो।[1]

और इसी भाव-साम्य से मिलता गीत मालवी में भी उपलब्ध होता है—

कणी रे खुदाया कुवा बावड़ी रे,
कणी ये खुदाया तलाब बालाजी
पनियारी श्रो राज, मिरगानैणी श्रौ राज
सुसरे जी खुदाया कुश्रा बावड़ी रे
दादा जी खुदाया तलाब
बाला जी पणियारी श्रौ राज
मिरगानैणी श्रौ राज
जेठजी खुदाया तलाब
बालाजी पणियारी श्रौ
कदी नी जाऊं कुश्रा बावड़ी ए
नित नित उठ जाऊं तलाब बाला जी
पणियारी श्रौ राज, मिरगानैणी श्रो राज।[2]

---

(१) राजस्थानी लोकगीत—रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत—पृष्ठ १२७-२८
(२) मालवी लोकगीत—डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय—पृष्ठ २१०-२११

खेल के गीत

हाड़ौती क्षेत्र में होली का महत्व विशेष रूप से है। लोग एक दूसरे पर खुशी खुशी पानी उंडेलते हैं, अबीर और गुलाल से उसे तरीतार कर देते हैं। एक हाड़ौती स्त्री की यही शंका है—

पानी भरन कैसे जाऊं री नणंदिया
तो कुआं पे मच रही कीच नणंदिया।
सासूजी का जाया, मोली बाई सा का बीर
तो जोरी से खेले छे होली नणंदिया
पाणीं भरन कैसे जाऊं जी नणंदिया
माथा ने म्हां के भंवर सोहे
कानां ने म्हां के झालज सोहे
तो रखड़ी री घमतोड़ी री नणंदिया
तो झुटणा री घम तोड़ी री नणंदिया
मुखड़ा ये म्हां के बेसर सोहे
तो मोतीरा री घम तोड़ी री नणंदिया
हिवड़ा ने म्हां के हांसज सोहे
तो तमन्या री लड़ तोड़ी री नणंदिया
तो कुआं पे मच रही कीच नणंदिया।[1]

इसी से मिलता गीत गुजराती में भी प्राप्त होता है—

सोना ईंढोणी, रूप वेडलूं रे
छेल रमें गेंडी दड़े
पांणी किया जाऊं रे तलाव
छेल रमें गेंडी दड़े
कडला घडावो ओधार म्हांरा अंगना
छेला रमें गेंडी दड़े।
काचनी चूड़ी पेरू चार
छेल रमें गेंडी दड़े
जवेरनी चूड़ी पेरू चार
छेल रमें गेंढी दड़े
झबूके मारा अंग मां पलाट
छेल रमें गेंडी दड़े
सोना ईंढोणी रूपा वेडलूं रे
छेल रमें गेंडी दड़े

(१) धरती राजस्थान की—स्व० लक्ष्मीसहाय माथुर—पृष्ठ ७६

एक कटोरी फूटी
मामा की वहू रूठी ।[1]

आध्यात्मिक गीत–

आध्यात्मिक गीतों की दृष्टि से हाड़ौती लोकगीत अन्य प्रान्तीय लोक-साहित्य की अपेक्षा अधिक समृद्ध एवं भाव-संकुल है। हाड़ौती के गुरुदेव-मरण, मृत्यु-गीत, शिकार-गीत आदि आध्यात्मिक गीत तो विश्व के किसी भी अंचल के लोकगीतों के समक्ष स्पष्टतः रखे जा सकते हैं। एक-दो गीत द्रष्टव्य है—

हाड़ौती–

जनम भूम मथरा मत त्यागो
मत जाश्रो न गिरधारी।
थां विन सारी कुंज गली में
भम भम फिर फिर हारी
थां विन क्रिसण मरां म्हैं
थे थोड़ी नवज देख जाश्रो म्हारी
जनम भूम मथरा मत त्यागो
मत जाश्रो ना गिरधारी।
सवरी सख्या यूं उठ वोली
कासी करोत जाय लेस्यां
वलदाऊ जी का छोटा भाया
जनम जनम स्यूं दासी
करवा कर म्हने दरसण दीज्यो
चरण में राखो दासी।

मालवी–

वन गयो वेद लाड़लो गिरधारी
वन गयो वेद सांवरो गिरधारी
व्रन्दावन की कुंज गलिन में
देखत फिरत नाड़ी
वन गयो वेद सांवरो गिरधारी
एक गुवालन नई उठ बोली
देखत जाश्रो लालजी नवज हमारी
नवज पकड़ के कहे सांवलो
सरद-गरम है भारी
एक दवई तो श्रभी दऊंगा

(१) व्रज लोक—साहित्य का अध्ययन—डॉ० सत्येन्द्र—पृष्ठ ९७

मिट जायगी री गुवालन
सरन तुम्हारी
बन गयो वेद सांवरो गिरधारी [1]

हाड़ौती–

अरे मत कर तूँ जोर जवानी
नई नई रे भरोसो जिनगानी ।
यो संसार चहर की बाजी
सांझ पड्यो उठ जाऊँगो
यो संसार कागज की पुड़िया
बूँद पड़या घुल जाऊँगो
यो संसार भंवर समदर को
माया जाल रचाऊँगो
गाफल रे तो इण माया के
चोर पड़े लुट जाऊँगो ।

और इसी प्रकार का गीत मालवी में भी प्रस्तुत है—

मालवी–

नई नई रे भरोसे जिन्दगानी को,
को तू मत कर जोर जुवानी को।
यो संसार हाट को मेलो, रामा
पवन लगे ढुल जावत है ।
यो संसार बोर की झाड़ी, रामा
माया जाल रचावत है ।
यो संसार माया दौलत को, रामा
चोर पड़े लुग जावत है ।[2]

पालने के एवं बाल्यावस्था के गीत–

हाड़ौती लोरियों में मातृ-हृदय में पाई जाने वाली उन सामान्य मनोवृत्तियों के दर्शन बखूबी होते हैं, जो भारत की अन्य भाषा की लोरियों में भी विद्यमान हैं। पालने या झूले में डालकर बालक को झुलाया जाता है, उसे हुलराया जाता है। इसी हुलराने दुलराने के साथ मां बच्चे के भविष्य की शुभ कामनाएं करती है, उसकी दीर्घायु की कामना करती है, एवं उसे बड़ा होकर प्रसिद्ध व्यक्ति बने, ऐसी चाहता करती है—

हाड़ौती–

हलो हलो रे नाना हलो रे भई
हलो रे नाना झूलो रे भई

(१) मालवी लोकगीत—डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय—पृष्ट १७४
(२) मालवी लोकगीत—डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय—पृष्ठ १७५

पारवती ने परसण करी
भैरूजी ला मने दियो
जग में अमर हो जा रे भई
हलो हलो रे नाना हलो रे भई।

करीब करीब ऐसा ही भाव स्निग्ध गीत गुजराती लोक-साहित्य में भी प्राप्त होता है—

मां झूला देते हुए बच्चे को संबोधित करते हुए गा रही है कि हे बेटा, तुम देव द्वारा प्रदत्त दौलत हो, तुम धरती के सुगन्धित पुष्प हो, मेरे घर के चिराग हो, तुम्हारे लिये ही तो मैंने शिवादि देवताओं को प्रसन्न किया, अतः तुम इस संसार में दीर्घायु प्राप्त कर फलता फूलना—

तमे मारा देवना दीधेल छो
तमे मारा मांगी लीधेल छो
आव्या त्यारे अमर थई ने रो।
मा दोव जाई उतावणी ने जाई चडावूं फूल
मा देव जो परसन थया, त्यारे आव्या तमे अण मूल
तमे मारूं नगद नाणू छो
तमे मारूं कुल वखाणू छो
आव्या त्यारे अमर थई ने रो।
मा देव जाई उतावणी ने जाइ चडाऊँ हार
पारवती परसन थयां त्यारे आव्या है या ना हार
तमे मारूं नगद नाणूं छो
आव्या त्यारे अमर थई ने रो।[1]

हाड़ौती—

नानकड़ो म्हांरो रांया को
दूध पिये गम गांया को
छानो रे रे वीरा रे
भर मटका धूं थीरा रे
सोना रो घड़ाइयूं हीरोंली
रूपा री वांधू डोर
लूण करे रे के रई रे भई
ई के नाना की करो सगाई रे भई
हालर हूलर हांसी को
लाल चूड़ो नाना की मासी को।

(१) रढियाली रात—झंवरचन्द मेघाणी—भाग २—पृष्ठ २

गुजराती—

बालक ने हालरडुँ कालूँ
कान कुँवर ने हालरडुँ वालूँ
मीठा मोहन ने हालरडुँ वालूँ
छानो म्हारा वीर
भरी आवुँ नीर
पछी तारी डौरी ताणूँ
साव रे सोना रू तारे पारणियु ने
सोना नी सजीये कान
हेते नाखूँ तने हींच को
मारो मुद्ररो भीजे वान
जल भरीने आणूँ निमष मा
थूँ छानो रे रे वीर
नी जे रयो छानो तो त्यारे
भुआ करे सगाई।
इडे इमाले लूण करूँ
पछे आई थने नवराऊँ
बालक ने हालरडुँ वालूँ
कान कुँवर ने हालरडुँ वालूँ
मोठा मोहन ने हालरडुँ वालूँ।

धार्मिक गीत—

बाँझ नारी-जाति का सर्वाधिक महान् अभिशाप है, जिसके नीचे रौंदी जाकर स्त्री चारों तरफ से निराश हो जाती है। उसकी एक ही अभिलाषा होती है कि किसी प्रकार में भी माता बनूँ, बाँझ के कलंक को मेरे मस्तक पर से उतार दूँ, और उस निराश स्त्री को चारों तरफ एक भयानक शून्यता ही दृष्टि-गोचर होती है; फलतः वह देवी-देवताओं के चरणों में जाती है, और उससे पुत्र-याचना करती है।

इसी प्रकार एक बांझ हाड़ौती-स्त्री भैरूँ जी के पास जाकर पुत्र-प्राप्ति हेतु याचना करती है—

कासी का वासी म्हांरी अरज सुणों
मतवाला भैरूँ म्हांरी अरज सुणों
कास खेजरो ऊन तेजरो
दुखदायी दर दूर करा दीजो
मतवाला भैरूँ म्हारी अरज सुणों

काली का वासी म्हांरी अरज सुणों
सासू नणंदा ने म्हांरी रस भरदो
म्हांरी पिऊ पातरिया ने वस कर दो
वीर जिठाणी म्हांरी रस भर दो
छोटो सो जड़लो म्हांरो गोदयां भर दो
कासी का वासी म्हांरी अरज सुणों
मतवाला भैरूं म्हांरी अरज सुणों ।[1]

इसी का प्रतिरूप-सा गीत राजस्थानी लोक-साहित्य में भी मिलता है, जिसमें एक बांझ स्त्री भैरूं जी से पुत्र-प्राप्ति हेतु निवेदन करती है और कातर-पूर्ण स्वरों से प्रार्थना करती है—

कालूड़ा[2] ! पोल्या वंधाई रे जामी पालणों
भैरूं जी ! कठे जनमिया रे
कालूड़ा ! कठे हुया रे मोट्यार
पोल्या वंधाई रे जामी पालणों ।
वाई ! मैं वन जाया वन ऊपनिया
वाई ! मैं खेजड़ हुया मोट्यार
पोल्या वंधाई रे जामी पालणों
एक हालरिये रे कारणें रे कालूड़ा
सुसराजी बोले बोल
एक आलरिये रे कारणें रे कालूड़ा
परणियो लावे सोक
पोल्या वंधाई रे जामी पालणों
वाई ए ! परणिया री सोक मनां करस्यां
वाई ! थने देस्यां लाडण पूत
पोल्या वंधाई रे जामी पालणों ।[3]

भैरूं जी के अलावा हाड़ौती स्त्री ने गणेश, महादेव, पारवती, दियाड़ी माता, इन्दरगढ़ की माता, माताजी, सती माता आदि के भी गीत गाये हैं। इसी प्रकार से हाड़ौती में एक गीत उपलब्ध है—'शिव-विवाह लो' जिसमें महादेव जी जब विवाह को जाते हैं तो उसके स्वरूप का वर्णन है—

भसमी लपेटी सारा अंग मा
गौरी ने चाल्या छै जी परणवा
जनेऊ करी वासग नाग की

(१) मैं धरती राजस्थान की—स्व० लक्ष्मीसहाय माथुर—पृष्ठ ७०
(२) काले भैरव का संक्षिप्तीकरण ।
(३) राजस्थानी लोकगीत—रानी लक्ष्मीकुमारी चूडावत—पृष्ठ ४५

सांड्यां प होया असवार जी
भूत परत लीना वाने साथ में
सांप गोयरा लीना वाने साथ में
गौरा ने चाल्या छै जी परणबा

सभी घबरा गये, श्री महादेव के ऐसे स्वरूप को देख, पारवती ने मन ही मन कहा—भोले नाथ, अब तो अपना रूप संवारो यहां सभी दुखी हो रहे हैं। उन्हें धैर्य धारण कराओ—

उठो सजोवो माता आरत्यो, हेमाचल की नारजी
सिर प तो ओढो माता चूनड़ी
हाथाँ म ले लो जगी थाल जी
सिर की चूनड़ वाकी जल गई, हाथा का छूटश्या वाका थाल जी
मत जाओ ए गौरा थांके सासरे
बूढ़ो तो आयो म्हांरे बारणे
जोगी तो आयो म्हांरे बारणे
सांप गोयरा लायो वाके साथ में
भेष संभालो संभु आपको कलपे छे मायड़ बाप जी
कलपे सहेलियाँ को साथ जी, कलपे छे आसो परिवार जी
बारा बरस का सो जी भंवर बण्या
जनेऊ फरी पीला पाट की
मोचड़्याँ फरी मचमची
जामा तो फरचा वाने सोहणा
बागा तो फरचा वाने केसरया
चीर तो बांध्या वाने कसुमला
मोती तो फरचा वाने सौहणा
अब धर जावो गोरा था के सासरे।

ऐसे ही भाव के मारवाड़ी गीत की झलक देखिये—

ऊँची चढ़ देखूँ ए माय
जानं किसी म्हांरी गौरी री
सब जान्यां रे वागा ए मांय
मा देवजी मृगछाल पेर्या
सब जान्यां रे जनेऊ ए माय
मा देवजी सरप लपटाया
सब जान्यां रे मोचड़ियाँ ए माय
मा देवजी पावड़ियां पेर्यां
मरूँ ए के जीवूँ ए माय

वींद वुरो म्हारी गौर री
थ तो रूप संवारो मा राज
जीव दोरो मारी माय री
ऊँची चढ देखूँ ए माय
जान किसी म्हारी गौर री
सब जान्यां रे अंगरखी ए माय
मां देवजी रे जायो केशरियां
सब जान्यां रे मोती ए माय
मा देवजी रे कुण्डल ए माय
सब जान्यां रे जनेऊ ए माय
मा देवजी रे हार पेरिया
सब जान्यां रे फूलड़ा ए माय
मा देवजी रे सेवरो बांधियो ।[1]

हँसी-मजाक एवं चुहल सम्बन्धी गीत—

मानव स्वभावत हँसी खुशी, चुहल, छेड़खानी चाहता है, और इस प्रकार के हँसी-मजाक के आदान-प्रदान से वह सन्तुष्टि का अनुभव करता है। हाड़ौती क्षेत्र में स्त्रियां विवाहादि अवसरों पर वेवाई एवं सगों के लिये गालियां गाती हैं। परन्तु इन गालियों का अन्तर ध्वंसात्मक नहीं होता, अपितु इनमें हास्य, स्नेह एवं माधुर्य का पुट लगा रहता है। ये गालियाँ हृदय की कुढ़न को लिये हुए नहीं होती। गीतों में ढलकर इनमें कुछ रागात्मक निखार आ जाता है। छेड़-छाड़, विनोद-व्यंग्य, और मनोरंजन के साथ ही इन गालियों के द्वारा अतिथियों का सत्कार होता है। किसी के हृदय पर आघात पहुँचाने की भावना का यहाँ नितांत अभाव है। गालियों के द्वारा हास्य और मनोविनोद की प्रवृत्ति में समाज के व्यक्तियों के प्रति आत्मीय भाव प्रकट होता है। सहानुभूति के इस वातावरण निर्माण में जहाँ एक ओर सहज वृत्ति कार्य करती है, दूसरी ओर सद् सम्बन्ध में गुथे हुये व्यक्तियों के मनोभावों को परखने का अवसर भी मिल जाता है कि वे साधारणतः अप्रिय एवं कड़वी बातों को पचाने की क्षमता रखते है, या नहीं।[2]

हाड़ौती में इसका प्रचलन बहुत है, और ये गीत लोक-गीतों के अन्तर की स्निग्ध धारा का कार्य करते हैं जिससे गीत रस मग्न रहते हैं। इन गीतों का भी अन्य प्रान्तीय लोकगीतों पर प्रभाव पड़ा है, कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है—

हाड़ौती—

वाली मज मस्तानी
इतर फुलेल करे दीवाणी

(१) राजस्थानी लोकगीत—रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत—पृष्ठ १७-१८
(२) मालवी लोकगीत—डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय—पृष्ठ १४८-१४६

काजल घाले पान रचावे
मिनखा बात सोकीन केरावे
अंगिया जोबन जोर जतावे
फर फर साडू री पल्लो छिटकावे
कमर प कूँची लटकावे
वातां री सोकीन केरावे

तुलना करके देखिये—

मालवी—

गोविन्द लाल जी वाली मल्ल मस्तानी
तेल मीठ से माथो न्हावे
ऊपर बढ़िया अतर लगावे
पाटी पर गोटो चिलकावे
रे वातां सोकीन केलावे
असी बात सुणन में आवे
राती टीकी कालो अंजन
दातां पे चौंप चिपकावे
अंगिया कसती, जोबन मस्ती
चले उचकती, ठोकर खाती
सालू को पल्लो छिटकावे
रे वा तो सौकीन केलावे
पतलो पेट, वा की ऊँडी डूँठी
दिल की घुण्डी खोलो व्यायण
कम्मर पर कन्दोरो कूँची लटकावे
रे वा तो सौकीन केलावे ।[1]

इसमें मस्त समाधिन के चित्रण के साथ साथ आज की नारी पर करारा व्यंग भी है, जो इसमें ध्वनित हुआ है।

इस प्रकार एक ओर गीत है 'छोटो सो बालम'।

हाड़ौती—

पांच वरस रा आर
वालम छोटो सो
लारे लकड़ा सरसी नार
वालम छोटो सो
पाणी जाऊँ तो लारे लारे आवे
मने लाजां मती मारो भरतार
वालम छोटो सो

---

१) मालवी लोकगीत—डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय—पृष्ठ १४६

पांच बरस का हरिगोपाल जी
दारी बांगड़ सरी को नार
वालम छोटा सा।
मर जावे त्हारा माव ने बाप
म्हांने लाजा मत मारो भरतार
वालम छोटा सा।
घट्टी पिसता म्हांरी हथेलियां दुखे
आटो पिसावावे भरतार
वालम छोटा सा।
दारी बांगड़ सरी को नार
वालम छोटा सा।[1]

प्रणय-भावना के गीत–

दाम्पत्य जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण, कोमल एवं स्निग्ध गीतों में प्रणय सम्बन्धी गीतों की गणना की जा सकती है। इसमें मिलन है, तो विरह भी है; हंसी खुशी है, तो अश्रु-हिचकियाँ भी; कोमलता है, तो पुष्पता भी। ये गीत मानव-जीवन से निवृत्त होते हैं, एवं उनके अन्तर को झकझोरने की क्षमता भी रखते है—

हाड़ौती–

घर न पधारो म्हांरा वालमा
चूला म झालो थांरो चाकरी
सायीड़ा प पड़ जाय बीज
घर न पधारो म्हांरा वालमा
ऊपर चढ़ूं न नीची उतरूं
जोवूं सांवरिया री वाट
घर न पधारो म्हांरा वालमा
घर घर धमके वादला र
पल पल पलके बीज
अब घर न पधारो म्हांरा वालमा।

राजस्थानी–

राजस्थानी नारी भी पति से प्रार्थना करती है कि नजदीक से नजदीक नौकरी करना। मुझे इस सूने घर में अकेले रहते डर लगता है—

नेड़ी तो नेड़ी करजो पिया चाकरी जी
सांझ पड्यां घर आय जावो
गौरी रा बालमा जी
साथीड़ा पे पड़ जो ढोला बीजली
रावजी ने खाज्यो कालो सांप
अब घर आय जावो. आसां थारी लाग रई जी
कुण दिशा चाल्या पिया चाकरीजी
कुणी दिसा जोवूँ राज री बाट
अब घर आय जावो
गौरी रा बालमा जी
जावो तो रांधू पिया खिचड़ी जी
रे वो तो रांधू उजला भात
अब घर आय जावो गौरी रा बालमा जी
बादल में चमके ढोला बीजली जी
मेंला में डरपे घर री नार
अब घर आय जावो बरखा लूँब रही जी
असी ने टकां री पिया चाकरी जी
लाख मोहर री नार
अब घर आय जावो, मिरगानेणी रा भरतार।

इनके अतिरिक्त (भाषा एवं भाव साम्य के) मालवी, गुजराती, राजस्थानी एवं हाड़ौती लोक-गीतों में कुछ रूढ़ पद्धतियों का भी समावेश मिलता है, जिसमें वस्तु विशेष के लिये निश्चित शब्दावलियों का प्रयोग है—

उदाहरणार्थ—

अश्वारोहण के लिये	....	पलांण शब्द का प्रयोग
अश्व के लिये	....	लीलडी, घुड़ला आदि
अश्वारोही के लिये	....	पातलियो सिरदार
वर के लिये	....	राइवर, रायजादा
सुन्दर स्त्री के लिये	....	पदमणी
भाई के लिए	....	जामण जायो वीर, वीरा, नणद वाई रा वीर
वस्त्र के लिये	....	चूनड़, चूनड़ी, दरवणी चीर
दिशाओं के लिये	....	ऊगमणों (पूर्व) अथमणों (पश्चिम)
उद्यान के लिये	....	चम्पा वाग, आदि

इस प्रकार से हाड़ौती एवं उससे छूते हुए प्रान्तों में शब्दों एवं लोकगीतों में अधिकाधिक साम्य मिलता है।

०

(१) राजस्थानी लोकगीत—रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत—पृष्ठ ५१-५२

द्वादश प्रकरण

हाड़ौती गीतों में नई चेतना और उसका भविष्य

द्वादश प्रकरण

हाड़ौती-गीतों में नई चेतना और उसका भविष्य

जहाँ हाड़ौती ने अन्य क्षेत्रों को अपने प्रभाव से प्रभावित किया है, वहाँ यह भी अछूती नहीं रही है, अपितु इस पर भी बदलते युग का प्रभाव पड़ा है।

फिरंगी-राज्य (हाड़ौती लोकगीतों में)–

रेल चलाई रे फिरंगी
रेल चलाई रे।
मार धमाका धम धम चाले
बम्बई सेर क झट पोंचावे

इसके अतिरिक्त अन्य वाहनों ने भी ग्राम्य जीवन को प्रभावित किया है—

१— डिराइवर धीरे मोटर हांक
म्हांरी बनड़ी छ नादान
काल जो हद घबराये रे।
डिराइवर धीरे मोटर हांक।

गाँधीजी–

१— जे बोलो महात्मा गांधी की
ज्या एँ आजादी दिखलाई
तकली घर घर में चलवाई
मांग्या तिरंगी आगाजी
जै बोलो महात्मा गांधी की

२— बनासा म्हांने चरखो आज मँगा दो
बैठी सूत कतावूँ
बनासा म्हांने चरखो आज मँगा दो
लाख टका की लूकड़ी जी
बना, पोड़ो लाल गुलाल
झीणो झीणो तार कात सूँ
मोहर मोहर रो तार
बनासा मने चरखो आज मँगा दो।

स्वतन्त्रता के पश्चात् भी गिलट की नकली चांदी के चलन की ओर लक्ष्य कर ग्राम के भोले-भाले लोगों की अभिव्यक्ति देखिये—

गिलट की चांदी चल गई जी
गिलट की चांदी चल गई जी
मोटा घरां की नार
गिलट सूँ जगमग होय गई जी
गिलट की चांदी चल गई जी।

सिनेमा का लोक-गीतों पर प्रभाव—

विज्ञान के नित नए आविष्कारों के साथ चलचित्रों के व्यापक प्रचार-प्रसार ने भी जन-मानस में व्याप्त विचार-तन्तुओं को झकझोर दिया है। स्वदेशी की मांग करने वाले एवं विदेशी वस्तुओं से नाक-भौ सिकोड़ने वाले भी सिनेमा के प्रभाव से बच नहीं सके हैं। नगर की साधारण स्त्रियों पर तो सिनेमा का प्रभाव पड़ा ही हैं, परन्तु धीरे धीरे यह राग सुदूर ग्रामों के अंचल में भी पहुँच रहा है, और उन्हें संक्रान्त कर रहा है। आधुनिक पीढ़ी एवं नगर की स्त्रियां धीरे धीरे सिनेमा के प्रभाव के फलस्वरूप अपनी प्राचीन लोकगीतों की संस्कृति को भूलती चली जा रही है। इससे जहाँ कोमल, अछूते एवं परम्परागत भाव-सौन्दर्य की हत्या हो रही है, वहाँ दूसरी ओर लोकगीतों की पवित्र सांस्कृतिक धारा भी विकृति की ओर मुड़कर गंदी भी हो रही है। परन्तु सिनेमा का इतना प्रचार तेजी से बढ़ता जा रहा है कि इस ओर सोचने को अवसर ही नहीं मिलता, एवं धीरे धीरे हृदय-रस-स्रोत लुप्त होता चला जा रहा है जो कि भारतीय संस्कृति के लिये संक्रान्ति काल कहा जा सकता है। हाड़ौती के नगरों में प्रचलित सिनेमा से प्रभावित कुछ गीतों के उदाहरण दिये जा रहे हैं, जिससे आधुनिक नारी मानस की रुचि एवं प्रवृत्ति का दिग्दर्शन सहज ही हो जाता है—

१— छुप छुप खड़ा छो जरूर कोई बात छै
वनीसा का फोटू बनासा क पास छै
वनीसा भी गौरी गौरी बनासा भी गौरा गौरा
दोनों की या जोड़ी मिलनी, बड़ी खुशी की बात छै
सीस बनीसा क टिकली
सौं हे कस्सी छवि छाइ छै
कान वनीसा के ऐरन सोहे
कस्सी छवि छाइ छै
कंठ वनीसा क नकलस सोवे
लाकट कस्सी छाइ छे
संग वनी क वनड़ा सोहे
जोड़ी देखो कस्सी छाइ छै

(१) छुप छुप खड़े हो जरूर कोई बात है
पहली मुलाकात है जी, पहली मुलाकात है—(फिल्मी गीत)

वड़ी मुसकल सूँ या घड़ी आई
म्हारा आगण में वजी सहनाई छे

२— ढाई हजार सूँ कम नइ चइये
घर सूँ वहू बुलाने कूँ
दो सौ रुपयों की साड़ी चइये
दस की चैन टकाने कूँ
भरया वजार में वंगलो चइये
कुर्सी मेज लगाने कूँ
दो सौ रुपयों के पोपलीन चइये
ढाई हजार.....................।

३— मेरा दिल चावे वना आपसे मिलन के लिये
कहो तो चिट्ठी भेजूँ
कहो तो कारट भेजूँ
कहो तो भेजूँ हवइ-भाज
वो सन्नाटे आवे
मेरा दिल चावे वना आपसे मिलन के लिये।

उपरोक्त गीतों के अतिरिक्त सिनेमा में पाये जाने वाले कई गीतों ने हाड़ौती लोकगीतों में स्थान वना लिया है जो कि एक तरह का गत्यावरोध है। इस प्रकार के सिनेमा के गीतों के अधिकाधिक प्रचलन से एक सांस्कृतिक संकट-सा खड़ा हो गया है जिसके निम्न तथ्य हैं—

१—हाड़ौती नारी में गीत निर्माण करने की मौलिक प्रवृत्ति नष्ट होती जा रही है।

२—सिनेमा के गीतों का अनुकरण करने के फल-स्वरूप लोकगीतों का सहज माधुर्य एवं रस-प्रवाह समाप्त होता जा रहा है।

३—लोकगीतों में हृदय के अजस्र प्रवाह की जगह कुंठित वुद्धिवादिता ले रही है।

४—सिनेमा की लोक धुनों को अपनाने के कारण परम्परागत लोकधुनों का अस्तित्व खतरे में पड़ता जा रहा है।

५—अनुकरण करने के फलस्वरूप नवीन धुनों का निर्माण रुकता जा रहा है।

सिनेमा का कुप्रभाव हाड़ौती लोकगीतों के भाव, भाषा और लोक-संगीत तीनों पर पड़ता जा रहा है, जिसके फलस्वरूप लोकगीत साहित्य में एक कुंठा, एक गतैस्य एवं गतिरोध-सा उत्पन्न हो गया है और इसका यदि सही निदान निकट भविष्य में नहीं खोजा गया, तो कोई आश्चर्य नहीं कि हम सदियों से

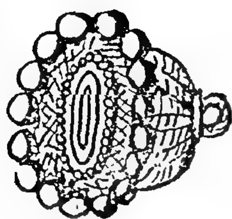
ग्राम परम्परा को खो देंगे, और इस प्रकार से हम एक श्रेष्ठ साहित्य से वंचित हो जायेंगे ।

इसके अतिरिक्त एक और समस्या है, लोकगीतों के संग्रह-कार्य करने के लिए मुझे ज्यों ज्यों हाड़ौती आंचल के सुदूर क्षेत्र में जाने का मौका मिला है, मुझे ऐसा लगा है कि नई पीढ़ी का लोकगीतों के प्रति आकर्षण कम होता जा रहा है । मुझे ये गीत जितने पुरानी पीढ़ी से मिले, उतने नई पीढी से नहीं ।

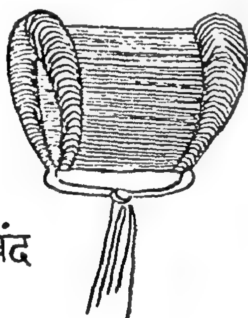
पुरानी पीढ़ी के पास गीतों का खजाना है और एक एक स्त्री को पचास-पचास, साठ-साठ लोकगीत कंठस्थ है, वहाँ नई पीढ़ी की उभरती नारी को कठिनता से ही कोई गीत याद होगा और ज्यों ज्यो पुरानी पीढ़ी लुप्त होती जा रही है, त्यां त्यां गीतों का अस्तित्व भी खतरे में पड़ता जा रहा है । सरकार, कला-प्रेमियों एवं लोकगीत-रसिकों को इस ओर समय रहते ध्यान देना चाहिए जिससे हमारी लुप्त होती हुई चिरन्तन मौलिक संस्कृति की येन-केन-प्रकारेण रक्षा हो सके ।

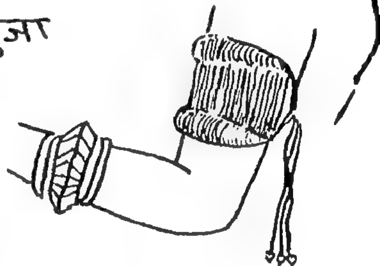
इधर कुछ लोकगीत-प्रेमी एवं तरुण साहित्यकारों का ध्यान इस ओर गया है और वे इन गीतों का संग्रह भी कर रहे हैं, इन पर आधारित लेख भी यदा-कदा पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराते है—यह एक शुभ परम्परा है, परन्तु इस ओर व्यापक स्तर पर कार्य होना चाहिये, तभी हम समय रहते हाड़ौती लोक-गीतों के माधुर्य, चेतना एवं अस्तित्व को सुरक्षित रख सकेंगे ।

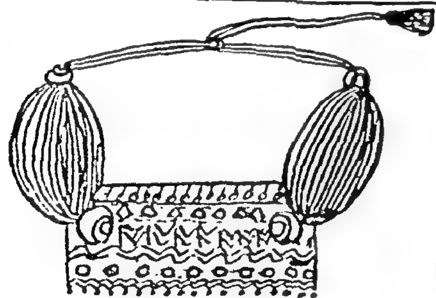
●


रखड़ी

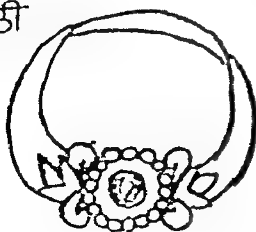

मांग

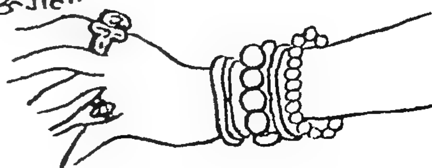

बाजूबंद

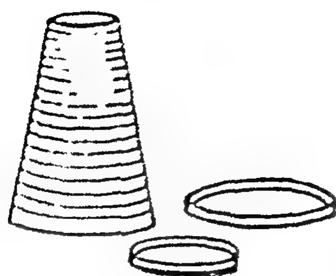

भुजा

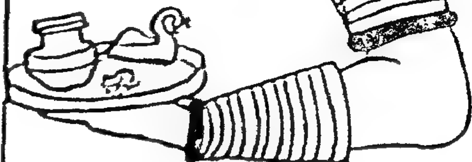

तिमणियां


गला

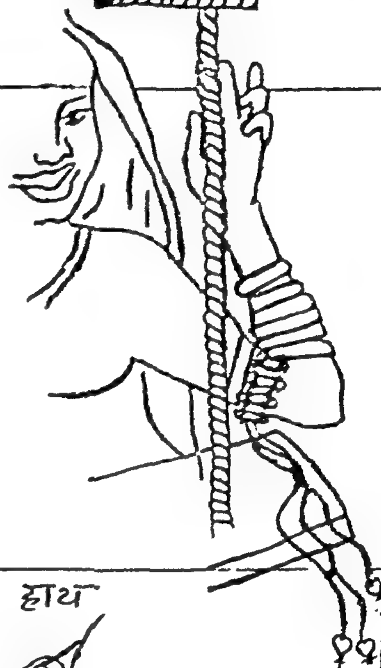

अंगूठी

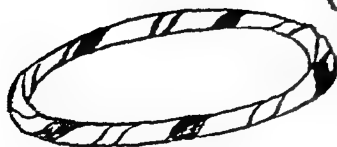

ऊंगली

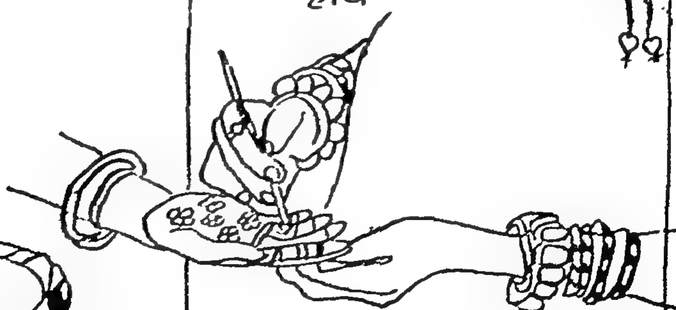

चूड़ा


भुजा


बाजू लूम्ब

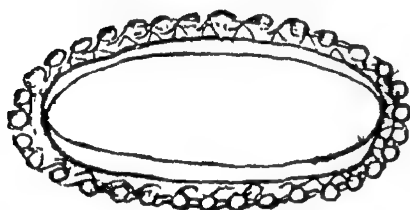

बांह


बंगड़ी

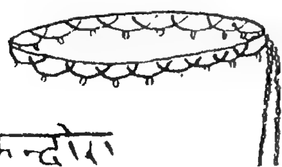

हाथ


चूंपा


दांत

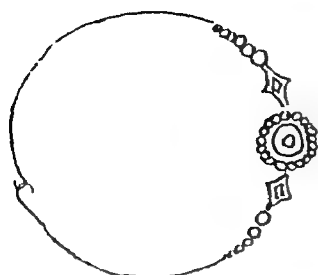

गोखरू


कलाई


कन्दोरा


कमर

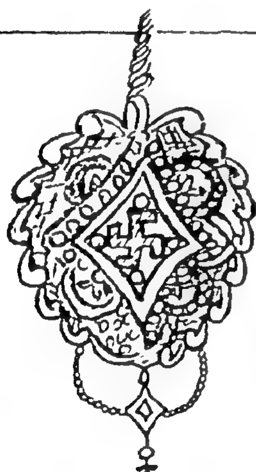
नथ



नाक



टीका



मांग



कंठी



गला

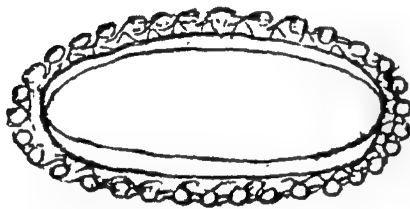


चूंपा

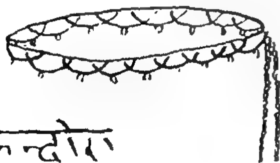


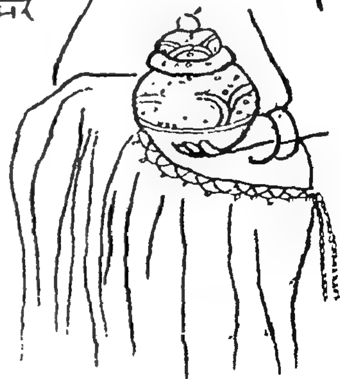


गोखरू









परिशिष्ट

कः हाड़ौती लोकगीतों का वर्गीकृत संकलन

देवी-देवताओं की प्रार्थना

व

धार्मिक गीत

गणेशजी (१)

नाचो म्हांरा गणपत, नाचेगा पगां घूघरा बाजेगा,
गनपतिया तो म्हांरा नाचेगा, पगां घूघरा वाजेगा।
ऊबा ऊबा सायब लाल जी अरज करे,
पांच लाडू पगा धरे।
ऊबा ऊबा माई बेटा अरज करे,
गोद जडूल्यो लिया फिरे।
कायन को तो थां के झुगलो छै,
कायन की थां के टोपी छै।
मलमल को तो म्हांके झुगलो छै
रेशम की तो म्हांके टोपी छै।

गणेशजी (२)

कोटा के छाजा पे नौवत वाजे,
नौवत वाजे, नगाड़ा भी वाजे—
तो पड़े छै नगाड़ा री धूम गजानन्द,
कोटा के छाजा पे नौवत वाजे।
चालो गजानन्द ज्योषी के चालां,
आछा आछा सावा दिखावां गजानन
कोटा के छाजा पे नौवत वाजे।
आछा आछा मेवा लावां गजानन,
कोटा के छाजा पे नौवत वाजे।
चालो गजानन बजाजां के चालां,
आछा आछा कपड़ा लावां गजानन,
कोटा का छाजा पे नौवत वाजे।
चालो गजानन सोनी के चालां,
आछा आछा गेना घड़ावां गजानन—
जड़ावा गजानन. कोटा के छाजा पे नौवत वाजे।
चालां गजानन ढोली के चालां,
आछा आछा ढोल घुरावां गजानन,

कोटा के छाज पे नौबत बाजे ।
चालो गजानन सकियां के चालां,
आछा आछा मंगल गावां गजानन,
कोटा के छाजा पे नौबत बाजे ।
चालो गजानन कुम्हारां के चालां
आछा आछा कुम्भ कलस ल्यावां गजानन,
कोटा के छाजा पे नौबत बाजे ।
चलो गजानन साजनिया के चालां
आछी आछी बनड़ी ल्यावां गजानन,
कोटा के छाजा पे नौबत बाजे ।

गणेशजी (३)

म्हांरे घर अवध विहारी जी को ब्याव,
गणपति आया ईसर म्हांरे घर ।
घर घर चौकी बिठाय सनान कराये,
गणपति आया ईसर म्हांरे घर ।
चवा चंदन और अलगजा
केसर खोल चढ़ाये,
गणपति आया ईसर म्हांरे घर ।
धूप दीप नेवेद आरती
लडुवारा भोग लगाये,

गणेशजी (४)

गढ्ड़ा रणत भंवर थे आवो जी वनायक आवोजी वनायक
करो अण चीती वरदड़ी ओरा की वरद जण जावोजी।
वनायक घर डेसर ब्रह्मा जी महादेवजी के आवज्यो
सारा देवता के घर जावज्यो !
सोना के माल पे जण लाग्रो जी वनायक
मसरू के रात घोल भण जावो जी।

महादेवजी

भोला जी भण्डारी थां के दरसन आई जी
दरसन आई जी शिव परसन आई जी
भोला जी भण्डारी थां के दरसन आई जी
अब तो पलक उघाड़ो महादेव जी
अब तो दरसन देवो सदा शिवजी
कानां ने दरसन देवो सदा शिवजी
कानां ने झाला घड़ावो सदा शिवजी
माथा ने भंवर घड़ावो सदा शिवजी
रखड़ी की छत्र न्यारी महादेव जी
झुटणां रतन घड़ाओ सदा शिवजी,
माथा ने भंवर घड़ाओ सदा शिवजी
मुखड़ा ने वेसर लाओ सदा शिवजी
हिवड़ा ने हांस घड़ाओ सदा शिवजी
मोती रा फेर गठाओ महादेव जी
वैयां ने चुड़लो चिराओ सदा शिवजी
गजरा रतन जड़ाव महादेव जी
भोला जी भण्डारी थां के दरसन आई जी।

देवी-देवता

माथां ने भंवरज, कानां ने झालज, मुखड़ा ने वेसर, हाथा ने चूड़लो,
पगल्या ने पायल, अंगुलिया ने बिछिया लाओणी।
गजानंद रखड़ी, झूठना, मोती, गजरा, घुघरा, अनवट लावज्यो जी।
पहाड़ फोड़ उंकार विराजे श्री जगनाथ छै स्वामी
मिन्दर में सत्यनारायण विराजे श्री बदरीनाथ स्वामी !
गजानन्द करो आणंद कारी पहाड़ फोड़ बदरीनाथ विराजे
श्री चार-भुजा-धारी !

भैरूंजी

राय चन्दन को भैरूंजी रूंख कटादूं,
कांई बैठर घड़ादूं कंवर जी को पालनो।
खाती को बेटोजी भैरूंजी घणां मो अमानो,
कांई परतन घड़ियो कंवरजी को पालनो,
आधी का मल में जी भैरूंजी पीड़ चलाई,
कांई ऊंकी मारूणीं जी दौड़ी आई देव के,
अब के तो हुलो जी भैरूंजी बावड़ जाज्यो,
कांई परतन घड़ियो कंवर जी को पालनो,
आया तो सामां भैरूंजी मोर पपैया,
कांई करेगा जी वन की कोयली,
थेई थेई नाचे जी भैरूंजी मोर पपैया,
कांई सबद सुनावे वन की कोयली,
कांई चुगेगा जी भैरूंजी मोर पपैया,
कांई चुगेगी जी वन की कोयली,
दाल चुगेगी जी भैरूंजी मोर पपैया.
दूध पिवेगी वन की कोयली।
सामां तो सामां भैरूंजी को म्हेल चुनायूं।
अध विच डालूं कंवर जी को पालनो,
अरती तो फरती जी भैरूंजी दऊंगी मचोलो
काम करूं छूं जी चित म्हांरो पालने
राय चन्दन को भैरूंजी रूंख कटादूं
कांई बैठर घड़ादूं कंवर जी को पालनो।

वेसर सारू मोतीड़ा भी सोवे,
काना सारू झालस भी सोवे,
झालस सारू झुटणा भी सोवे,
माथा सारू भंवर भी सोवे,
भंवर सारू रखड़ी भी सोवे,
लिलवट सारू टीका भी सोवे,
टीको सारू बिन्दी भी सोवे,
नैना सारू सुरमो भी सोवे,
मुखड़ा सारू विड़ला भी सोवे,
दांता सारू मिस्सी भी सोवे,
मिस्सी सारू चोपर भी सोवे,
पगल्या सारू आरत्यो भी सोवे,
माथ सारू मेंदो भी सोवे,
माथ सारू चोटी भी सोवे,
चोटी सारू फुंदा भी सोवे,
देखो अन्नपूरण माता मुजरा,
हो देवी खेले छी अंगना,
अंगना खेले छी अंगना,
अंगना खेले झाला रावजी के अंगना,
अंगना नैना लाल जी के अंगना,
अंगना भाई बेटो के अंगना,
हो देवी घड़क भरचा चंदना,
सासू वह लीपेरिया अंगना,
दौर जिठ्यांणा पूर दिया अंगना,
देखो अनपूरण माता का मुजरा,
हो देवी खेले छे अंगना।

सती-माता

अपणी सती के भंवर सोवे,
अपणी सती के झालर सोवे,
रखड़ीं झुटणाँ वेग मुलावो वीराजी.
सायव को डोलो चंदण नीचे ऊबो,
अपणी सती के हांसज सोवे,
मोती रा दुलरी, पाट पुवाओ वीराजी,
सायव को डोलो चंदण नीचे ऊबो,
अपनी सती के गजरा सोवे,

अपणी सती के चुड़ला भी सोवे,
अपणी सती के पटोली भी सोवे,
गजरा की ढील न होय हो वीराजी,
अपणी सती के पायल सोवे,
अपणी सती के बिछिया सोवे,
अनवट घुघरा घमस दिवाओ वीराजी,
अपणी सती के टीकी मेंदी सोवे,
सुरमा, बिड़ला वेग मँगाओ वीराजी,
अपणी सती के आरस्यो भी सोवे,
सोंसर गजरा वेग मँगाओ वीराजी,
सायब को डोलो चन्दण नीचे ऊबो,
चन्दण नीचे ऊबो बागां नीचे ऊबो,
सायब को डोलो चन्दन नीचे ऊबो ।

श्री सत्यनारायण

जगमग सहरा, जगमग कुंडल जगमग थांकी सूरत जी ।
सतनारायण को मंदर सुवरण को, वांके कंचण जड़े छै किवाड़ जी ।
जगमग लड़िया, जगमग सोसर, जगमग घड़िया, जगमग थां की सूरतजी
जगमग जामां, जगमग पगिया, जगमग थां की सूरत जी,
श्री सतनारायणजी को मन्दर सुवरण को जी जगमग थां की सूरतजी।

हनुमानजी

बजरंगी जी मनस्या पूरण करो हनुमान जती
दशरथ जी का और रामचन्दर जी का और लछमन जी का और
चारों मायां का, कारज सिद करो हनुमान जती
थां के राजपाट वांके दूद पूत रक्षा करो हनुमान जती
बजरंगी जी मनस्या पूरण करो हनुमान जती
बजरंगी जी कारज सिद करो हनुमान जती
सास बहुओं का और छोटी लाडयाँ का
चुड़ला अपर करो हनुमान जती
वांके चुड़ले चुन्दर वांके दूद पूत
वांके राजपाट रक्षा करो हनुमान जती ।

पर्व और उत्सव सम्बन्धी गीत

गणगौर (१)

म्हांरा माथा भरवज गड़ायो होती रे
म्हांरो रखड़ी रतन जड़ायी होती रे
चली आयी गनगोर लपेटा खाती चली आई गनगोर जोवन माती

तीखा तीखा नैन गुल गुन सुरमा
पतली कमर नौरंग छाती ।
म्हांरा मुखड़ा ने वेसर लाया होता अणवट कारे दबाया होता रे
चली आयी गनगौर लपेटा खाती चली आयी गनगौर जोबन माती ।
तीखा तीखा नैन गुल गुन सुरमा
पतली कमर नौरंग छाती ।
म्हांरा हाथा चूड़लो लाया होता रे
म्हारी अँगली ने बीटी लाया होता रे,
चली आयी गनगौर लपेटा खाती चली आयी गनगौर जोबन माती ।
तीखा तीखा गुल गुल सुरमा
पतली कमर नौरंग छाती ।
म्हांरा पायां ने पायल लाया होता रे
म्हांरी अंगुली बिछिया लाया होता रे
चली आयी गनगौर लपेटा खाती चली आई गनगौर जोबन माती
तीखा तीखा नेन गुल गुल सुरमा
पतली कमर नौरंग छाती ।

गणगौर (२)

माथा ने भंवर घड़ाव जो जी,
रखड़ी रतन जड़ाय गोरी का सायवा जी ।
या रत मानो जी गणगौर
काना ने झाल घड़ावजो जी झुटणा झोल दिवाय ।
मुघड़ा ने वेसर घड़ावजो जी मोती रा फेर गंड़ाय ।
गोरी का सायवा जी ।
हिवड़ा ने हांस घड़ाव जो जी तमन्यो पाट पुवाय,
वइयां ने चुडलों चिराव जो जी, गजरा रतन जड़ाय,
कड़चा ने पटोली सिवाव जो जी, केसरया कोर दिवाय
धन रा सायवा जी ।
पगल्या ने पायल घड़ाव जो जी, घुमरा घमण दिवाय
गोरी का सायवा जी ।
अंगल्या ने बिछिया घड़ाव जो जी अनवट रतन जड़ाय,
गौरी का सायवा जी, धन रा सायवा जी ।
मानों छो तो मान लो जी, पाछे आई आखातीज ।
थांको तो म्हांको जिवड़ो एक छेजी ज्यूं चकरी में रेसम डोर,
थां को हयायां को बैठणों जी, म्हांकी सहेल्यां रो साथ
गौरी का सायवा जी, धन रा सायवा जी ।

या रत मानो जी गणगौर
नजर भर चौवगो जी,
म्हांको लजाणूं सुभाव, धन रा सायबा जी,
या रत मानो जी गणगौर ।

गणगौर (३)

गौरी गणगौर माता खोल किवाड़ी
बाहर ऊवी थारी पूजन बारी
पूजन बारी, सुहागण काई माँगे ।
म्हें माँगा छाँ हल हल कूंडा छाछ मथनिया
जल जल जातो बाबुल माँगा, राधा सी भौजाई
फुंस उड़ावरण फूफो माँगा माँगा जोवन भुआ
काजलियो बेनोई माँगा माँगा सदा सुहागण बेना
लछभण सरीका देबर माँगा श्री किशन भरतारा ।
कद मरस्या, कद कुख में आस्यां
कदे कुवांरा होस्यां
कद मैं खल्ला चोली पेना, कद बीरा की जोड़ी ।

तीज

म्हांरा माथा ने भंवर गड़ाय केसरिया रखड़ी रबन जड़ाय
तीज सुराया घर आवें ।
म्हांरा काना में झाल गड़ावो केसरिया जुटण रखड़ी रतन जुड़ाय
तीज सुराया घर आवे ।
म्हांरे मुखड़ा ने बेसर लावजो मोतीड़ा फेर गड़ाय
साहिबारी तीज सुराये घर आवे ।
म्हांरा हिवड़ा ने दास गड़ाय केसरियां दलडी पांच पचास
साहिवारी तीज सुराये धर आवे ।
म्हांरे वइयां ने गजरा लावजो गजरा खोल दबाय
साहिवा जी तीज सुराया घर आवे ।
म्हांरे पगलियां ने पायल लावजो डोला साहिवा जी
तीज सुराया घर आवे ।
म्हांरे अंगुलियां वे बिछिया लावे अणवट फूल दवाय
साहिवा री तीज सुराया घर जाये ।

हरियाली तीज

राजा मार माथ न भंवर न घड़ाओ
राज म्हांरा कानां न झालज घड़ाओ
रखड़ी लेते आज्यो जी म्हांका सरदार
गुटया लेता आज्यो जी म्हांका सरदार

गोरी म्हांका नहीं छः चवंदी दाख
नहीं छः जो वड़ी तीज्या की खुराक
राजा मार यां ही तो पदारो सरदार
यों ही गुण माना जी म्हांका सरदार।
राजा म्हांरा सिर पर स्यालू लाग्रो जी
राजा म्हांर हाथ म चूड़लो लाग्रो जी
गजरा लेता आज्यो जी म्हांका भरतार
गोटो लेता आज्यो जी म्हांका सरदार
गोरी म्हांक नहीं छः जी वड़ी चवंदी दाख
नहीं छः जी वड़ी तीज्यां की खुराक
राजा म्हांक मांही तो पदारो सरदार
यो ही गुण माना जी म्हांका भरतार।

होली

म्हांने जी ढोला रखड़ी घढ़ावजो र तो रखड़ी री चुनी में म्हांने
होली मलवा दो जी, होली आई जी।
म्हांने जी ढोला झुटणां घड़ादो जी, झुठणां रे वीच म्हांने
होली मलवा दो जी, होली आई जी।
म्हांने ढोला गजरा घड़ादो जी तो गजरां र वीच म्हांने ......।
होली मलवा दो जी होली आई जी।
म्हांने जी ढोला पायल घड़ादो जी तो पायल र वीच म्हांने
होली मलवा दो जी, होली आई जी।

गंगोज

राधा राणी य नार लो न झखोला ठंड़ा नीर को।
पहलो झखोलो म्हांरा सुसरा को जी, म्हांने वर संभलाया
घर वार लो न झखोला ठंड़ा नीर को।
दूजो झखोलो म्हांरा वाप को वर लडाया म्हांक लाड़,
घर वार लो न झखोलो ठंड़ा नीर को।
राधाराणी य नार लो न झखोलो ठंड़ा नीर को।
अगणां झखोलो म्हांरी सासू को म्हांने वर संभलाया
घर वार लो न झखोलो ठंड़ा नीर को।
चौथो झखोलो म्हांरी माई को वर लडाया म्हांका लाड
घर वार लो न झखोलो ठंड़ा नीर को।
राधाराणी य नार लो न झखोलो ठँड़ा नीर को
पांचवां झखोलो म्हांरा जेठ को वो दियो म्हांने आधो,
धन वांट लो न झखोलो ठंड़ा नीर को।
छठो झखोलो म्हांरा राजन को वो र म्हांने सव सुख दिया छ दिखाय

घर बार लो न झखोलो ठंडा नीर को ।
सातवां झखोलो म्हांरा भाई को वो पहनायो म्हांने बेस
घर बार लो न झखोलो ठंडा नीर को ।
राधाराणीय नार लो न झखोलो ठंडा नीर को ।

स्मृति-गीत—बधावा (दवात-पूजा के अवसर पर गाया जाता है ।)

ओवरियो गणरायो जी म्हांरी दूबात्यां पर, छायोजी मरवो मोगरो ।
पांच बधावा जी म्हांरे आईया, पांचां की न्यारी न्यारी मास,
ओवरियो गरणायो जी म्हांरी………।
पेलो बधावो जी म्हांरा बाप को, दूजो सुसराजी दरबार,
अगल्यो बधावो जी म्हारा वीर को, चौथो जेठ दरबार,
पांचमो बधावोजी धनरा म्हेल को, पौढ़े भोली बाई सा का वीर
ओवरियो गरणायो जी, म्हांरी…… ……।
छट्टो बधावो जी धन री कूंख को, जाया छै लाड़्यां ने पूत,
सातमो बधावो जी घबारा चौक को, बैठे म्हांरा देवर जेठ ।
ओवरियो गरणायो जी, म्हांरी ………।

एकादशी

रामजी झरण भरण गंगा बेव, रामजी पापीड़ा ऊबा बार,
बरत बड़ो जी एकादसी ।
थने रामजो बुलावे र पापिया, थारा पापा को अरथ बताव,
वरत बड़ो जी एकादसी ।
म्हंने मातापिता न समझाइयो, म्हंनेन करचो सू परणाय,
वरत वड़ो जी एफादशी ।
म्हंने कुवां खुदायान वावड़ी, म्हंनेन गांधी सरवर पाल,
बरत बड़ो जी एकादसी ।
म्हंने बहण परणाईव भाणिजां, न दीन्हों भाणीजा को भात,
बरत बड़ो जी एकादसी ।

फागण का गीत

ढप वाज्योर भंवर अलवेल्या को ढप वाज्योर
ढपकीर गूंज सूणी र रोटो पोती फूटगीर पौंवणी,
टोट पयोर चल्यो तो वलगार दोनों हाथ म्हांरा,
ढप वाज्योर भंवर अलवेल्या को ढप वाज्योर ।
फागण आयो फागणयो रंगादो रसिया फागण आयो
चंग वाज्योर
ढप वाज्योर अलवेल्या को ढप वाज्योर ।

संस्कार सम्बन्धी गीत

पुत्र-जन्म—सोहर

थांकी तो दाई पिया कदियन आवे
थांकी तो माता कदियन आवे
म्हांरा पीयरिया सू जायर दाई लावो
जी थें जाओ पिया ।
लाल पलंग पर गेरी पीड़ा आवे,
चन्द्र वदन वां की सांवरी सूरत कुमलावे
जी थें जाओ पिया ।
लाल पलंग पर गेरी पीड़ा आवे,
थाकी तो भाभी पिया कदियन आवे,
म्हाके पीयरिये से जायर भावज को लावो,
जी थें जाओ पिया ।
म्हांके पीयरिया से जायर वेण्या लाओ
जी थें जाओ पिया ।
लाल पलंग पर गेरी पीड़ा आवे
गेरी पीड़ा आवे गुलावी पीड़ा आवे
सावरी सूरत वां की पतली कमर लचकावे
जी तुम जाओ पिया ।

जच्चा

आज तो नौवत वाजे दशरत के दुआर पे
आज तो यां नगारा वाजे दशरत के दुआर पे
भीतर सूं सासूजी वोल ललुता झलाय के
भीतर सूं सुसराजी वोल्या दरव लुटाय के
आज तो ....
भीतर सूं भाभी जी वोल्या चरवा चढ़ाय के

बारे सूं जेठजी बोल्या धण लुटाय के
आज तो·······
भीतर सूँ देराणी बोल्या पलकाँ बिछाय के
बारे सूँ देवरजी बोल्या बाजा बजाय के
आज तो·······
भीतर सूँ बाईसा बोल्या सतिया पुराय के
बारे सूँ नणदोई सा बोल्या मिठाई बँटवाय के।
आज तो·······

आठवां का गीत

पेलो जो मास जच्चा धन लाग्यो
दूजो जो मास बहू धन लाग्यो
थूँकथले मन जाय भंवर केला लावज्यो जी।
आमूड़े मन जाय, भंवर केला लावज्यो जी।
अगल्यो जो मास गौरी धन लाग्यो
चौथो जो मास गौरी धन लाग्यो
नींबू नारंगी मन जाय, भंवर केला लावज्यो जी।
दईबड़ा र मन जाय भंवर केला लावज्यो जी।
पंचमो जो मास गौरी धन लाग्यो
छट्ठो जो मास बहू धन लाग्यो
खीर खांड मन जाय. राब दही मन जाय
भंवर केला लावज्यो जी।
सातवों जो मास गौरी धन लाग्यो
आठवों जो मास बहू धन लाग्यो
घेवरिये मन जाय, घाट चूंदड़ मन जाय,
भंवर केला लावज्यो जी।
नोमों जो मास गौरी धन लाग्यो
ओवरिये मन जाय, हालरिये मन जाय
भंवर केला लावज्यो जी।

मुंडन (जडुले) के गीत

झालर मेरी ओ लाओ, झालर मेरी ओ लाओ।
झालर को हे सोहलो
ऊँचा तो देऊँ माता बेठणां ओ माई, दूदा पखारूँगी पांय
भुआ बाई चाली है रिसावती ओ माय
लीनी छै सासरिया की वाट
भुवा बाई ने लाओ मनाय के, ओ बाई,

चीर ओढ़ घर जाय
जडुल्यां झेल घर जाय
नाऊ का ने लावो बाई मनाय, छप्पन छुरा ले घर आय
जडुल्यां उतारचा घर आय, नेग लेर घर जाय
झालर मेरी ओ लाग्रो, झालर मेरी ओ लाग्रो
झालर को है सोहेला।

यज्ञोपवीत-गीत

लालाखां (कहां) रग्यो छो
खां र लगाई अतनी देर
जनेऊ वेला टल रही।
गरुजी मूं रग्यो छो वावा जी की पोल
लावू मायड़ न दीदो वसणो
लाला वैठो र राइ दलीचा राल
जीमो न मीठी लापसी।

तिलक गीत

म्हूँ थांने बूझूं म्हांरा वनका सोवटड़ा कुण ने थांरी चोंच हीरा जड़ी।
मां की जाई म्हांरी बेण कोयलड़ी वाने म्हांरी चोंच मोत्यां जड़ी।
म्हूँ थांने बूझूं दस वीसां की जाई कुण थांरी मांग मोत्यां भरी।
सासू की तो जाई म्हांरी नणद कोयलड़ी व्हाने म्हांरी मांग मोत्यां भरी।
म्हूँ थांने बूझूं जी भीमसिंह जी का व्रजराजसिंहजी कुण थां को तिलक हीरा जड़चो।
मां की तो जाई म्हांरी बेण भंवर बाई व्हाने म्हांरो तिलक हीरा जड़चो।
म्हूँ थांने बूझूं दस वीसां की दार (जठानी) सासू बहू कुण थांकी मांग मोत्यां भरी।
सासू की जाई म्हांरी नणद बाईसा व्हाने म्हांरी मांग मोत्यां भरी।

विवाह (१)

बन्नी के बावाजी ने ओढ़नी रंगाई
बन्नी के दादा जी ने ओढ़नी रंगाई
तो म्हांरो चित ओढ़नी में जाय
री नहीं ओढूं दुशाला।
थांरे दुशाला में वास सुगंधी,
तो म्हांरो हरदी भरो अंग
री नहीं ओढूं दुशाला।
लाड़ी का काकाजी ने ओढ़नी रंगाई

लाड़ी का बीरा जी ने ओढ़नी रंगाई
लाड़ी का फूँफा जी ने ओढ़नी रंगाई
तो म्हांरो चित ओढ़नी में जाय, री नहीं ओढ़ूँ दुशाला।
थांरे दुशाला में बास सुगंधी, तो म्हांरा हरदी भरा अंग
री नहीं ओढ़ूँ दुशाला।
लाड़ी का नाना जी ने ओढ़नी रंगाई
तो म्हांरो चित ओढ़नी में जाय,
री नहीं ओढ़ूँ दुशाला।
थांरे दुशाला में बांस सुगंधी,
तो म्हांरो हरदी भरो अंग,
री नहीं ओढ़ूँ दुशाला।

विवाह (२)

राइवर सूता छै सुख भर नींद जगाया जाग्या नहीं जी
वां रा बाबाजी जगावा जाय, नवल बना क्यूँ सूताजी
वां रा दादा जी जगावा जाय, चतर बनां क्यूँ सूताजी
राजा रामचंदर जी री घोड़ी आपणें घर ले आवो जी
सिरी कृष्ण चंदर जी री घोड़ी आपणें घर ले आवो जी
घोड़ी नीरांगा नागर पान, कचोटा दूद को जी
घोड़ी ने तुर्रा री झरप उड़ाव, लजरू में लाज घणी!
घोड़ी ने दाल चना री चवाय, बलवन्ती में बल घणों जी,
राइवर सूना छै सुख भर नींद जगाया जाग्या नहीं जी
वां रा काका जगावां जाय, नवल बना क्यूँ सूता जी
वां रा वीरा जी जगावा जाय, चतर बना क्यूँ सूता जी
वां रा जीजाजी जगावा जाय चतर बन्ना क्यूँ सूता जी।

जंवाई के गीत

जंवाई जी थे तो सब रंग वांधो जी
वंदेज ल्हेरियो तो मत वांध जो जी
ल्हेरियो वांधोगा तो दूखे राज रो सीस
वाई रो पीतो आकरो जी
जंवाई जी थे तो सब रस चाखो जी
रसाल जामूं तो मत चाख जो जी।
जामूँ चाखोगा तो विगड़े राज री जीभ
वाई रो पीतो आकरो जी
जंवाई जी थे तो सब रस चाखो जी
रसाल नींबू तो मत चूँख जो जी

नींबू चूँखोगा तो दूखे राज री आंख
वाई रो पीतो आकरो जी ।

वीरा

चालो म्हांरा वलमा उतावला रे
म्हांरी मा की जाई न्हांरे वाट ।
चालो म्हांरा धोल्या उतावला रे
म्हांरी जामण जाई जोवे वाट ।
गाड़ी तो रलकी रेत में रे वीरा
हो रही गगना गोट
वलधां रा चमक्या सींगड़ा रे,
म्हांरा वीरा जी री पचरंग पाग
भावज वाई रो चमक्यो चूड़लो रे
म्हांरा भतीजा रा झुगल्या टोप ।

मृत्यु गीत

थे तो चालो न सगी जी मसाण
सोवण न सींढ़ी त्यार
कांध देवा न बेटो त्यार
हांडी लेवण न पोतो त्यार
थांने ढोक देवण न वहू त्यार
थे तो चालो न सगी जी मसाण ।

प्रकृति व शृंगार सम्बन्धी गीत

प्रकृति

रात ठंडी चांदनी सेजा पे लेट जाऊँ रे
आली जा में (पति के साथ) नीदड़ली में थोड़ी सोऊँ रे
कागज लिख मेलूं छैला मोड़ो वेगो आजे
काजलियो रंगाय घोड़ी म्हारे ला जे रे
चँग को घमोड़ो मने पाणी भरती सुणयो रे
फोड़ जाऊँ रे वेवड़ो, उड़ जाऊँ थांरी लार चँग धीरो रे
चँग को घमोड़ो मन रोटी पोती सुणयो रे
फोड़ जाऊँ रे पांवड़ी उड़ जाऊँ थांरी लार चँग धीरो रे
पूत पालणें छोड़यो मवे दूध खड़ाया ओटयो रे
पति क्यूं भरमायो मने दौड़ी आई रे चँग धीरो रे

पक्षी (काग)

उड़ उड़ जारे कागला प्रीतम कद आवगा रे
म्हंने वरस सोलवों लाग्यो, तन वेरी री ज्याई गरणायो

बाण मदन को लाग्यो जोबन रीतो जावे रे
होई अंग अंग में भार पाक्या सजनवां आमां अनार
मूँ तो रह जाऊँ मन मार मरोड़ा खाय उबासी रे
करे भाइल्यां घणी ठठोली, म्हांरे हीरदा में लागे गोली
केरमा पाकी घणी रसीली रसड़ो सूखो जावे रे
दिन तो बाय करता जाव राता तारा गणत जाव
साजन थे कठी भरम्या लगा मरूँ मूं फांसी रे

सावण गीत

सावण री मस्त घटा या उठबा लागी रे
सोला बरस री नार पिया न लुटवा लागी रे।
गोरी रो जोबन ठेलमठेल जस्यां पथ दिवा न तेल
या सुई पड़ी छै नंगी इमें तागो जावे जंगी,
म्हांरी छात्यां पाकी नारंगी पिचकारी छूटवा लागी रे।
म्हूँ नार बण रही छूँ भोली, म्हांरा बा में ऐरी बोली,
म्हांरे पाक्या आम, चमेली डाली टुटवा लागी रे।

पक्षी (कबूतरी)

कबुतरी म्हांरा भंवर न मिला दिजे रे
कबुतरी चूँच प थारे लिख दूँ आलमू
थांरा पारत्यां म सात सलाम।
आयो जाल जंजाल
कबुतरी म्हूं तो सूती हो रंग म्हेल में
सासुजी थांको जायो सपूत
आयो आयो वरणों म्हांरो श्याम।
चालो री भाइलियां चालां आपण सरवर री पाल
घुड़लो चढ्या पीव आवगा म्हांरा राज।

वर्षा गीत

वर्षा गीत

पांच पाना जी वड़लो चौपियो वोई हो गवो घेर घमेर,
म्हांरा लोभी अब घर आवो बरखा लाग रही,
अब घर आवो झुक रह्यो मेल गया थां जी वाल
नीमड़ी हो गई घेर घमेर,
म्हांरा लोभी घर आओ ।
जी वरखा लग रही अब घर आवो सांवरा,
झुक रह्यो अब घर आओ चंता लग रही,
मेल गया थां जी वाल केरड़ां हो गई वधिल्यारी,
म्हांरा लोभी घर आओ ।
सावण झुक रयो चंता लग रही
मेल गया थां जी वाल डावड़ी हो गई जोध जवान,
अब घर आवो सावण झुक रह्यो
म्हांरा लोभी घर आओ ।
भाभी आपणीं ने काजल भेज्या माउणीं ने कागज सोकल्य
तांकी साध पुरवा घर आओ
म्हांरा लोभी घर आओ ।

झूले का गीत

होजी आवणां सरवरिया रो पाल आमा दोय आमली
म्हांरा राज आमां दोय आमली ।
होजी आमा न दोय कटार राखूं दोय आमली म्हांरा
राज, होजी रेशम डोर मिलाय हिंडोलो डलवाज्यो
म्हाका राज हींडोल डलवाज्यो
होजी घणीला हाल जो लोगड़ लावला सायबा
म्हांका राज हींडोलो डलवाज्यो ।
होजी हिंडली घर भर की छोरयां देलर सायबा म्हांका राज
होजी खाया मचौला दो चार नंगर पड़या म्हांका राज ।
होजी देख्या छै पल्लो उघाड़ वालूली कीडया घुस बैठी म्हांरा राज
होजी अबको तो वोलों प्यारी नार नाराजी म्हां पे मत करो
म्हांरा राज ।

श्रृंगार गीत (१)

सूरज उगे पहाड़ म पुर चंदा उगे आकास,
सज्जन वस्या परदेस,
सजन बना कस्यां जीऊंगी,
कन्त बना कस्यां जीऊंगी ।

सूरज थांने पूजस्यां भर कंचन का थार,
पूज्या सूँ ही पाइया भर जोड़ी भरतार।
सजन पधारिया नौकरी कांधे धर बन्दूक,
क तो लारां ले चलो क कर चालो टूक
सजन बना कस्यां जीऊँगो।
चुड़लो पहरूँ दांत को टीपा जड़ी पचास
सूरत दिखाओ चूड़लो प बैठी नरखूँ हाथ
कन्त बना कस्यां जीऊँगो
सजन बना कस्या जीऊँगो।
प्रीत करो असी करो जसी लोटा-डोर
गलो फँसाव आपणो लाव नीर झकोल।

शृँगार गीत (२)

म्हांने जैपुर रो थे लूगड़ो उड़ा दो सजना,
हिलमिल रंग खेलां।
आख्यां का सतारा—वाजू,
लागे घणा ही प्यारा म्हांरे,
सुसराजी न पागड़ी मंगवा दो सजना,
हिलमिल रंग खेलां।
म्हांने मती करो हेरान,
म्हांने मती करो वरबाद,
म्हांने जयपुर रो थें लूगड़ो उड़ा दो सजना
हिलमिल रंग खेलां।

नदी

अलल खलल नदी बह,
यों पाणी खा जावे रे,
आधो जाए आड़चां वाड़चां, आधो ईसर न्हावे रे,
ईसरजी रा मोरचां छूटचां मोचकड़ियां मचकावे रे,
मोचकड़ियां रा मोती टूटचा, हेर ढूँढ़ के लावे रे,
ईसर का कान पड़ावे रे।
म्हें तो ई गौरां वरजा स्यारे वीरा,
गूँगरी वीरा
करड कसार मांग्या री रह रे।
अलल खलल नदी वह
यों पाणी खा जावे रे।

विविध गीत

बधावा गीत

ई कलयुग में दोई भला,
इक माई दूजी सास ।
माय ने जण जनम दियो
सासू ने दियो घर वार ।
ई कलयुग में दोई भला,
इक सुसरा जी दुजा बाप,
दादाजी दरब लुटाइयो,
सुसराजी लाया दल जोड़ ।
ई कलयुग में दोई भला,
इक राजन दूजा वीर ।
वीर उड़ावे वाला चूँदड़ी,
सायब जी रो अवछल राज ।
सायब जीरो दूनो डोडो राज
हालो बागां चालो जी कोई
परण पधारो मोती म्हेल में ।

फसल बोते समय का गाना

ओरा रे वहरिया हल कुली म्हांरा जेठजी नचीता सूता ।
थें तो कहो न भाभी जी म्हारा ज्येठ सूँ
वहकायां का लावां हल कुली कायां का लावां वेल
कायां रो लावां बीज बजोलो ।
थें तो कहो न भाभी जी म्हांका जेठ सूँ
म्हांरो हँसलो मेलो गेण
आधा रा लाओ बीज बजोलो आधा रा लाओ वेल,
आधा रा लाओ हल कुली,
जद ये डूँडणा वावण लाग्या आई छः सुसदा सा कानः
जद ओ अनाज बाटन लाग्या पचास्या री आरन पार,
जद ओ अनाज लावे लाग्या गाड़ी री आर न पार,
जद ओ अनाज गावा लाग्या माण्यां री आर न पार,
जद ओ अनाज वरसावा लाग्या राल्या री आर न पार,
जद ओ अनाज लावे लाग्या गाड़ी को आर न पार,
जद ओ अनाज नपज्या लाग्या भरिया छः कृशण भंडार ।
थें तो कहो न भाभी जी म्हांरा जेठ सूँ,
म्हांने हसलो दो घड़वाय ।
वहू नुई ज्वार रो खीचड़ो नुई तिलरिया रो तेल
लाओ पीओ मोज्यां माणों

घोड़ी

तू तो चाल म्हांरी लीलड़ी, बाबाजी, दादाजी, काकाजी घरां चाल
म्हांसे कोई कहो महाराज म्हांरो घरां घरां में लाड़ घरा चाल
राइवर भीमे खांड र भात घोड़ी चाबे चणा की दाल
राइवर चाले छै तू चट चाल म्हांने होवे छै अबार
तू तो चाल म्हांरी लीलड़ी,…………

अगवानी का गीत

म्हें अगवानी में आया,
म्हें बना सोना की झालर लाया,
रूपा रो डंको लाया,
म्हें बना मिलनी करवा आया।
म्हें बना लाड़ा लाड़ी लाया,
म्हें बना कलश बेवड़ा लाया,
म्हें तो मिलनी करवा आया,
म्हें बना मिलनी करवा आया।

पहेलियाँ

पीलो पपीहवो पीली चांच को घटल घटल रस लेय
भोला ब्याई जी एक घड़ी रस न भले तड़फ तड़फ जीव देव
भोला ब्याई जी चतुर फियालीं को फल को जी….

(दीपक)

काली देह दमका करेजी झोठियां पड़ी पचास
झोटी झोटी छांटलो जाको दूध मिठास
अन्तर कपटी छो जी बोलो अमरत बोल….

(सिघाड़ा)

रेत का तो खेत बनाओ जल की बना ओ गुल क्यारी
चांद सूरज की बेल बनाओ राम लगाओ हाली
चतुर फियाली को फल केदो जी….

(तरबूज)

हरिया जी सावन मादवा, हरिया जेठ असाढ़
हरि जी कन्हैया की फागड़ी ओव सुगन्धी वास
कहो थें कृष्णजी म्हांकी पारसी वांको अरथ बताय….

(मेंहदी)

बिना कड़छी बिन कड़छाल्यो बिन पाणी बिन आग
सुन्दर सीरो रांधियोजी सीरो बड़ो सवाद

(शहद)

संझा फूली, तारा ऊग्या,
उठो राणी बैठो राणी,
प्यो पाणी
झालर बाज, घड़ाव बाजी,
मुनी जी की मून छूटी,
मुनी बाबा राम राम ।

मेंढ़की

इन्दर राजा मेह बरसाय,
मेड़कनी न पाणी पाय ।
बरसूंगो बरसाऊंगो
गेहूँ चणां नपजाऊंगो,
ज्वार बाजरो बाहुंगो ।
ढोकला म ढोकलो,
मेह बरसेगो मोखलो,
आयो री बाबो परदेसी,
दमड़ी सेर बका देसी,
टके सेर बका देसी,
दमड़ी सेर बका देसी,
बाण्यां की छाती कुटाऊंगो ।
साल को घर सूखो जाय,
म्हांरो बेल तसायो जाय,
इन्दर राजा मेह बरसाय,
मेढ़कनी न पाणी पाय ।

विरह गीत

देखो न जोसी टीपणू
म्हारा बालम जी खद आवगा ।
आज न आया काल न आया
आयी पूनम की रात रे,
नवा नवा कंगणा तो लावो परदेश सूं
म्हांरा हिरदा म घणी उठी छः पीर
न मूं सूं रयो जाय अब
देखो न जोसी अब टीपणू
म्हारा बालमजी खद आवगा ।

माता जी (पशु-बलि का चित्रण)

परिशिष्ट

ख : सहायक संदर्भ ग्रन्थों की सूची

२९ भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण .... डॉ० भगवतशरण उपाध्याय
३० भाषा और समाज .... रामविलास शर्मा
३१ भोजपुरी ग्राम-गीत .... कृष्णदेव उपाध्याय
३२ भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन .... कृष्णदेव उपाध्याय
३३ महाभारत-मीमांसा .... चिंतामणि बिनायक वैद्य
३४ मारवाड़ी गीत .... निहालचंद वर्मा
३५ मार्क्सवाद .... यशपाल
३६ मालवी लोक-गीत—एक आलोचनात्मक अध्ययन .... डॉ० चिंतामणि उपाध्याय
३७ मैथिली लोकगीत .... अमरनाथ झा
३८ मैथिली लोक-साहित्य का अध्ययन .... डॉ० तेजनारायण
३९ रढियाली रात .... झवेरचंद मेघांणी
४० राजस्थानी भाषा .... सुनीतिकुमार चटर्जी
४१ राजस्थानी लोक-गीत .... सूर्यकरण पारीक व नरोत्तम स्वामी
४२ राम-चरित-मानस .... तुलसीदास
४३ लहर .... जयशंकर प्रसाद
४४ लोकायन .... डॉ० चिंतामणि उपाध्याय
४५ लोक और संगीत .... कोमल कोठारी
४६ लोक-साहित्य की भूमिका .... डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय
४७ वेद-रहस्य .... श्री अरविंद
४८ शिक्षा-शास्त्र .... डॉ० सीताराम जायसवाल
४९ संस्कृति के चार अध्याय .... रामधारीसिंह दिनकर
५० सांध्य गीत .... महादेवी वर्मा
५१ साहित्य और समाज .... विजयदान देथा
५२ साहित्य का मर्म .... आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी
५३ साहित्य, संगीत और कला .... कोमल कोठारी
५४ हमारा ग्राम-साहित्य .... रामनरेश त्रिपाठी
५५ हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण .... डॉ० किरणकुमारी गुप्ता
५६ हिन्दी महाकाव्यों में नारी चित्रण .... डॉ० श्यामसुन्दर व्यास
५७ हिन्दी साहित्य का इतिहास .... डॉ० हजारीप्रसादद्विवेदी
५८ हिन्दुस्थान की पुरानी सभ्यता .... डॉ० बेनी प्रसाद
५९ हिन्दुस्थान की समस्याएँ .... स्व० पं० जवाहरलाल नेहरू

आंग्ल ग्रन्थों की सूची

1. Ancient Legends and ballads of Hindusthan .... Toru Dutt
2. An Introduction to Anthropology .... Ralph. L. Boles
3. An Introduction to Social Psychology .... M. C. Dougall
4. A study of the origin of Folk Lore .... Kunjbihari Dass
5. Anthropology Part I & II .... Dr. Taylor
6. Beauty & other forms of Value .... Alexender
7. Encyclopaedia Britanica—Volume IX
8. English & Scotish popular Ballads .... Keelriz
9. English Ballads .... Robert Greeves
10. History of Modern Philosophy .... Hoffding
11. I bid ....
12. Indian Literature .... Winternits
13. Land in Bloom .... V. Safonov
14. Linguistic Survey of India .... Grierson
15. Literature of Reality .... Howard
16. Maxism and Poetry .... George Thompson
17. Meet my people .... DevendraSatyarthi
18. Sexual life in Ancient India .... Mayor
19. Studies in Psychology in Sex .... Havlock Ellis
20. Students Sanskrit—English Dictionary .... Apte
21. The Golden Bow .... Dr. Frazer
22. The Hand Book of Folk Lore .... G. S. Burn
23. The Mint of Primitive Man
24. The theory of knowledge .... Maurice Cornforth
25. Three Essays on the Theory of Sexuality .... Sigmand
26. Types of Aesthetic Judgement .... E. M. Bartlet
27. Women in the Sacred Laws .... Shakuntala Rao Shastri.

———

संस्कृत ग्रंथों की सूची

१ अथर्ववेद
२ ऋग्वेद
३ ऐतरेय ब्राह्मण
४ कठोपनिषद्
५ कर्पूर-मंजरी
६ कुवलय-माला
७ गाथा-सप्तशती
८ चम्पू-रामायण (भोजराज कृत)
९ तैतिरीय आरण्यक
१० धम्मपद
११ नाट्य-शास्त्र (भरतमुनि)
१२ मत्स्य-पुराण
१३ मनुस्मृति
१४ महाभारत
१५ मृच्छकटिकम् (शुद्रक)
१६ बाल्मीकि रामायण
१७ विनयपिटक
१८ विष्णुपुराण
१९ शतपथ ब्राह्मण
२० श्रीमद् भागवतम्
२१ सांख्य सारिका

पत्र-पत्रिकाओं की सूची

१ अजन्ता मासिक
२ कल्पना मासिक
३ कल्याण मासिक
४ सम्मेलन पत्रिका—
लोक संस्कृति अंक
५ जनपद त्रैमासिक
६ त्रिपथगा
७ धर्मयुग साप्ताहिक
८ परम्परा त्रैमासिक
९ प्रेरणा मासिक
१० वीणा मासिक
११ वातायन त्रैमासिक
१२ वेदवाणी
१३ शोध-पत्रिका
१४ श्रुति-गरिमा वार्षिक
१५ सम्मेलन पत्रिका
१६ स्वदेश साप्ताहिक
१७ हिन्दुस्तान साप्ताहिक
